प्रथम संस्करण, जुलाई १९४१
द्वितीय संस्करण जून १९४३
तृतीय संस्करण मई १९४५
चतुर्थ संस्करण मार्च १९४७
हिन्दी का पहला संस्करण जुलाई १९४५
हिन्दी का द्वितीय संस्करण जुलाई १९४७
हिन्दी का तृतीय संस्करण सितम्बर १९४८

मुद्रक
सत्यपाल शर्मा,
कान्ति प्रेस, माईथान–आगरा।

अंग्रेजी के चौथे संस्करण की भूमिका

यह संस्करण १८ महीने के पश्चात् छपने को भेज दिया गया। पुस्तक अच्छी तरह से दोहराई गई है, तथा प्रत्येक अध्याय के पश्चात् सारांश या Summary बढ़ा दी गई है। मुझे आशा है, कि पुस्तक और भी लाभदायक हो जायेगी।

२५ अक्टूबर १९४६ शांति स्वरूप

अंग्रेजी के तृतीय संस्करण की भूमिका

द्वितीय संस्करण निकलने के १८ महीने पश्चात् इसके और संस्करण की आवश्यकता होगई है। कुछ नई बातें बढ़ाई गई हैं और शैली में कई स्थानों पर सुधार किया गया है। मैं प्रकाशकों को कापीराइट के स्वत्वाधिकारियों को उनके प्रसन्नता पूर्वक सहयोग के लिए धन्यवाद प्रदान करना चाहता हूँ।

जोधपुर शांति स्वरूप
मार्च १९४५

अंग्रेजी के द्वितीय संस्करण की भूमिका

इस छोटी किताब का अच्छा स्वागत हुआ। वर्तमान संस्करण सावधानी पूर्वक संशोधित किया गया है। बहुत से अध्यापकों के सुझाव इसमें सम्मिलित कर लिये गये हैं। यत्र-तत्र कुछ नया मैटर भी बढ़ाया गया है। भाषा को सरलतर तथा और सुगम बनाने की चेष्टा की गई है। कुछ चित्रों में सुधार किया गया है और कई नये चित्र बढ़ाये गये हैं।

२८ मार्च १९४५ शांति स्वरूप

अंग्रेजी के प्रथम संस्करण की भूमिका

वर्तमान शिक्षा प्रणाली के विरुद्ध एक सामान्य शिकायत यह है कि विभिन्न परीक्षाओं के पाठ्य क्रम में बहुत सी चीजें जो हमें जाननी चाहिए छोड़ दी जाती हैं और बहुत सी ऐसी चीजें शामिल करली जाती हैं जिन्हें सीखने की जरूरत नहीं। अजमेर के हाईस्कूल एवं इन्टरमीजिएट परीक्षा बोर्ड ने सन् १९४२ से अपनी हाईस्कूल परीक्षा में शरीर एवं स्वास्थ्य विज्ञान को स्थान देकर पथप्रदर्शन किया है। मानव शरीर के

विभिन्न अङ्गों तथा उनके कार्य का ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति के लिए शरीर के उचित विकास तथा निगरानी के लिए आवश्यक है। अपने शरीर को स्वस्थ बनाये रखने के लिए विभिन्न उपायों तथा रोगों से बचने के लिए आवश्यक पूर्व सावधानी का ज्ञान प्राप्त करना जरूरी है।

बोर्ड द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार यह पुस्तक लिखी गई है। इसे दो भागों में विभाजित किया गया है। पहले भाग में शरीर, विज्ञान तथा दूसरे में स्वास्थ्यविज्ञान का वर्णन है।

यह पुस्तक मुख्यतः नवयुवक विद्यार्थियों के लिए लिखी गई है। अतः छोटी-छोटी अस्पष्ट बातों तथा विशेष विद्या संबंधी उच्च विषयों को साधारणतः छोड़ दिया गया है। पाठ्य विषय के साथ-साथ सरल तथा रोचक बहुत से चित्र दिये गये हैं।

यह आशा की जाती है कि यह पुस्तक शरीर की कार्यावली के संबंध में तथा स्वास्थ्य के प्रमुख नियमों के बारे में उपयोगी तथा आवश्यक सूचनाएं प्राप्त करने के लिये वयस्क लोगों के भी काम की हो सकेगी।

जीव विज्ञान के अनुसार जीवन का उद्देश्य स्वास्थ्य तथा दीर्घायु प्राप्त करना है। लेखक यह आशा करता है कि यह किताब बहुत से नवयुवकों तथा कुछ वयस्क लोगों की सहायता एवं उत्साह का साधन बनेगी और उन्हें स्वास्थ्य तथा दीर्घ जीवन बिताने में मदद देगी।

पुस्तक को सुधारने के लिए सुझावों तथा समालोचनाओं का स्वागत किया जायगा। इस पुस्तक को तैयार करने में उत्साह तथा सहायता प्रदान करने वाले तथा इस विषय में अभिरुचि रखने वाले अनेक मित्रों तथा दूसरे सज्जनों का लेखक आभारी है। उन के सुझावों के अनुसार बहुत से परिवर्तन किये गये हैं और इससे पुस्तक का मूल्य बढ़ गया है। श्रीयुत सुन्दरलाल जंगीड़ बी. ए. ने जो एक कलाकार हैं, चित्र तैयार करने में काफी कष्ट उठाया है।

जोधपुर
३० अप्रैल १९४१

शांति स्वरूप

विषय सूची

भाग १

शरीर विज्ञान

भाग २

स्वास्थ्य विज्ञान

अध्याय 1

प्रवेश

मानव शरीर की बनावट व उसकी कार्यप्रणाली का अध्ययन एक मनोरंजक विषय है। प्रत्येक मनुष्य शरीर की भीतरी वस्तुओ के जानने का इच्छुक है व अनुभव द्वारा शरीर के कई भागों से परिचित हो जाता है। शरीर के विभिन्न अंगों का तथा प्रत्येक अंग के विशेष कार्य का ध्यान पूर्वक अध्ययन करने से मनुष्य शरीर के प्रत्येक अंग की उचित देखभाल करने, ठीक तरह से भोज्य पदार्थ को चुनने तथा स्वास्थ्य एवं दीर्घ आयु प्राप्त करने में सफल हो सकता है।

मानव शरीर का दूसरे समस्त जीवों से गहरा संबंध है। हमारे आस-पास दो प्रकार की वस्तुऐं हैं—

(१) जीवित

(२) निर्जीव

जीवन तथा जीवित वस्तुओं में निर्जीव वस्तुओं के विरुद्ध निम्नलिखित बातें पाई जाती हैं:—

(१) जीवित वस्तुओ में गतिशीलता होती है या वह स्वयं हिल-डुल सकती हैं। जब तक वह जीवित हैं ऐसा कर सकती हैं मगर मृत्युके पश्चात् ऐसा नहीं कर सकती। निर्जीव हिल भी नहीं सकतीं।

(२) जीवित वस्तुएँ भोजन लेती हैं।

(अ) वह निर्जीव वस्तुओ से अपने शरीर के भाग की जीवित तन्तु बना सकती हैं।

(ब) वह पान्य भोज्य पदार्थों को शक्ति व गर्मी में परिवर्तित कर सकती हैं।

(३) जीवित वस्तुएँ भोजन पदार्थों से वृद्धि करती हैं। बच्चा उत्पन्न होता है। भोजन द्वारा वृद्धि पाता है, युवावस्था को प्राप्त होता है, व मनुष्य बन जाता है। एक बीज उगता है, पौधा होता है उसमें पत्ते, डालियां, पुष्प, फल और बीज लगते हैं। निर्जीव वस्तुएँ इस प्रकार नहीं कर सकतीं।

(४) समय पाकर जीवित वस्तुएँ अपने जैसे नव मानव को जन्म देती है। इस प्रकार इनकी वंश-वृद्धि होती है जो निर्जीव नहीं कर सकतीं।

(५) जीवित वस्तु आस पास की वस्तुओं का अनुभव ज्ञानेन्द्रियों द्वारा कर सकती हैं। ताप, रोशनी, गैसों व अन्य वस्तुओं का अनुभव कर सकती हैं। पौधा रोशनी पाने के लिए उस ओर मुख करता है। जीवित वस्तु तेज गर्मी से बचना चाहती है। कुत्ता अपनी अंगुली कांटे व अग्नि से खींच लेता है।

मानव शरीर-विज्ञान को दो भागों में विभाजित किया गया है— शरीर विज्ञान (Anatomy)—इसमें शरीर के विभिन्न भागों की बनावट, शकल तथा स्थितिका वर्णन होता है।

शरीर कार्य-विज्ञान (Physiology)—इसमें शरीर के अंगों के कार्य का ज्ञान होता है।

जीव कोष—शरीर की पहली ईंट

जीवन की इकाई एक सूक्ष्म कोष (cell) है। सरलतम जीवित प्राणी एक कोषमात्र है। कोष (cell) एक जेली की तरह अर्द्ध तरल द्रव जीवनमय पदार्थ प्रोटोप्लाज्म का एक छोटा सा कण है। इसका बाहरी भाग कुछ कड़ा हो जाता है और उस से कोष का खोल (cell wall) बनता है। यह अन्दर के

प्रोटोप्लाज्म के लिये जिसमें सारे जीवन सम्बन्धी मूल कार्य होते हैं आवरण का काम करता है। प्रोटोप्लाज्म ओषजन (oxygen), नत्रजन (nitrogen), उद्-जन (Hydrogen), कार्बन तथा गन्धक (Sulphur) से मिलकर बनता है। कोष के केन्द्र में
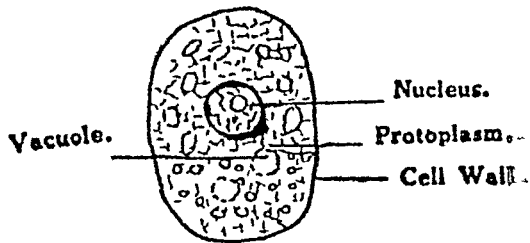
चि १—कोष

एक और छोटा अंडाकार या ग्लोब की शकल का पदार्थ होता है जिसे केन्द्रक या नाभिकण (nucleus) कहते हैं। यह कोष के कार्यका नियन्त्रण करता है।

उच्चतर प्राणियो का शरीर बहुत से कोषों से मिल कर बना है। ये कोष परस्पर मिल जाते हैं और कई तरह के नमूनो के आकार में परिणत हो जाते हैं। इस तरह से ये शरीर के तंतुओ (Tissues) का निर्माण करते है। इसी तरह से चर्म अस्थियाँ, रक्त, मांसपेशियाँ तथा नाड़ियाँ बनती हैं। ये अङ्ग बहुत ही खास कार्यके लिये निर्धारित तंतुओ से मिलकर बनते हैं। ये तंतुओ के समूह हैं और ये एक या अन्य विशेष कार्य या कार्यावली को जिसके लिये वे उपयुक्त हैं, करते हैं।

रक्त—अणु (blood corpuscles) एकाकी कोष हैं। ये सब कोष इतने सूक्ष्म हैं कि वे केवल सूक्ष्म दर्शक यंत्र (microscope) से ही देखे जा सकते हैं।

तंतु (Tissues) मिल कर अवयवो (organs) या शरीर के विशिष्ट अङ्गों का निर्माण करते हैं जो विशेष कार्य करते हैं। आँख-दृष्टि अवयव है, आमाशय (stomach)
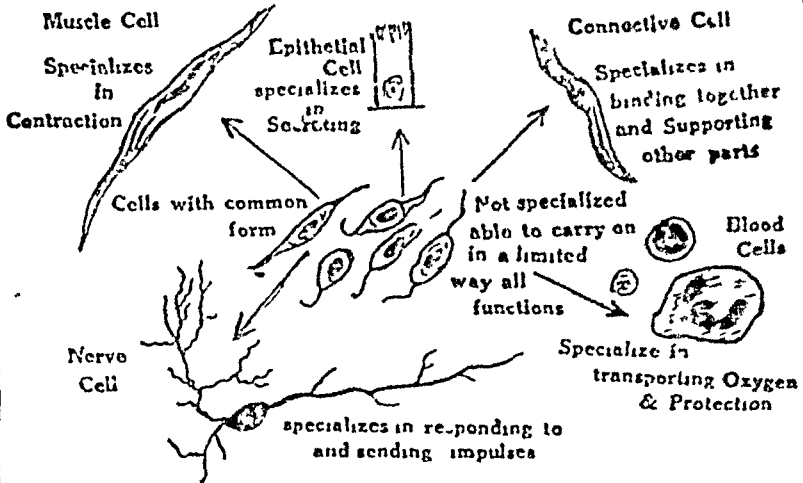
चित्र २—कोष के विभिन्न आकार

पाचन-अवयव है, फेफड़े श्वास लेने के अवयव हैं, इस तरह से और भी अवयव हैं। किसी अवयव का विशिष्ट कार्य उस अवयव का कार्य कहलाता है।

कुछ अवस्थाओं में अवयव मिल कर संस्थान (systems) बनाते हैं। इन संस्थानों का कुछ खास काम होता है। मुँह, आमाशय, अन्नड़ियाँ इत्यादि मिलकर पाचन-संस्थान बनाते हैं। शरीर कई संस्थानों (System) से बनता है जैसे अस्थि व हड्डियों का संस्थान, माँसपेशियाँ पाचन व रक्त संस्थान (जो हृदय, धमनियों केशिकाओं व शिराओं से मिलकर बनता है) श्वासोच्छ्वास (Respiratory) संस्थान (जो फेफड़ों, वायु नली इत्यादि से बनता है) मल-मूत्र व सफ़ाई का संस्थान (जिसमें गुर्दे, मूत्र-प्रणाली, मूत्राशय व चमड़ी आदि है), वात संस्थान, प्रणाली विहीन ग्रंथि-संस्थान तथा वंश-वृद्धि-संस्थान सब मिलकर एक जीवित वस्तु को बनाती हैं जिसमें सब संस्थान के अंग मिलकर कार्य करते हैं।

शरीरके विभिन्न अवयव तथा संस्थान सारे शरीर के क्षेम के लिए काम करते हैं और वे परस्पर एक दूसरे पर ठीक उस तरह परस्पर आश्रित हैं जिस तरह व्यक्तियों के वर्ग जो एक सभ्य जाति की जनसंख्या का निर्माण करते हैं, परस्पर एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। इस तरह माँसपेशियों के कोष, भोजन तथा ओपजन (oxygen) के लिए रक्त के परिभ्रमण पर जो इन आवश्यक पदार्थों को उन तक पहुँचाने का काम करता है निर्भर है।

सारांश

शरीर विज्ञानका अध्ययन एक मनोरंजक विषय है। जीवित वस्तुएं स्वयं हिल जुल सकती हैं, भोजन लेती है व उससे बढ़ती हैं व शक्ति व गर्मी लेती है, वंश-वृद्धि करती हैं व आसपास की वस्तुओ का अनुभव कर सकती हैं। शरीर-विज्ञान (anatomy) शरीर के भागों की बनावट, शक्ल, आकार तथा स्थिति से परिचित कराता है।

शरीर कार्य-विज्ञान (Physiology) में विभिन्न अंगोंके कार्यों का वर्णन होता है। प्रोटोप्लाज्म (Protoplasm) एक अर्द्ध द्रव्य पदार्थ जीवनाधार है। जीवकोष शरीर की पहली ईंट है। मानव शरीर कई आकार के कोषो (cells) से बना है। एक कोष में—

(१) खोल—cell wall
(२) सेलशरीर—protoplasm
(३) नाभिकण—Nucleus, होता है।

सेल कई प्रकार के होते हैं। एक प्रकार के सेल (आकार, रंग कार्य आदि) के संग्रह को तन्तु (Tissue) कहते हैं और यह मिलकर कई प्रकार के संस्थान तथा शरीर की रचना करते हैं।

शरीर का साधारण क्रमस्थापन

शरीर की हड्डियों का ढाँचा और उससे लगी हुई माँस-

पेशियाँ शरीर को उसका अपना खास आकार प्रदान करती हैं। अस्थिपंजर (skeleton) शरीर का प्रमुख आधार है, (ख) यह अन्दरूनी कोमल अवयवों को आवृत तथा उनकी रक्षा करता है और (ग) हमें गतिशील बनाता है। मस्तिष्क एक मजबूत पेटी में रक्खा हुआ होता है। यह पिटारी खोपड़ी कहलाती है। फेफड़े और दिल छाती के भीतर होते हैं। माँस या पेशियाँ, वसा और चर्म शरीर को सुपरिचित रूप प्रदान करते हैं। इसके अलावा वे शरीर को हिलाने तथा उसकी रक्षा करने का काम भी करते हैं।

शरीर तीन भागों में बाँटा गया है—सिर, धड़ तथा हाथ पैर।

(१) सिर में खोपड़ी जिसमें मस्तिष्क रहता है तथा चेहरा होता है।

(२) धड़ शरीर का वह भाग है जो सिर को सँभाले रहता है और जिससे हाथ और पैर जुड़े रहते हैं। इसमें दो गर्त (cavities) होते हैं जो एक बड़ी माँसपेशी से जिसे वक्षोदर मध्यस्थ पेशी (Diaphragm) कहते है, अलग कर दिये गए हैं। ऊपरी गर्त वक्षःस्थल (Thorax) और निम्न गर्त उदर कहलाता है। वक्षःस्थल सब तरफ से कशेरु (vertebral column) वक्षोस्थि (sternum) तथा पसलियों (Ribs) से अच्छी तरह से सुरक्षित होता है। वक्षःस्थल के भीतर दिल तथा रक्त नलिकाएँ (blood vessels) फेफड़े (Lungs) तथा उन तक पहुँचने वाली वायु-नलिकाएँ, एवं भोजन-नली जो मुँह के पीछे से आमाशय (stomach) तक पहुँचती हैं, होती हैं। दिल (Heart) वक्षःस्थल के बाईं तरफ स्थित है। रक्त-नलिकाएँ जो दिल से खून ले जाती हैं धमनियां (arteries) कहलाती हैं और वे जो दिल को रक्त पहुँचाती हैं शिराएँ (veins) कहलाती हैं। फेफड़े दो हैं--दिल के प्रत्येक बाजू की तरफ एक

PLATE No. 1

छाती और पेडू के भीतरी अङ्ग

एक । मुंह तथा नाक के पीछे से एक मजबूत नलिका फेफड़ों तक जाती है और उसकी एक एक शाखा प्रत्येक फेफड़े तक पहुँचती है।

उदर में (जो वक्षःस्थल से वक्षोदर मध्यस्थ पेशी द्वारा पृथक् किया गया है) (१) दाहिनी तरफ यकृत (liver), (२) बाईं तरफ आमाशय (Stomach) (३) अंतड़ियाँ (intestines) तथा (४) उदर की ऊपरी और पीछे की तरफ आमाशय के पीछे क्लोम (pancreas) हैं, (५) आमाशय के पीछे उदर की बाईं तरफ प्लीहा (spleen) है (६) गुर्दे (kidneys) अंतड़ियों के पीछे हरेक बाजू एक एक है, (७) मूत्राशय (bladder) उदर के तले में होता है और वह गुर्दे द्वारा बनाये गये मूत्र के लिये एक किस्म का थैला मात्र है।
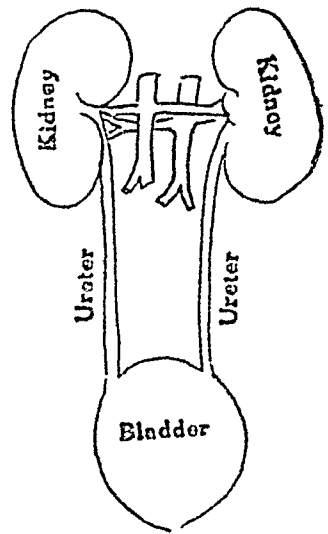
चित्र न० ३ गुर्दे और मूत्राशय

हाथ-पैर—ऊपरी अङ्ग (हाथ) में अंसफलक (Shoulder blade), ऊर्ध्व बाहु (Upper arm), अग्रबाहु (forearm) कलाई (wrist) तथा हस्त (Hand) होता है। निम्न अङ्ग में कूल्हे की हड्डी (hip bone), जाँघ (Thigh), टाँग (leg), टखना (ankle) तथा पाद (Foot) होता है।

कुछ एक सी विशेष बातें।

क़द Size—आदमी तथा स्त्री दोनों का विशेष कद होता है। औसत बालिग पुरुष की ऊँचाई पाँच फुट, आठ इंच और औसत बालिग स्त्री की ऊँचाई पाँच फुट, पाँच इंच होती है।

वज़न (weight)—मानव शरीर का वजन ऊँचाई आयु तथा लिंग पर निर्भर रहता है। बालिग पुरुष का औसत वज़न १५० पौण्ड तथा बालिग औरत का १४० पौंड होता है।

आयु--मानव जीवन की औसत आयु ७० वर्ष है।

आयु—भारतवर्ष के मनुष्यों की आयु बहुत कम है। न्यूजीलैंड में ६६ वर्ष, अमेरिका में ६३ वर्ष, ब्रिटेन ६२ वर्ष, रूस व यूरोप ४० वर्ष, मिस्र में ३४ वर्ष व भारत में केवल २७ वर्ष। आर्थिक व सामाजिक सुधार व स्वास्थ्यमय जीवन से वहाँ के निवासियों पर बहुत प्रभाव पड़ा है। भारतवर्ष में लाखों मनुष्य अपनी औसत आयु भी नहीं भोग सकते। वे अपनी अज्ञानता, दरिद्रता व रोगों के कारण बचाव से अनभिज्ञ होने के कारण न्यून आयु में ही मर जाते है। जिससे कि वे भली भाँति बच सकते है। कई लोग लम्बी आयु पाते हैं पर अपवाद रूप से।

मृत्यु—कभी न कभी हम सब को मरना है। मृत्यु धीरे धीरे आ पहुँचती है। ज्यों-ज्यों हम वृद्ध होते जाते है शरीरके विभिन्न अवयव तथा अङ्ग भी पुराने पड़ते जाते हैं और उनके कार्य में ढीलापन आ जाता है। अन्ततोगत्वा शरीर का कोई भाग अपना काम करना बंद कर देता है और शरीर-यन्त्र बन्द हो जाता है।

मानव शरीर एक यन्त्र है—मनुष्य के शरीर की तुलना कभी कभी यन्त्र से की जाती है। उनमें एक बात में समानता होती है। वे दोनों काम करते हैं और उनके जुम्मे कुछ विशेष काम हैं जिन्हे वे करते हैं तथा उनको शक्ति की निरन्तर आवश्यकता पड़ती है। यह शक्ति मनुष्यों में भोजन से प्राप्त होती है और यंत्रोंमें भाप, पेट्रोल या बिजली से मिलती है। पर यह समानता और आगे नही जा सकती है क्योंकि मानवी देह सुन सकती है, अनुभव कर सकती है, सोच सकती हैं, बढ़ सकती है तथा प्रजनन कार्य कर सकती है। यंत्र न तो सुन सकता है, न अनुभव कर सकता है, न सोच सकता है, न बढ़ सकता है और न उससे

दूसरा यंत्र ही बन सकता है। मानव शरीर इस तरह से अपने काम में मशीन से कुछ समानता रखता है पर यह प्रत्येक बात में यंत्र की ही तरह नही है।

सारांश

शरीर के तीन भाग हैः—

(१) सिर।

(२) धड़।

(३) हाथ व पैर।

धड़ में दो गड्ढे होते है, ऊपरी गड्ढा वक्षःस्थल जिसमें हृदय व फेफड़े हैं तथा निम्न उदर जिसमें गुर्दे व अन्य पाचक यंत्र हैं।

लोग भिन्न भिन्न कद के होते हैं, वे केवल नियमित समय तक जीवित रहते है और अन्त में मृत्यु-पथ गामी होते हैं।

मानव शरीर मशीन के समान है परन्तु हर बात में नहीं। मशीन भोजन लेती है परन्तु पाचक-यन्त्र व रक्त द्वारा फैल कर वृद्धि नही कर सकती। किसी प्रकार की गड़बड़ी स्वयं ठीक नहीं कर सकती व परिस्थिति, शीतलता, उष्णता व दर्द का अनुभव नहीं कर सकती। उनके अनुसार अपने को बदल नहीं सकती और वंश वृद्धि भी नही कर सकती।

प्रश्न

१. इनकी परिभाषा बताइये—शरीर विज्ञान, शरीर क्रिया-विज्ञान। इन विषयों के अध्ययन से क्या लाभ हैं।

२. इनको उदाहरण देकर समझाइये—अवयव, अवयव का कार्य, तन्तु।

३. पूरी तरह समझाकर बतलाइये ये क्या हैं?—धड़, वक्षःस्थल, उदर, वक्षोदर, मध्यस्थ पेशी तथा हाथ-पैर।

४. वक्षःस्थल तथा उदर में पाये जाने वाले अवयवों के नाम बतलाइये। प्रत्येक की ठीक स्थिति का उल्लेख कीजिये।

५. मानव शरीर की औसत आयु, वजन और कद क्या है?

६. क्या मानव शरीर एक यन्त्र है?

अध्याय २

अस्थि-संस्थान

शरीर की हड्डियो का ढाँचा अस्थिपंजर (Skeleton) कहलाता है। यह कई आकार और शक्ल की परस्पर जुड़ी हुई हड्डियो से मिलकर बनता है। शरीर की तरह अस्थिपजर तीन भागो में विभाजित किया गया है—सिर, धड़ और हाथ-पैर।

सिर की हड्डियाँ खोपड़ी अर्थात् मस्तिष्ककी पेटी तथा चेहरे को बनाती हैं। खोपड़ी में ८ चपटी हड्डियाँ होती हैं जो परस्पर अपने दाँत की तरह अनियमित किनारो से जुड़ी होती है।

इस तरह इन हड्डियो द्वारा मस्तिष्क के लिए एक मजबूत पिटारी की तरह खोल बन जाता है।

ये हड्डियाँ निम्नलिखित है—

एक ललाटास्थि (Frontal) जो ललाट बनाती है।

दो पार्श्विकास्थियाँ (Parietals) जो खोपड़ी के पीछे का ऊपर का तथा बाजू का भाग बनाती है।

दो शखास्थियाँ (Temporal bones) जो खोपड़ी का शंखदेश बनाती है।

एक पश्चादास्थि (Occipital bone) जो खोपड़ी का निम्न भाग बनाती है। इन में एक बड़ा सा छेद होता है जो महाछिद्र (Foramen magnum) कहलाता है और जिसमें होकर मस्तिष्क सुषुम्ना से मिलता है।

एक जतूकास्थि (Sphenoid bone) यह हड्डी खोपड़ी के तले में होती है। यह अपने पंख फैलाये हुए चिमगादड़ की तरह दिखाई पड़ती है।

FRONTAL.
Nasal
SUPERIOR MAXILARY
INFERIOR
CLAVICLE
STERNUM
HUMERUS
RIBS
Ulna
Radius
OS COXAE
Sacrum
Coccyx.
PELVIS
CARPUS
METACARPUS
PHALANGES
FEMUR
PATELLA
Tibia.
Fibula.
TARSUS
META TARSUS
PHALANGES
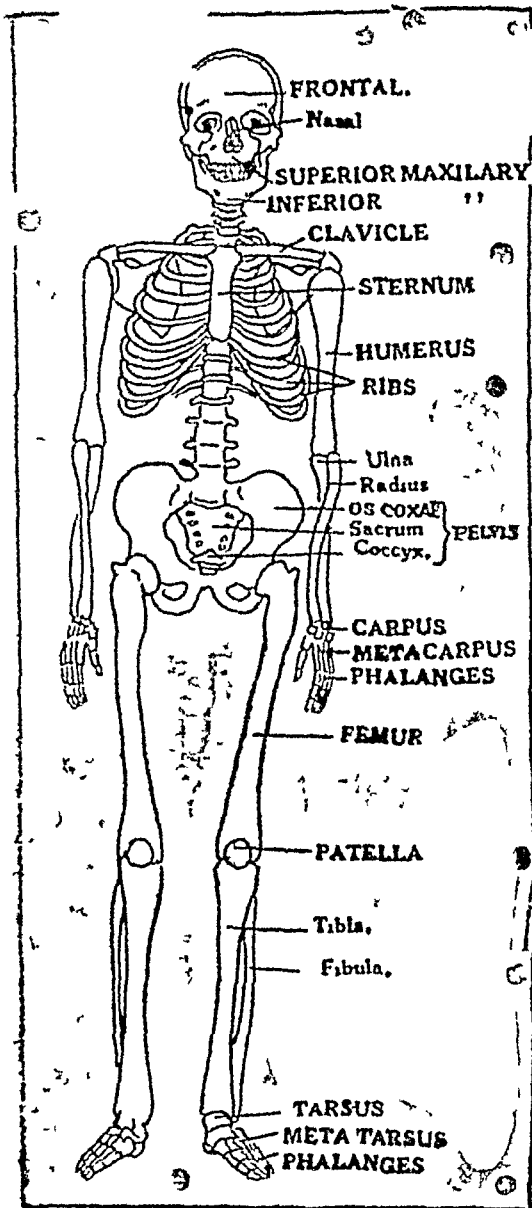
चित्र ४—अस्थिपंजर

एक झर्झरास्थि (Ethmoid bone) या बहुछिद्रास्थि। यह दोनों नासिका-मार्गों के ऊपर होती है। यह नाक और मस्तिष्क के बीचमें स्थित है। यह खोपड़ी के तले के कुल भाग को बनाती है। इस अस्थि में बहुत से छोटे-छोटे छिद्र होते है।
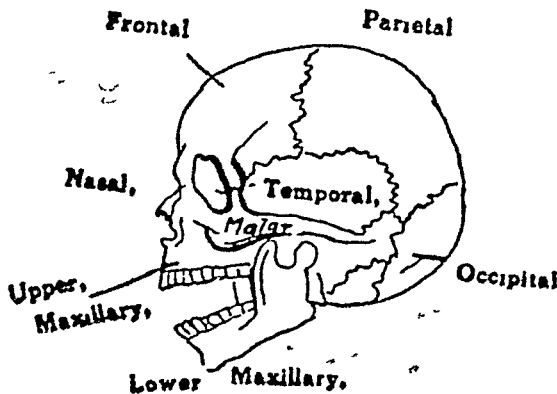
चित्र न० ५ खोपड़ी (Skull)

ये हड्डियाँ आपस में बड़ी मज़बूती से जुड़ी हुई होती हैं और उनके जोड़ बालिग़ होने पर ही पूरी तरह से भरते हैं। बच्चे की खोपड़ी की हड्डियों को चोट तथा दबाव से बचाना चाहिए।
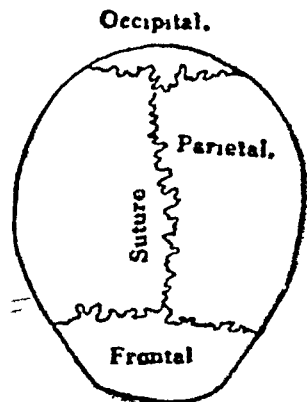
चित्र ६ खोपड़ी (ऊपर की तरफ से)

चेहरा १४ हड्डियों से बना है। नीचे के जबड़े की हड्डी के अतिरिक्त ये सारी हड्डियाँ खोपड़ी से मजबूती के साथ जुड़ी होती हैं। ये हड्डियाँ इस प्रकार हैं :—

दो नासास्थियाँ या नाक की हड्डियाँ (Nasal bones) जो नाक का ऊपरी हिस्सा बनाती हैं।

एक नासाफलकास्थि (Vomer)—यह नाक को दो भाग में विभाजित करती है।

दो स्पञ्ज की तरह अस्थियाँ (Spongy bones)—ये नाक में होती हैं और मुड़ी हुई रहती हैं। इससे हवा के मार्ग की लम्बाई बढ़ जाती है।

दो अश्वास्थियाँ (Lachrymal bones)—ये हड्डियाँ आँख के अक्षिखात (orbit) से नाक तक अश्रु धारा के लिए मार्ग बनाती हैं।

दो कपोलास्थियाँ या गाल की हड्डियाँ (Malar bones) ये गाल के उठे हुए हिस्से बनाती हैं।

दो ताल्वास्थियाँ (Palates)---ये तालु बनाती हैं।

दो ऊर्ध्व हन्वास्थियाँ (Upper Maxillary)---ये ऊपर का जबड़ा बनाती है। ये दो हड्डियाँ बीच में मिलती है और बालिग आदमी की हरेक ऊर्ध्वहन्वास्थि में आठ दाँत होते हैं।

एक निम्न हन्वास्थि (Lower Maxillary)– इससे नीचे का जबड़ा बनता है। यह शांखास्थियों के जोड़ों से ऊपर नीचे तथा दायें बायें घूम सकती हैं।

अक्षिखात या आँख के उलूखल कपोलास्थियों, झर्झरास्थि, जतूकास्थि, अश्वास्थियों तथा ऊर्ध्व हन्वास्थियों के मिलन से बनते है। हरेक अक्षिखात के पीछे दृष्टि-नाड़ी (optic nerve) के लिए एक छिद्र होता है।

दाँत–अस्थितन्तुओं से नहीं बने हैं परन्तु एक कठोर नल्याकार (tubular) पदार्थ से जिसे रदिन (dentine) कहते हैं, बने हैं इस रदिन का खुला भाग एक बहुत ही कठोर परन्तु भंगुर (britile) पदार्थ दंतवेष्ट (enamel) से सुरक्षित रहता है। यदि

यह दन्तवेष्ट या दाँत का श्वेत बाहरी आवरण नष्ट होजाय तो वह फिर नहीं बनता। दाँत का मध्य भाग (Centre) नाड़ियों तथा नलिकाओं से भरा हुआ होता है। दाँत दन्तमूल (fangs) द्वारा जबड़े की हड्डियों से जुड़े रहते हैं ये दंतमूल हन्वा-स्थियों से सख्त चिपकने वाली चीज़ जिसे सीमेंट कहते हैं चिपके रहते हैं। दाँत के तीन भाग होते हैं—१ दन्तशिखिर जो मसूड़े के बाहर श्वेत और चमकदार भाग हैं २. दंत ग्रीवा, जो शिखर के नीचेसे दबा हुआ भाग है। ३. दंतमूल। बालिग मनुष्यके ३२ स्थायी दाँत होते हैं। उनके आकार तथा काम के अनुसार जिसे वे करते हैं वे चार श्रेणियों में विभाजित किये गये हैं।
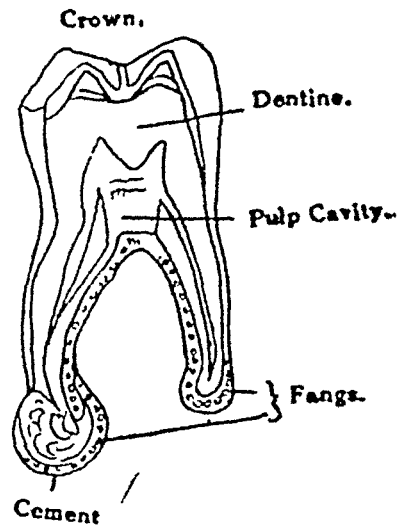
चित्र नं० ७ दाँत की बनावट

कर्त्तनिक या छेदक दन्त (Incisors) (छैनी की तरह किनारे वाले) ये काटने का काम करते हैं। ८

रदनक या भेदक दन्त (Canines) (नोकवाले) पकड़ने और चीरने का काम करते हैं। ४

अग्र चर्वणक दन्त (Bicuspids or Premolars) (दुहरे शिखरवाले)--चबाने का काम करते हैं। ८

चर्वणक दन्त (Molars) चौड़ी कुचलने वाली सतह वाले चबाने का काम करते हैं। १२

३२

दांतों का क्रम स्थापन चित्र संख्या ८ में दिखाया गया है। ऊपर के और नीचे के प्रत्येक अर्ध भाग में ऐसे चार सेट हैं।

Molars
Incisors Canine. Bicuspid
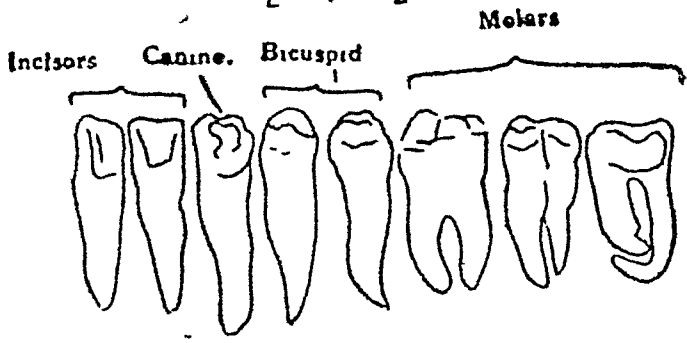
चित्र नं० ८ दाँतों का क्रमस्थापन

धड़ में कशेरु (Vertebral column) पसलियाँ और वक्षोस्थि या छाती की हड्डी शामिल हैं। कसेरु में ३३ और हड्डियाँ होती हैं जिन्हे कशेरुकायें (Vertebrae) कहते है। प्रत्येक कशेरुका (Vertebra) में एक पिंड (body) कई प्रवर्धन (processes) तथा एक केन्द्रिय नलिका (Central Canal) होती है जो सुषुम्ना को अबाध मार्ग प्रदान करती है। नीचे की कशेरुकाओं का पिंड अधिक बड़ा होता है क्यों कि इन्हे ज्यादा बोझ संभालना पड़ता है। प्रत्येक कशेरुका के पिंड की कार्टिलेज की गद्दियों से रक्षा की जाती है। इससे मुड़ने या फैलने में रगड़ से बचाव हो जाता है।
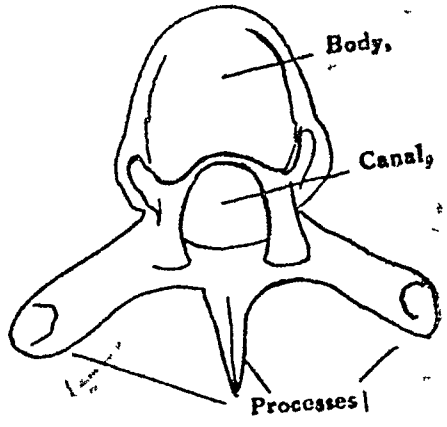
चित्र न० ९ एक कशेरुका

ये कशेरुकाएँ जो एक दूसरे पर टिकी होती हैं कशेरु पृष्ठवंश या रीढ़खम्भ (Vertebral column) बनाती हैं। ये कशेरुकाएँ बचपन में पृथक्-पृथक् होती हैं। बालिग मनुष्यों में सब से नीचे

की ६ मिलकर दो बन जाती हैं जिन्हे त्रिकास्थि (Sacrum) तथा गुदास्थि (Coccyx) कहते हैं। त्रिकास्थि ५ कशेरुकाओं से तथा गुदास्थि ४ कशेरुकाओं से मिलकर बनती हैं।

गुदास्थि (Coccyx) का ऊपरी सिरा त्रिकास्थि से जुड़ा रहता है और दूसरी कशेरुकाएं परस्पर मजबूत रस्सी यानी बंधनों से जुड़े रहते है।

कशेरुकाएं पाँच श्रेणियों में विभाजित की गई हैं:—

ग्रैवेयी (Cervical) या गर्दन की कशेरुकाएं।	७
वाक्षसी (Thoracic) या वक्षःस्थल (पीठ) की कशेरुकाएँ	१२
कटिकी (Lumbar) या कटि (कमर) प्रदेश की कशेरुकाएं	५
त्रिकास्थि (Sacrum) या नितंब [कूल्हेकी]कशेरुकाएं	५
गुदास्थि (Coccyx) या पूंछ की कशेरुकाएं	४
	३३

चित्र नं० १० कशेरु Vertebral column.
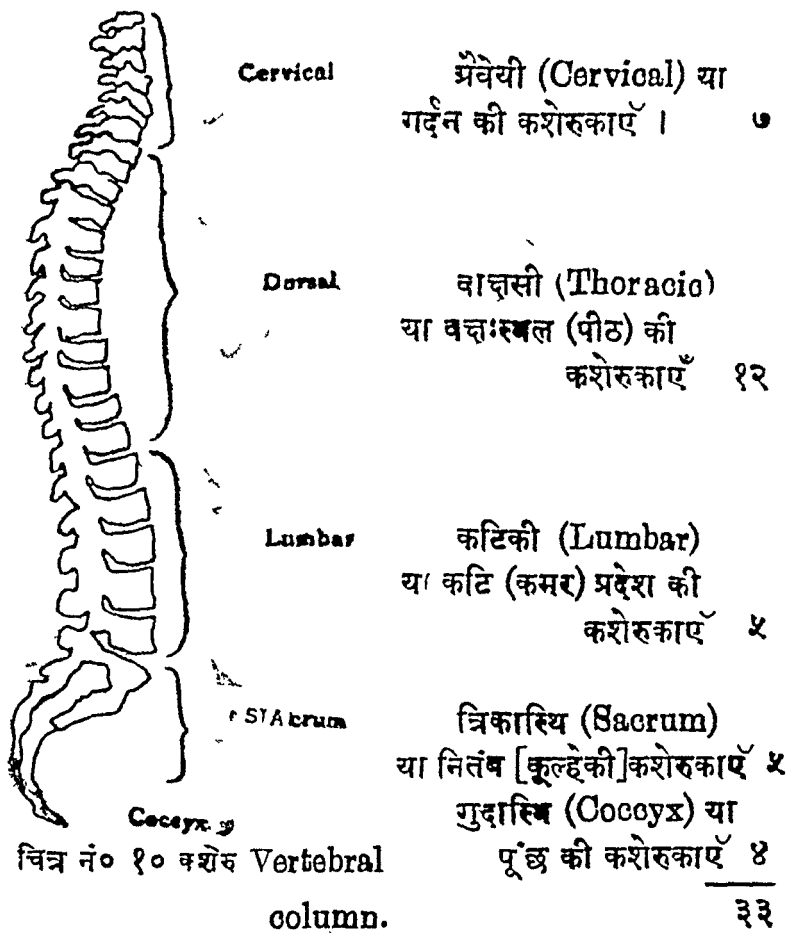
पृष्ठवंश (रीढखम्भ) वह केन्द्रीय हड्डी है जिस पर सिर टिका रहता है और जिससे हाथ पैर जुड़े रहते हैं। वाक्षसी कशेरुकाओं से पसलियाँ जुड़ी हुई होती हैं और इस तरह छाती की पिटारी बनाती है। यह एक मजबूत स्तम्भ बनाती है जिससे हम भारी बोझ उठा सकते हैं। यह सुषुम्ना के लिए जो मस्तिष्क का एक विस्तार है, बहुत सुरक्षित नाली बनाती है। इसके कारण सिर इधर उधर घुमाया जा सकता है। पहली कशेरुका सर को आगे और पीछे की तरफ़ सीमित गति प्रदान । और दूसरा कशेरुका इसे इधर उधर घूमने देती है।

पसलियाँ—छाती के दोनो ओर १२ पसलियाँ होती हैं इस तरह कुल मिलाकर २४ पसलियाँ हैं और प्रत्येक बारह वाक्षसी कशेरुका से पसलियों का एक जोड़ा लगा हुआ होता है। प्रत्येक पार्श्व में पहली सात पसलियाँ सीधी वक्षोस्थि (छाती की हड्डी) से सबन्धित हैं और ये सच्ची पसलियाँ (True ribs) कहलाती हैं। आठवीं, नवीं और दसवीं कार्टिलेज से अपने ऊपर की पसली से जुड़ी रहती हैं। आखिरी दो पसलियों के सामने के सिरे स्वतंत्र होते हैं इसलिए वे तैरने वाली पसलियाँ भी कहलाती हैं। अन्तिम पाँच पसलियों को भूठी पसलियाँ भी कहते हैं। हर दो
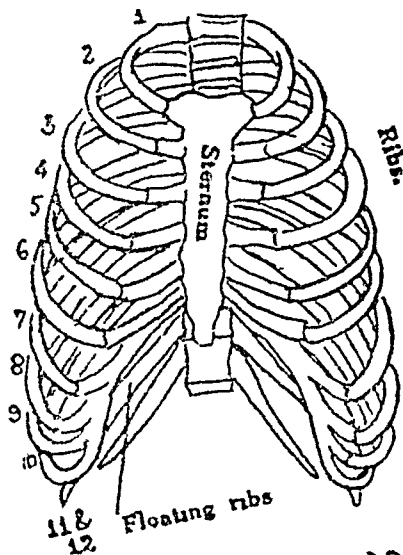
चित्र नं० ११ पसलियाँ एवं वक्षोस्थि

पसलियों के बीच में मॉसपेशियाँ होती हैं और इसी लिए सॉंस लेते समय पसलियाँ उठती तथा नीचे बैठती हैं। फीतों से छाती न कसनी चाहिए क्योंकि वे पसलियो को दबा देते हैं और सॉंस लेने के काम में हस्तक्षेप करते हैं।

वक्षोस्थि—Sternum या छाती की हड्डी (चित्र नं० ११ देखिये) एक चपटी हड्डी है जो लगभग ६ इंच लम्बी है तथा शक्ल में पुराने किस्म की कटार की तरह होती है। यह ऊपर की तरफ चौड़ी और नीचे की तरफ तंग होती है। इससे पहली सात पसलियाँ जुड़ी रहती हैं। इसके ऊपर की दो हड्डियाँ जुड़ी हुई होती हैं।

सारांश

अस्थिपंजर के तीन भाग हैं (सिर, धड़, हाथ-पैर)। सिर की हड्डियाँ खोपड़ी व चेहरे को बनाती हैं। खोपड़ी में आठ हड्डियाँ होती हैं व चेहरे में १४। दॉंत ३२ होते हैं व चार प्रकार के—छेदक, भेदक, दोरे शिरेवाले तथा दाढ़ें। दॉंत के तीन भाग होते हैं—जड़, मध्य और शिखर। कशेरु (Vertebral column) में ३३ ओस हड्डियाँ होती हैं। सात ग्रीवायी, १२ वक्षस्थल की, ५ कटि की व ५ जुड़ी हुई कूल्हे की व ४ जुड़ी पूँछ की। २४ पसलियाँ होती हैं व छाती की एक हड्डी।

अङ्गों की हड्डियाँ

ऊपरी अङ्ग (हाथ) में अंसफलक (Shoulder blade), हँसली की हड्डी, ऊर्ध्ववाहु, कलाई तथा हाथ होता है।

अंसफलक—स्कन्धास्थि या कन्धे की हड्डी (Scapula). आकृति में त्रिकोण जैसा है और इसका निम्न भाग नीचे की तरफ वक्षःस्थल के अधिकांश ऊपरी भाग के पृष्ठ पर रहता है। यह आसानी से घूम सकता है। इसके वाहरी कोण पर एक उथला गड्ढा होता है जिसे अंस पीठ (Glenoid Cavity)

कहते हैं। ऊर्ध्वबाहु की हड्डी प्रगण्डास्थि (Humerus) का गेंद जैसा गोल सिरा इस प्याले जैसे गड्ढे में ठीक बैठ जाता है। इस तरह गेंद और प्याला संधि बनती है। इसी कारण हाथ चाहे जिधर घुमाया जा सकता है प्रगंडास्थि की गति का नियंत्रण स्कंधास्थि के पीछे लगे हुए मॉस पेशियों द्वारा होता है। दो ऐसे प्रवर्धन (Processes) भी होते हैं जो असपीठपर मुड़ कर उसकी रक्षा करते हैं। इनमें से एक प्रवर्धन (अंसकूट) (Acromion process) से हॅसली की हड्डी जुड़ी होती है और जो उसे स्थिति में रखता है।
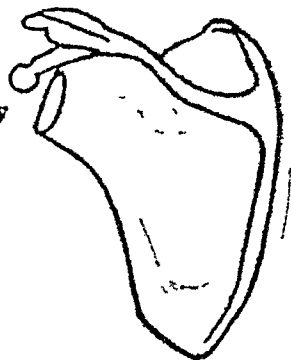
चित्र स० १२ स्कंधास्थि (Scapula)

अक्षक या हॅसली (Clavicle) एक लम्बी मुड़ी हुई हड्डी है। यह बाहर की तरफ स्कंधास्थि के अंसकूट (acromion

चित्र सं० १३--अक्षक (Clavicle)

process) से और दूसरी तरफ वक्षोस्थि (sternum) से जुड़ी होती है। हॅसली की दो हड्डियाँ ऊर्ध्वबाहु को छाती पर मुड़ने से रोकती हैं।

प्रगंडास्थि-(Humerus) ऊर्ध्व बाहु में अकेली लंबी तंग हड्डी होती है। इसका ऊपरी सिरा गोल होता है जिससे वह असपीठ (Glenoid cavity) में ठीक बैठ जाती है और गेंद और प्याले की संधि (Ball & socket joint) बनाती है। इससे हाथ स्वतंत्रतापूर्वक घूम सकता है (देखिये चित्र सं० १४] इसका नीचे का सिरा आकृति में बेलन की तरह होता है और उसमें एक गड्डा सा होता है जिसमें अंतःप्रकोष्ठास्थि [ulna] जो निम्न बाहु की एक हड्डी मिलती है।
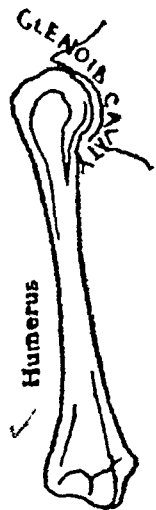
चित्र स० १४--प्रगंडास्थि [Humerus]

अग्रबाहु [Forearm] में दो हड्डियाँ होती हैं:—[१] बहिःप्रकोष्ठास्थि [Radius] तथा [२] अन्तः प्रकोष्ठास्थि [ulna] अन्तः प्रकोष्ठास्थि अधिक लम्बी होती है और उसमें एक हुक जैसा प्रवर्धन [process] होता है जिससे वह प्रगंडास्थि [Humerus] के नीचे के सिरे से मिलती है और कब्जे नुमा संधि [Hinge joint] बनाती है। अन्तः प्रकोष्ठास्थि छोटी उँगली की रेखा में है और भीतर की तरफ होती है। बहिः प्रकोष्ठास्थि [radius] बाहरी हड्डी है और अँगूठे की संधि में होती है। बहिः प्रकोष्ठास्थि का नीचे का सिरा फैला हुआ है और कलाई से जुड़ा रहता है। वहिः प्रकोष्ठास्थि हाथ को चारो ओर घुमाने का काम करती है। इसलिए इसे अंग्रेजी में [Radius] कहते हैं।
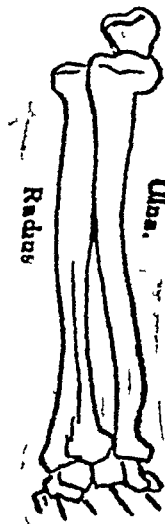
चित्रस०१५-बहि प्रकोष्ठास्थि Radius और अ प्रकोष्ठास्थि [Ulna]

चित्र संख्या १६—हाथ की हड्डियाँ

कलाई (Carpus) में आठ छोटी कूर्चास्थियां (Carpal bones) जो दो कतारों में बँटी रहती हैं, होती हैं।

करतल (Metacarpus) में पांच करभास्थियां (Metacarpal bones) होती हैं। उँगलियों के पोर्वे (Phalanges) १४ होते हैं। हरेक उँगली में ३ और अंगूठे में दो पोर्वे होते हैं।
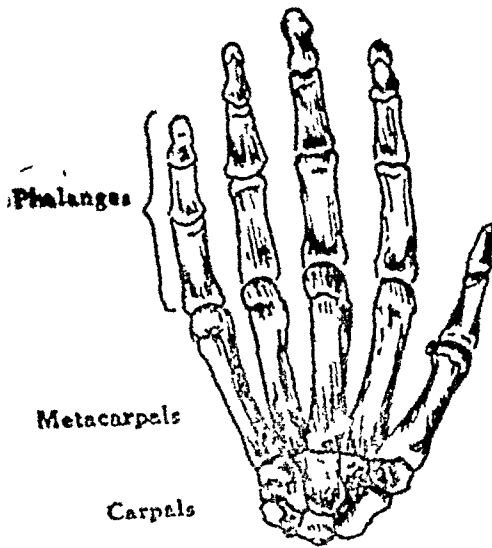
पैर में कूल्हे की हड्डी [Hipbone], जांघ, टांग, टखना [ankle] तथा पैर होता है।
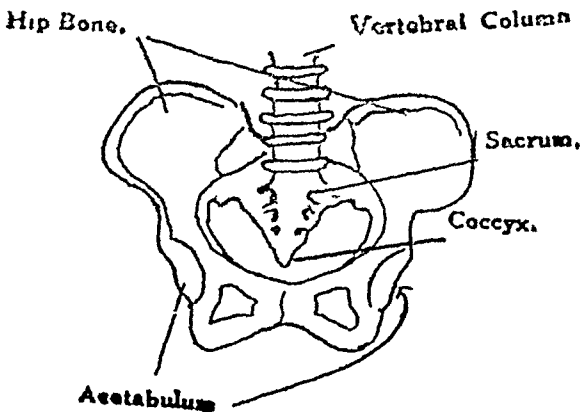
चित्र संख्या १७—कूल्हे की हड्डियाँ [Pelvic girdle]

कूल्हे की दो हड्डियां त्रिकास्थि (Sacrum) तथा गुदास्थि [Coccyx] से मिली हुई होती है। वे एक तरह का उथला वर्त्तन बनाती है जिस पर उनके ऊपर के भीतरी अवयव टिके रहते हैं। कूल्हे की प्रत्येक हड्डी के बाहरी तरफ एक गहरा गड्ढा होता है जो असफलक [Shoulder blade] के अंसपीठ (Glenoid Cavity) के समान पर उससे अधिक गहरा होता है। इसे वंक्षणोलूखल (acetabulum) कहते हैं। इसमें जांघ की हड्डी का गेंद जैसा सिर ठीक बैठता है।

जांघ की हड्डी अर्थात् ऊर्वस्थि [femur] शरीर की सबसे लम्बी और मजबूत हड्डी है। यह कुछ-कुछ प्रगंडास्थि [humerus] जैसी है लेकिन यह उससे कुछ अधिक मोटी तथा मजबूत होती है और इसका बाहर निकला हुआ ऊपर का सिर गोलाकार होता है तथा उसके एक गर्दन होती है जो उसे हड्डी के तने से मिलाती है। इसका यह सिर वंक्षणोलूखल (acetabulum) में ठीक बैठता है और इस तरह से गेंद और प्याले की संधि बनाता है। ऊर्वस्थि (Femur) के नीचे के सिरे में दो चिकने गोल उभार [Prominences] होते हैं जो उसे टांग की हड्डी जंघास्थि [Tibia] से मिलाकर घुटने की सन्धि बनाते हैं। नीचे के सिरे के बीच में एक गड्ढा होता है जिसमें चपनी [knee cap] या जान्वास्थि [Patella] आती है। यह चपनी एक छोटी व पतली, चपटी त्रिकोणाकार हड्डी है।
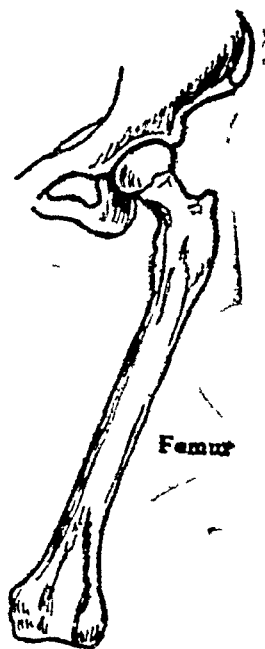
चित्र संख्या १८
ऊर्वास्थि [Femur]

टांग में दो हड्डियां होती हैं। सामने की तरफ जंघास्थि [Tidia] या पिंडली की हड्डी होती है। यह एक लम्बी हड्डी है और यह शरीर का भार सम्हालती है। यह जांघ की हड्डी के साथ कब्जे की संधि [Hinge Joint] बनाती है। अनुजंघास्थि [Fibula] एक लम्बी पतली हड्डी है और इसी कारण यह खपच्ची हड्डी [Splint bone] कहलाती है। यह पिंडली की हड्डी के साथ दोनों सिरों पर इस तरह जुड़ी रहती है कि हिल नहीं सकती। जंघास्थि और अनुजंघास्थि दोनों मिल कर टखने से जुड़ती हैं।
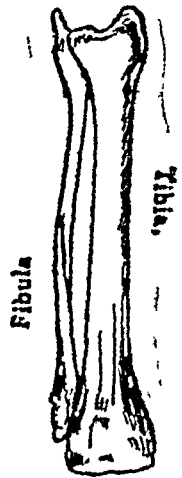
चित्र सं० १६
जंघास्थि (Tibia)
और अनुजंघास्थि
[Fibula]

टखने में सात कुर्चास्थियां [Tarsal bones] होती हैं। इनमें सबसे लम्बी ओस केलसिस [Os Calois] एड़ी बनाती हैं।
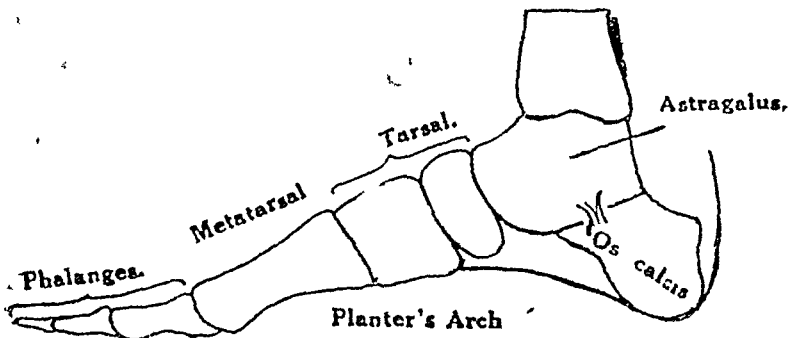
चित्र सं० २०—पैर की हड्डियाँ

इसके ऊपर एस्ट्रेगैलस [Astragalus] होती है जो पैर की ओस केलासिस के बाद सबसे लम्बी हड्डी है। यह जंघास्थि [Tibia] के नीचे के सिरे से जुड़ी होती है। कूर्चास्थियां टखना एड़ी और पैर का आधा तलवा बनाती है। यह पैर को मजबूत महराबदार बनाती हैं। इससे पैर पर शरीर का सारा बोझ टिका रहता है। यह चलते, दौड़ते और कूदते वक्त लगने वाले धक्कों को सह लेता है। यह महराब प्लांटर का महराब [Planter's-Arch] कहलाता है।

पैर के तलवे में पांच प्रपादास्थि [Metatarsal bones] होती हैं।

पांव की उँगलियो में चौदह पोर्वे होते हैं। हरेक उँगली में तीन और अँगूठे में दो पोर्वे होते हैं।

हाथ की हड्डियाँ (एक तरफ की]		पैर की हड्डियाँ [एक तरफ की]	
हँसली [Clavicle]	....१	कूल्हेकी हड्डी [PelvicGirdle]	
स्कंधास्थि [Scapula]	....१	ऊर्वास्थि [Femur]	....१
प्रगंडास्थि [Humerus]	...१	जान्वास्थि [Patella]	...१
अ तःप्रकोष्ठास्थि [Ulna]	....१	जंघास्थि [Tibia]	....१
बाहिःप्रकोष्ठास्थि [Radius]	१	अनुजंघास्थि [Fibula]	...१
कूर्चास्थि [Carpals]	....८	कूर्चास्थि [Tarsals]	....७
कर्भास्थि [Metacarpalsl]	५	प्रपादास्थि	...५
पौर्वे	१४ (२,३,३,३,३]	पोर्वे	१४ [२,३,३,३]
कुल	३२	कुल	३१

प्रश्न

१ सिर और चेहरे की हड्डियों के नाम बतलाइये। उनकी खास बातों तथा उपयोग का उल्लेख कीजिये।

२ दाँत की बनावट तथा जबड़ों में दाँतों के क्रम स्थापनका वर्णन कीजिए।
३ कशेरु का वर्णन कीजिये।
४ पसलियाँ क्या हैं और उनके क्या उपयोग हैं?
५ हाथ की हड्डियों का वर्णन कीजिए।
६ कूल्हे [Pelvis] का वर्णन कीजिए।
७ पैर की हड्डियों का वर्णन कीजिए।
८ बतलाइये नीचे लिखी हड्डियाँ कहाँ पर हैं :—

हँसली, वक्षोस्थि, आन्त्रास्थि, ओस केलसिस, जतूकास्थि [Sphenoid], अन्तःप्रकोष्ठास्थि [ulna] झर्झरास्थि, [ethmoid] पश्चादास्थि [occipital]

अध्याय ३

माँस-संस्थान (Muscular System)

पेशी माँस का एक टुकड़ा है। माँस से तात्पर्य पेशियो का एक समूह है। हर एक के साथ एक खास हड्डी या हड्डियाँ लगी रहती हैं जिन्हे वह घुमाती है। वे अस्थिपंजर का आवरण बनाती हैं और दिल, रक्त नलिकाओं, आमाशय [Stomach] तथा दूसरे विभिन्न अन्दरूनी अवयवों की दीवारें बनाती हैं। शरीर का आधा भाग माँस है। माँस में विचित्र बात यह होती है कि वह छोटा हो सकता है। छोटे होने में यह उन जगहों पर जिनसे वह जुड़ा होता है जोर से दबाव डालता है। माँस पेशियो के सिरे हड्डियों से कंडराओं [Tendons] से जुड़े रहते हैं। ये कंडरायें मज़बूत डोरे की तरह पट्टियों की बनी होती हैं वह जो सफेद रेशेदार [Fibrous] तन्तुओ की बनी होती हैं।
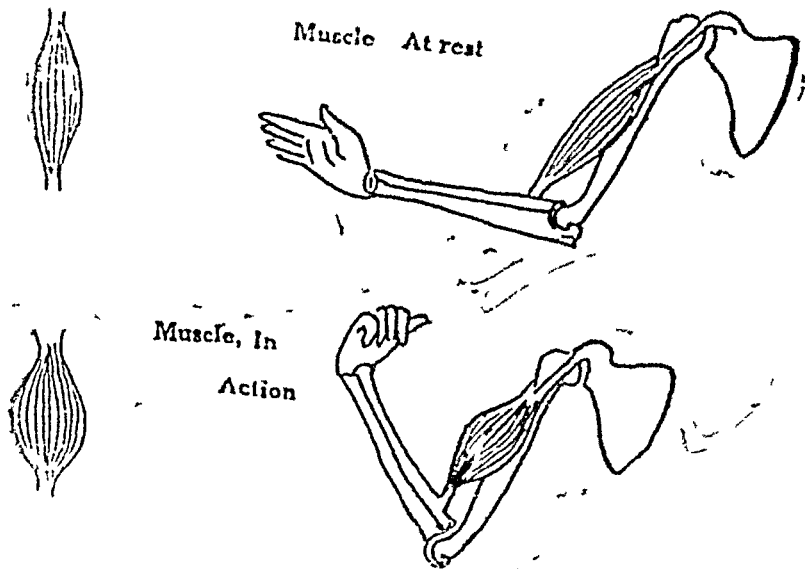
चित्र संख्या २१—द्विशिरस्का [Biceps] माँस में पेशी की अग्रबाहु को हिलाने की क्रिया

माँस-पेशियो के बीच का भाग मोटा तथा उभरा होता है। माँस पेशियो में दो लगाव होते हैं, एक उत्पत्ति स्थान और दूसरा जोड़ का स्थान। उत्पत्ति स्थान पर यह एक निर्धारित जगह साधारणतः लगा रहता है। जोड़ के स्थान यह एक गतिशील हड्डी से मज़बूत श्वेत कंडराओ से जुड़ा होता है।

शरीर की सारी गतियाँ माँस पेशियों द्वारा होती है।

माँस पेशी दो तरह की होती है—ऐच्छिक [Voluntary] और अनैच्छिक [Involuntary]। ऐच्छिक मांस पेशियाँ वे हैं जिनका काम इच्छा पर निर्भर होता है जैसे हाथ और पैर की माँसपेशियाँ। चित्र संख्या २१ में द्विशिरस्क का माँस पेशी का सिकुड़ कर अग्रबाहु को कफोणि संधि [Elbow joint] पर घुमाने का काम दिखाया गया है।

अनैच्छिक माँसपेशियाँ अपना काम हमारे अनजान में करती

हैं। इनके काम का इच्छा द्वारा नियंत्रण नहीं किया जा सकता। यह काम नींद में भी अपने आप होता रहता है । उदाहरणार्थ आमाशय और अंतड़ियो की माँस पेशियाँ तथा दिल, रक्तनलिकाएं तथा फेफड़ों की माँस पेशियां।

सारांश

पेशियाँ शरीर का मांस है। पेशियाँ दो प्रकार की होती हैं— (१) ऐच्छिक (२) अनैच्छिक। माँसपेशियाँ रेशेदार तन्तुओं का समूह है। माँसपेशी के दो सिरे होते है—(१) उत्पत्ति (२) जोड़ का स्थान, मध्य में एक उभार होता है। शरीर की सब गतियाँ मांसपेशियों द्वारा होती हैं।

प्रश्न

१—माँशपेशी क्या है? ऐच्छिक तथा अनैच्छिक माँस पेशियाँ क्या हैं?

२—माँसपेशी के काम को चित्र द्वारा समझाइये।

अध्याय ४

भोज्य पदार्थों की श्रेणियाँ

नष्ट होने वाले पदार्थों को नया बनाने, कद तथा वजन की वृद्धि और शरीर को गर्म रखने के लिये, शक्ति तथा गर्मी पैदा करने एवं शरीर के सारे कामों को करने के लिए भोजन की जरूरत पड़ती है। सफाई तथा विभिन्न रासायनिक कार्यों के लिए पानी की आवश्यकता होती है। अपने गुणों के अनुसार भोज्य पदार्थ निम्नलिखित विभागो में बाँटे गये हैं:—

१—प्रोटीन या नत्रजन वाले भोज्य पदार्थ, ये वृद्धि तथा पुनर्निर्माण के लिये जरूरी हैं।

प्रोटीन हमारे भोजन में बहुत (common) पदार्थ हैं।

उदाहरण:—अंडा, मांस, मछली, दूध, मलाई, दाल। प्रोटीन

कार्बन, उद्जन, ओषजन, नत्रजन और गंधक के बनते हैं।

२—कर्बोदेत (Carbohydrates) ये गर्मी तथा शक्ति पैदा करने के लिये जरूरी है।

उदाहरणः—श्वेतसार (Starches) तथा शर्कराएँ (sugars) इस वर्ग में शामिल हैं। जैसे—चावल, आलू, अनाज, सागूदाना तथा चीनी। कर्बोदेतों में कार्बन, उद्जन तथा ओषजन होते हैं।

३—वसा (Fats)—ये भी गर्मी तथा शक्ति पैदा करनेवाले पदार्थ हैं। वसामय पदार्थ कर्बोदेतो से दुगनी गर्मी उत्पन्न करते हैं और सख्त काम करने के लिये तथा ठंडे मुल्को में रहनेवालों के लिये वहुत फ़ायदेमन्द होते हैं।

उदाहरण—घी, मक्खन तथा तैल, काड मछली का तैल। वसा में कार्बन, उद्जन तथा ओषजन होते हैं।

४—लवण—ये शरीर के विभिन्न भागों को बनाने तथा पाचन रस को पैदा करने के लिये ज़रूरी हैं।

५—नमक—नमक के तेजाव को पैदा करने के लिए काम में आता है। नमक का तेजाब आमाशय में पाचन के लिए रहता है। यह भोजन को स्वादिष्ट बनाता है।

चूना या केलसियम के लवण हड्डियो के बनाने में मदद पहुँचाते हैं। इनकी कमी से बढ़ती कम हो जाती है या रिकेट नामका रोग हो जाता है। ये लवण दूध तथा अंडे में पाये जाते हैं। खून के लिए लोहे के लवणो की जरूरत पड़ती है। खून में इनकी कमी हो जाने से एनेमिया (anaemia) नामक रोग हो जाता है। पोटेशियम के लवण खून को साफ करते हैं। ये लवण ताजी तरकारियो तथा फलो में पाये जाते हैं।

कार्बनिक लवण जो ताजी तरकारियो तथा फलो में पाये जाते हैं, पाचन रसो के बनाने में काम आते हैं।

नीबू तथा संतरे ताजगी भी पैदा करते हैं।

६—पानी की जरूरत इन कारणों से पड़ती है:—

(१) भोजन को हल करने या घोलने तथा उसके पाचन व शोषण में मदद पहुँचाने के लिए।

(२) खून को बहता हुआ रखने के लिए।

(३) शरीर की नष्ट हुई चीजों को पेशाब तथा पसीने के रूप में हटाने के लिए।

(४) गर्मी के मौसम में हमारे शरीर को ठंडा रखने के लिए।

(५) दूसरे भोज्य पदार्थों के साथ विभिन्न यौगिक बनाने और रासायनिक संयोग करने के लिए।

७—*विटेमिन*—ये एक तरह के रासायनिक पदार्थ हैं जो नाना प्रकार की खाने की चीजों में पाये जाते हैं तथा जो पाचन, वृद्धि तथा विकास के लिए और शरीर को स्वस्थ रखने एवं उसे रोगों से बचाने के लिए जरूरी हैं। वे विशेषतः छोटे बढ़ते हुए बच्चों के लिए अमूल्य पदार्थ हैं।

पाँच तरह के विटैमिन निश्चित रूप से मालूम हैं और वे ए० बी० सी० डी० और ई० विटैमिन कहलाते हैं। कई ऐसे दूसरे विटैमिन भी हैं जो मालूम कर लिये गये हैं। वैज्ञानिक उनके प्रकृति तथा प्रभाव की परीक्षा कर रहे हैं। स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए प्रत्येक विटैमिन कुछ परिमाण में शरीर को मिलता रहना चाहिए। यह परिमाण बहुत थोड़ा है—संभवतः दैनिक भोजन के दस लाखवें हिस्से से अधिक नहीं, परन्तु इसके विपरीत प्रत्येक विटैमिन का न्यूनतम परिमाण शरीर को मिलना बहुत जरूरी है। क्योंकि किसी एक विटैमिन की कमी से विशिष्ट रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

ए *विटैमिन*—मक्खन, दूध, वसा, अंडे, हरी पत्तीदार तरकारियाँ, अंकुरे हुये दानों तथा मछलियों के यकृत (जिगर) (काड-लिवर तैल) में होता है।

यह विटैमिन शरीर की वृद्धि में सहायक होता है। इसके बिना प्राणी ठीक तरह विकसित नहीं हो पाते। इसकी कमी से जीवन-शक्ति का ह्रास होता है और शरीर, गले व फेफड़े में छुतैले रोग तथा आँख की बीमारियाँ हो जाती हैं।

बी विटैमिन—अब कई विटैमिनों से मिलकर बना हुआ माना जाता है। दो तो निश्चितरूप से ज्ञात हैं। एक जो बी विटैमिन कहलाता है बेरी-बेरी रोग रोकता है। यह रोग उन लोगों में अधिक होता है जो पालिश किए हुए चावल खाते रहते हैं। यह चावल के दाने के भूसे (छिलके) में होता है।

बी २ विटैमिन—कई अन्य चर्म रोगों तथा पेलाग्रा को रोकने का काम करता है। पेलाग्रा रोग कुष्ठ रोग जैसा होता है। यह विटैमिन अनाजों (गेहूँ के दानों) दालों, पत्तीदार तरकारियों, दूध तथा अंडे की सफेदी में पाया जाता है।

सी विटैमिन—फलों—जैसे केला, नीबू, नारंगी, अंगूर तथा टमाटर, हरी तरकारियों—जैसे पत्तागोभी, अंकुरे हुए अनाज के दानों, मूली, अंडे तथा दूध में मिलता है। यह स्कर्वी और स्कर्वी रिकेट्स नामक रोगों को रोकता है। इसका रासायनिक संगठन भी मालूम है। यह एक कर्वनिक अम्ल (organic acid की तरह है।

डी विटैमिन—वसा में मिलता है। मछली के जिगर में यह विटैमिन प्रचुर मात्रा में रहता है। काड मछली के जिगर का तैल थोड़े ही परिमाण में लिए जाने से रिकैटस यानी हड्डियों के बिगड़ने की बीमारी रोकी जा सकती या अच्छी हो सकती है। हड्डियों के विकास के लिए डी विटैमिन जरूरी है।

रिकेट्स नामक रोग धूप की कमी के कारण तथा प्राकृतिक वसामय पदार्थों की भोजन में कमी होने के कारण साधारणतः होता है। इससे पूरी तरह धूप सेवन की महत्ता प्रकट होती है। धूप के कारण शरीर में यह विटैमिन बन जाता है।

ई विटैमिन—पत्तीदार तरकारियों तथा पत्तागोभी, सेम, गेहूँ, अंडे तथा प्राणियों के शरीर से बने दूसरे पदार्थों में होता है। इस विटैमिन से प्रजनन शक्ति बढ़ती है। यह विटैमिन स्त्रियों का दूध भी बढ़ाता है। अगर किसी व्यक्ति के भोजन में इस विटैमिन का अभाव हो तो वह पुरुष संतानोत्पादन नहीं कर सकता अर्थात् वह नपुंसक बन जाता है।

८—भोजन में थोड़ा बहुत मोटा भाग (Roughage) भी होना चाहिए। इससे कब्ज नहीं होता और दस्त खुलकर लगता है।

भोजन की उपयोगिता

(१) भोजन शरीर की वृद्धि करता है।

(२) वह शरीर के नष्ट भागो (कोषों) की पूर्ति करता है।

(३) शरीर के कार्यों के लिए आवश्यक शक्ति व गर्मी उत्पन्न करता है।

(४) पानी शरीर की स्वच्छता, ठंडक स्थापित करने में सहायता देता है।

सारांश

भोजन की आवश्यकता शरीर के लिए शक्ति, गर्मी, वृद्धि, नष्ट तन्तु व कोषों की मरम्मत व नवीन तन्तुओं व कोषो की रचना के लिए है एवं शरीर के सारे कार्यों को करने के लिए पड़ती है।

अपने गुणों के अनुसार भोज्य पदार्थ ५ वर्ग में विभाजित किये गये है—प्रोटीन कर्बोदेत, वसा, लवण, जल व विटैमिन।

प्रोटीन शरीर की वृद्धि व मरम्मत के लिए कुछ अंशो में शक्ति व गर्मी के लिए कार्बोदेत व वसा, गर्मी तथा शक्ति के लिए लवण अस्थि के पूर्ण विकास के लिए रक्त को शुद्ध करने के लिए व पाचक रसों व अन्य तंतुओं की रचना के लिए, विटैमीनज पाचन, वृद्धि व विकास व शरीर के स्वस्थ्य रखने व

रोगों से बचने के लिए तथा जल भोजन को हल करने, पाचन व शोषण में सहायता देने के लिए शरीर की स्वच्छता, ठंडक के लिए व अन्य कार्यों के लिए आवश्यक है।

प्रश्न

१—भोजन के विभिन्न उपयोग क्या क्या हैं?

२—भोजन की मुख्य श्रेणियाँ कौन कौन सी हैं?
उदाहरण दीजिये और समझाकर बतलाइये कि वे दैनिक भोजन में क्यों जरूरी हैं।

३—विटैमिन पर एक छोटी टिप्पणी लिखिये।

४—एक औसत बालिग व्यक्ति की भोजन की क्या-क्या जरूरतें हैं?

अध्याय ५

पाचन अवयव

आवश्यक भोज्य पदार्थ रक्त धारा में से होकर शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचते हैं। आमाशय और अंतड़ियों की दीवारों में स्थित रक्त नलिकाओं तथा दूसरे अंगो द्वारा हमारे भोजन का शोषण होने से पहले यह जरूरी है कि वह पच जाय अर्थात् वह शरीर के तंतुओं की जरूरत के अनुसार बन जाय और रक्तधारा में उसका शोषण हो सके। ये क्रियायें पाचन-संस्थान में होती हैं। यह एक लम्बी नली होती है जो मुँह से शुरू होती तथा गुदा तक पहुँचती है। कई ग्रंथियाँ (Glands) जिनका रस इसमें पहुँचता है इससे संबद्ध रहती हैं। यह नली अन्न-मार्ग (Alimentary canal) कहलाती है। भोजन मुँह से भोजन नली में पहुँचता है और वहाँ से आमाशय क्षुद्रान्त्र (Small intestine) तथा बृहदंत्र (Large intestine) को जाता है।

मुँह, आमाशय तथा अंतड़ियों में उत्पन्न होने वाले रसों के अलावा क्लोम (pancreas) तथा यकृत (liver) का पाचन रस भी अन्न-मार्ग में पहुँचता है।
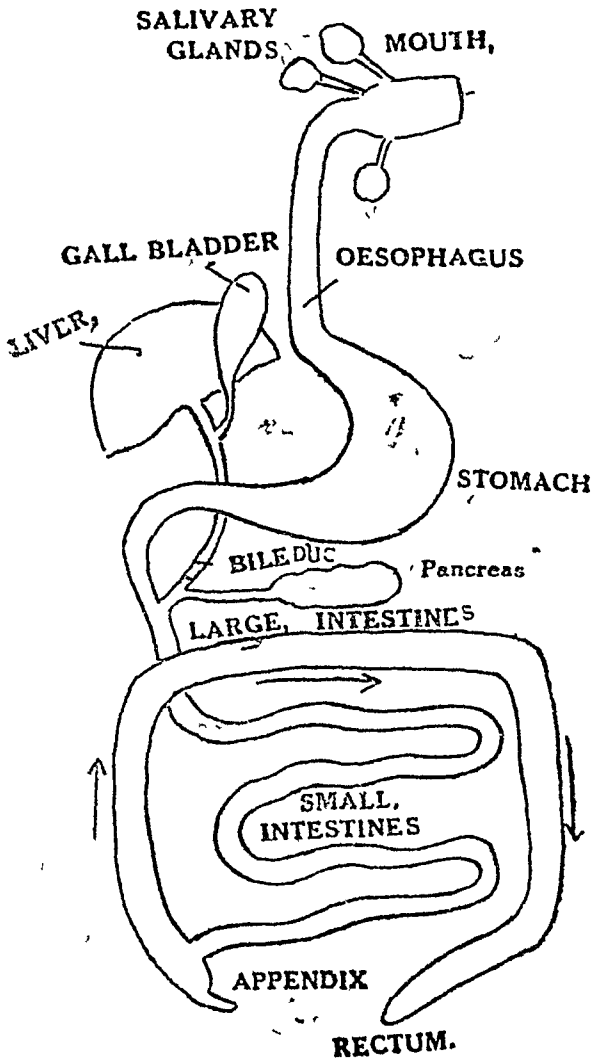
२२—अन्न-मार्ग (The Alimentary Canal)

मुँह—मुँह में भोजन दाँतों से काटा व चबाया जाता है। हमें उनकी बनावट और काम मालूम ही हैं। (देखिये चित्र सं० ८) जीभ माँस की बनी हुई होती है। यह भोजन को मुँह में भली भाँति चर्वण करती है जहाँ पर वह थूक (लाला) से मिलता है। जीभ में छोटे स्वाद-कोष (Tastebuds) होते हैं। यह स्वाद का अवयव है। जीभ भोजन की गोली बना कर उसे ढकेलती है और उस के निगलने में मदद करती है।

चित्र संख्या २३—लालाग्रंथियाँ (The Salivary glands)
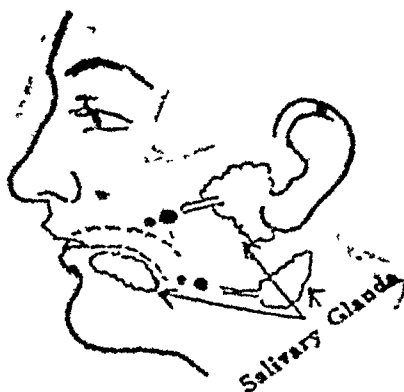
लालाग्रंथियों* (Salivary glands) के तीन जोड़े होते हैं। इनमें से एक कान के नीचे दूसरा जबड़े के नीचे तथा तीसरा जीभ के नीचे होता है। इनमें से एक पानी जैसा रस बनाता है जिसे थूक कहते हैं। (१) यह श्वेतसार (Starch) को शर्करा (Sugar) बनाता है जो घुल जाती है। (२) यह घुलनशील पदार्थों तथा चीनी व नमक को घोलता है। (३) यह ग्रास को निगलने में सहायता करता है। (४) यह हमारे मुँह को गीला रखता है तथा हमें बोलने में मदद पहुँचाता है। मुँह के ठीक पीछे यह नली एक कीप (Funnel) के आकार के गड्ढे में फैल जाती है। इसको मुखकण्ठ (Pharynx) कहते हैं।

अन्न प्रणाली—(Oesophagus) या भोजन-नली (gullet) (चित्र २२) एक तंग, माँस की बनी नली है। इसकी लम्बाई

---

* ग्रन्थि वह अवयव है जो उसमें भ्रमण करने वाले रक्त से अलग करके या नये सिरे से एक तरह का रस बनाता है।

PLATE No. 2
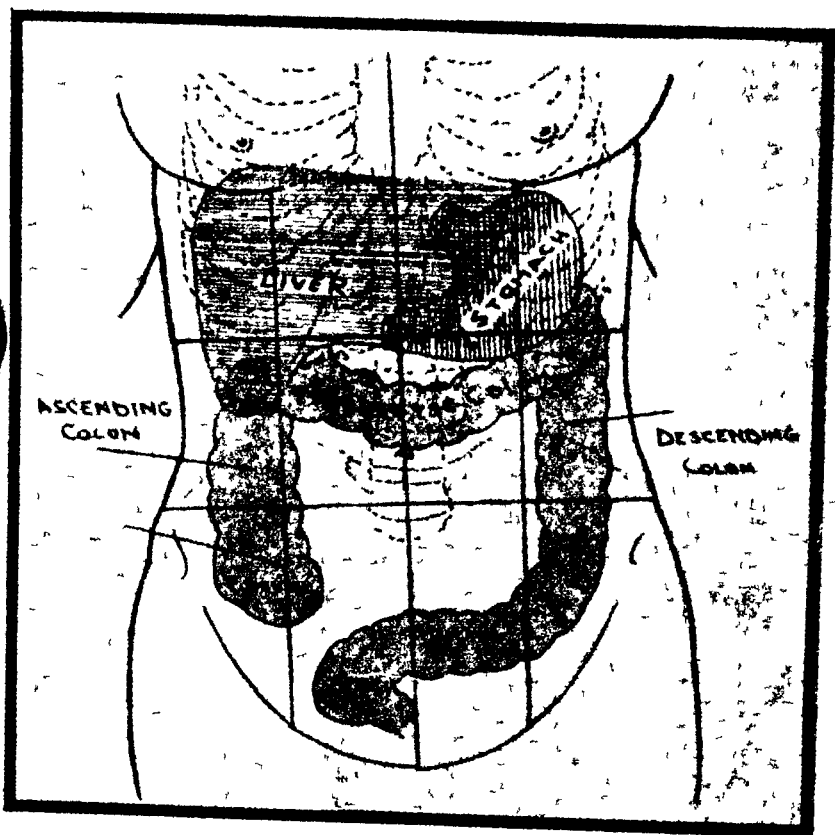
पेड़ू के भीतरी अङ्ग

लगभग १० इंच है। भोजन इस मार्ग में भोजन नली के मॉस की कीड़े की जैसी गति से नीचे पहुँचता है, यह नहीं कि एक दम सीधा आमाशय में जा गिरे।

आमाशय (stomach)—एक मॉस का बना थैला है। यह लगभग १२ इंच लम्बा है। ऊपर सिरे पर ज्यादा बड़ा है। भोजन नली आमाशय से उसके बीच में मिलती है। दूसरा छेद तंग सिरे पर है जो दक्षिणी सिरा (pyloric end) कहलाता है और जहाँ पर अंतड़ियाँ शुरू होती हैं। आमाशय की भीतरी दीवारों में छोटी-छोटी ग्रंथियों की कतार लगी है। ये ग्रंथियाँ (glands) आमाशयिक रस (gastric juice) बनाती हैं। आमाशय की दीवारों की गति के कारण भोजन के साथ पाचन रस मिलता है। आमाशयिक रस प्रोटीन को घुलनशील पेपटोन तथा अमीनो अम्लों (amino acids) में परिणत करता है।

अन्नमार्ग फिर सकरा हो जाता है और अंतड़ियों में जा मिलता है जो २३ फुट लम्बी होती हैं। (क्षुद्रांत्र १८ फुट तथा बृहदंत्र ५ फुट लंबा होता है)। क्षुद्रांत्र का पूर्वभाग पक्वाशय (Duodenum) (लगभग १० इंच लंबा) 'C' अक्षर की शकल जैसा है। यहाँ पर यकृत और क्लोम (pancreas) से नलिकाएँ या प्रणालियाँ (ducts) प्रविष्ट
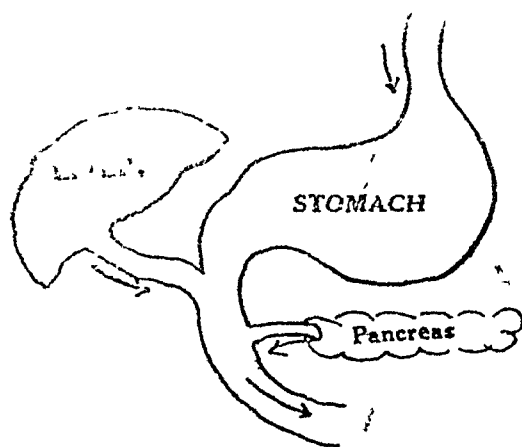
चित्र सं० २४—आमाशय, यकृत तथा क्लोम (Stomach, liver & pancreas)

होती हैं। पक्वाशय की भीतरी दीवारें एक रस बनाती हैं जिसकी क्रिया थूक जैसी है।

यकृत (liver) शरीर में एक सबसे लंबा तथा भारी अवयव है। इसका संबध पाचन-संस्थान के इस भाग से है। इसका वजन ५० से ६० आउन्स होता है। यह काले लाल रंग का है तथा इसकी बनावट नरम एवं मजबूत है। यह वक्षस्थोद मध्यस्थ पेशी (diaphragm) के नीचे होता है और यह दो भागों—दायें और बाये पिंड (lobe) में बॅटा हुआ है। इसका लालरंग इसमें रक्तनलिकाओ के बहुत विस्तृत जाल में वर्तमान रक्त का कारण है। यह पचे हुए भोजन को एक विशेष रूप की शर्करा के रूप में जमा रखता है। यकृत शरीर की गर्मी को बनाये रखने में मदद पहुँचाता तथा अन्य कार्य करता है।

यकृत के नीचे की सतह पर एक गोल ग्रंथि होती है जिसे पित्ताशय (gall bladder) कहते हैं। यकृत द्वारा बनाए गये रस को यह जमा रखता है। पित्त प्रणाली (bile duct) द्वारा यह यकृत रस को पक्वाशय (duodenum) में पहुँचाता है। यकृत रस क्लोम रस की वसा पर होने वाली क्रिया में सहायक होता है। इसकी क्रिया प्रतिविषात्मक है और यह भोजन को विच्छिन्न (decompose) होने से रोकता है।

क्लोम (pancreas)—पक्वाशय के घेरे में स्थित एक अवयव (७″ × ½″) है। यह क्लोम रस (pancreatic fluid) बनाता है। यह रस पक्वाशय में भेजा जाता है और (१) श्वेतसार के पूरी तरह पचने, (२) वसा के पायस्यीकरण (Emulsification) तथा (३) नेत्रजन वाले भोजन को पेपटोन में बदलने में मदद देता है।

बाकी का क्षुद्रांत्र (Small intestine) एक मुड़ी हुई नली है जो अधिक चौड़े बृहदंत्र में खुलती है। क्षुद्रांत्र की भीतरी झिल्लियाँ (Membranes) द्वारा बनाया गया रस पाचन-कार्य

को पूरा करता है। जब तक खाना क्षुद्रांत के बाहर तक पहुँचता है तब तक पूरी तरह पच जाता है।

क्षुद्रांत्र तथा बृहदंत्र का जहां पर मेल होता है उसके ठीक नीचे एक बंद थैला होता है जो सीकम (Caecum) कहलाता है। एक सकरी बंद नली-उपांत्र (Vermiform appendix) जो कनिष्ठिका उंगली के बराबर होती है, सीकम से लटकती है। (चित्र संख्या २२ देखो)।

बृहदंत्र (large intestine) में एक ऊर्ध्व भाग (ascending) एक मध्यभाग (Transverse) तथा एक निम्न भाग (descending) होता है। पाचन के बाद जो द्रव भाग रह जाता है वह बहुत कुछ यहाँ शोषित हो जाता है और जो मल बच रहता है जो इकट्ठा होकर एक सीधी नली मलाशय (rectum) में चला जाता है। मलाशय का बाहरी द्वार गुदा में है।

सारांश

अन्न मार्ग एक लम्बी नली है जो मुखसे प्रारंभ होकर गुदा तक जाती है। इसमें मुख, अन्न-प्रणाली, आमाशय, छोटी व बड़ी अंतड़ियां हैं। भोजन कई पाचक रसों द्वारा पचाया जाता है जो मुख, आमाशय, क्लोम, पित्ताशय व अंतड़ियों में उत्पन्न होते हैं। अन्न-प्रणाली ग्रीवा से आरंभ होकर वक्षःस्थल पार कर आमाशय में जा मिलती है। आमाशय व अंतड़ियाँ उदरस्थल में हैं। यकृत (Liver) आमाशय के दाहिनी ओर है, पित्ताशय निम्न तल से इससे जुड़ा होता है। क्लोम, आमाशय के पीछे पकाशय के पीछे है। पित्त प्रणाली व क्लोम प्रणाली पकाशय में रस प्रविष्ट कराती हैं।

प्रश्न—

१—अन्न-मार्ग का वर्णन कीजिये।

२—विभिन्न पाचन रसों का जो अन्न मार्ग में या उससे सम्बद्ध अवयवों द्वारा बनते हैं, उल्लेख कीजिये।

अध्याय ६

पाचन तथा शोषण

पाचन क्या है ? यह समझना बहुत कठिन नहीं है। हम पानी में यदि चीनी का एक डेला डालें तो वह घुल जाता है। अब यदि हम मांस का एक टुकड़ा पानी में डालते हैं तो वह नहीं घुलता। हम एक औषध-विक्रेता की दूकान से एक पीला चूर्ण जिसे *ट्रिपसिन* (trypsin) कहते हैं, खरीद लें और उसका थोड़ा सा भाग उस पानी में जिसमें मांस का टुकड़ा पड़ा हुआ है, डाल दें और उसे थोड़ा गर्म करलें। कुछ देर बाद हम देखते हैं कि मांस घुल गया है। जो चूर्ण हमने डाला वह एक प्रेरकाणु (enzyme) था। प्रेरकाणु उन पदार्थों में जिन पर उसकी क्रिया होती है बिना स्वयं परिवर्तित हुए सक्रिय रासायनिक परिवर्त्तन कर दे सकता है। उसके बिना रासायनिक क्रिया नहीं हो पाती। ऊपर के उदाहरण में ट्रिपसिन चूर्ण ने मांस को घुलनशील पदार्थ में बदलने में मदद पहुँचाई है।

दूसरे शब्दों में ट्रिपसिन की क्रिया से मांस पच गया है। पाचन यह है—न घुलने वाले भोज्य पदार्थ प्रेरकाणुओं (enzymes) की क्रिया द्वारा घुलनशील पदार्थों में परिणत कर दिये जाते हैं। केवल घोल के रूप में ही ये पचे हुये, घुले हुए या परिवर्त्तित भोज्य पदार्थ शरीर के तन्तुओं में प्रविष्ट हो सकते हैं तथा उनकी जरूरतें पूरी कर सकते हैं।

मुँह में भोजन (लाला) थूक से मिलता है। थूक (लाला) में एक ख़मीर (ferment) होता है जिसे *टाइलिन* (ptyalin) कहते हैं। यह ख़मीर टायलिन न घुलने वाले श्वेतसारों (starches) को

शर्कराओं में बदल देता है जिनका शोषण जब खाना मुँह में ही रहता है हो जाता है। इसलिये खाने को खूब चबाना चाहिए और उसे मुँह में काफी देर तक रखना चाहिये। थूक (लाला) श्वेतसारों को पचाता है।

आमाशय (stomach) में नमक का तेजाब तथा दो खमीर पेपसिन एवं रेनिन जो आमाशयिक रस के अंश हैं खाने पर अपना काम करते है। खाना जब आमाशय में आता है तो क्षारीय (alkaline) होता है। नमक का तेजाब उसे अम्लीय बना देता है, रेनिन से दूध जम जाता है और दधिन (casein) को अवच्छिन्न करता है। पेपसिन की दधिन और दूसरे प्रोटीनों पर क्रिया होती है और उन्हे घुलनशील पेपटोन और अमीनो अम्लो में परिणत कर देता है। आमाशयिक रस (gastric juice) नत्रजनीय (nitrogenous) भोजन को पचाता है। ये पेपटोन, लवण, शर्करा तथा दूसरे घुलने वाले पदार्थ अंशतः यहां और बाकी क्षुद्रान्त्र में शोषित हो जाते है। आमाशय में पचा हुआ खाना एक गूदेदार (अर्धद्रव) पदार्थ में बदल जाता है। इसे काइम (chyme) आहार रस कहते हैं—

क्लोमरस (pancreatic juice) में जो पक्वाशय में पहुँचता है, तीन खमीर (ferments) होते हैं—

१ स्टियेपसिन (steapsin) जो वसाओ तथा तैलों को तोड़ कर के एक उम्दा पायस्य (emulsion) बनाता है। यह पायस्य आसानी से शोषित हो जाता है।

२ ट्रिपसिन (trypsin) जो नत्रजनीय भोजन को पेपटोन में बदलता है, और

३ ऐमायलोपसिन (Amylopsin) जो श्वेतसार (starch) को शर्करा में परिणत करता है।

क्लोम में इनसोलिन (Insulin) बनता है।

पित्त (bile) क्लोम रस की वसाओं पर होने वाली क्रिया में सहायक होता है। यह पचे हुए भोजन के शोषण में भी सहायता करता है। पित्त और क्लोम रस से मिलने के बाद काइम (आहार रस) का रूप तथा सगठन बदल जाता है। यह अब काइल (chyle) कहलाता है।

आंत्रीय रस (intestinal juices)—पाचन कार्य को पूरा करते हैं (१) ये श्वेतसार पर टाइलिन और ऐमाइलोपसिन की क्रिया से बनी हुई शर्कराओं को और भी सरल तर शर्करा (द्राक्षशर्करा glucose) में परिणत करते हैं। (२) ये पेपटोनों को अमीनो अम्लो में परिवर्तित करते है। (३) ये इक्षु तथा दुग्ध शर्कराओं (cane & milk sugars) को सरलतर शर्कराओं में बदलते हैं।

पचे हुए भोजन का शोपण—पचे हुए भोजन का रक्त में शोपण होता है। यह शोपण विशेषत: क्षुद्रांत (small intestine) में होता है पर कुछ शोपण मुंह तथा आमाशय में भी होता है। पचे हुए श्वेतसार (शर्करा) और पचे हुए प्रोटीन (पेपटोन) अन्न मार्ग के भीतरी सतह में मौजूद रक्त-नलिकाओं के जाल द्वारा शोषित होते हैं। रक्त नलिकाये मिल कर शिरायें बनती हैं। आमाशय तथा अंतड़ियोंसे आने वाली शिराये इन पदार्थों को एक बड़ी शिरा में पहुंचा देती हैं जो उन्हें यकृत तक ले जाती है। यकृत इनको जमा रखता है और
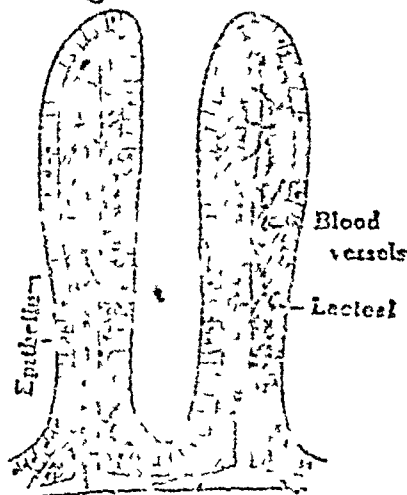
चित्र संख्या २५—दो आहार्यांकुर (Two villi)

उनको रक्तधारा द्वारा शरीर के विभिन्न अवयवों को ठीक तरह बाँटने का काम करता है।

रक्त वाहिनियों (blood vessels) के अलावा असंख्य छोटे छोटे बाल के सदृश रोंये होते हैं जिन्हे ग्राहकॉकुर (villi) कहते है। ये क्षुद्रान्त्र की भीतरी सतह से निकलते है। ग्राहकॉकुरो में रक्त वाहिनियां तथा सफेद महीन धागे जैसी नलिकाये होती हैं जिन्हे लैक्टियल (lacteals) कहते हैं। ये पचा हुआ दूधिया खाने का शोषण करती हैं। लैक्टियल मिल कर लिम्फैटिक (lymphatics) और अन्त में एक बड़ी लसीका वाहिनी (lymphatic vessel) बनाती है जो गर्दन के पास रक्त धारा में खुलती हैं।

वृहदन्त्र पानी तथा दूसरे पदार्थ का जो अभी तक शोषित हो सकता है, शोषण करता है। वृहदंत्र के पदार्थ ठोस हो जाते हैं और बाहर निकाल दिये जाते हैं।

एकीकरण (Assimilation)—भोजन के पूरी तरह पच जाने पर वह रक्तवाहिनियां तथा ग्राहकॉकुरों की केशिकाओ (Capillaries) द्वारा निम्नलिखित रूप में शोषित हो जाता है—

(१) प्रोटीन से अमीनो अम्ल (amino acid) ।

(२) कर्बोदेतों (carbohydrates) से सरल शर्कराएं ।

(३) वसाओं से पायस्यीकृत वसाएं (emulsified fats)।

रक्त में इसलिये शुद्ध अमीनो अम्ल, वसाके तैल कण तथा शर्करा होती है। कोष इनका उपयोग करते हैं। कोषो द्वारा भोजन का उपयोग वास्तविक एकीकरण है। अमीनो अम्ल रक्त में घूमते हैं और रक्त में से मांसपेशी तथा दूसरे ततुओ द्वारा ले लिये जाते हैं और नये तन्तु बनाने या घिसे हुए तन्तुओ को बदलने के काम मे आते है। अमीनो अम्लो की तुलना वर्णमाला के अक्षरो से की गई है, क्योकि जैसे अक्षरो के विभिन्न मेल से

सब तरह के शब्द बनते हैं उसी तरह अमीनो अम्लों के अलग अलग मेल से विभिन्न कोषों द्वारा अपेक्षित, कई तरह के प्रोटीन बनते हैं।

अमीनो अम्लों का वह अंश जो काम में नहीं आता यकृत को ले जाया जाता है और विच्छिन्न किया जाकर यूरिया (urea) तथा दूसरे पदार्थों में परिणत कर दिया जाता है। इनके ओषधीकरण (Oxidation) से भी शक्ति तथा गर्मी पैदा होती है।

रक्त में शर्करा द्राक्ष शर्करा (glucose) के रूप में रहती है। इसका ओषधीकरण होकर कार्बन द्विओषिद् (carbon dioxide) तथा पानी बनता है जिससे गर्मी और शक्ति पैदा होती है। काम में न आई हुई शर्करा यकृत में ग्लाइकोजन (glycogen) के रूप में जमा रहती है और वह वसा में भी बदली जाकर जमा हो सकती है। जब शरीर को जरूरत पड़ती है, यकृत ग्लाइकोजन को शर्करा में बदल देता है। यह शर्करा रक्त द्वारा कोषों को पहुँचाई जाती है जहाँ पर उसका ओषधीकरण होता है (जलती है) इससे कार्बन द्विओषिद् तथा पानी बनता है और शक्ति पैदा होती है।

वसाएँ रक्त में पायस्य स्वरूप में महीन तैलकणों की तरह भ्रमण करती हैं। वसा के ओषधीकरण से भी कार्बन द्विओषिद् तथा पानी बनता है। यह शरीर को शक्ति और गर्मी देने के लिए भोजन रूपी ईंधन का काम करती है। कुछ वसा या तो शरीर के विभिन्न तन्तुओं में जमा रहती है या चमड़ी के नीचे साधारण पाटने वाली तह के रूप में रहती है।

इन सब कामों में प्रयुक्त ओषजन (Oxygen) रक्त से मिलता है। रक्त शरीर भर के तन्तुओं तथा कोषों द्वारा अपेक्षित ओषजन तथा भोजन के पदार्थों को उन तक ले जाता है। यह कार्बन द्विओषिद्, पानी तथा दूसरी फालतू चीजों को वापस

जाता है। यह अदला बदली रक्त केशिकाओं (capillaries) की पतली दीवारों में से होती है। वापस लौटते समय रक्त अपना बहुत सारा भोजन तथा ओषजन खो चुका होता है और उसे फिर नये सिरे से ओषजन (फेफड़ो से) तथा भोजन (अन्नमार्ग से) मिलना चाहिये।

सारांश

न घुलने वाले भोज्य पदार्थ कई पाचक रसों की क्रिया द्वारा घुलनशील पदार्थों में परिणत कर दिए जाते हैं। लाला में एक खमीर जिसे टाईलिन (Ptaylin) कहते हैं श्वेत सारो को शर्कराओ में बदल देता है। आमाशयक रस में दो खमीर रेनिन व पेपसिन तथा एक रस हाइड्रोक्लोरिक एसिड। पेपसिन पोटीनों को घुलन-शील पेपोटोन में परिवर्तित कर देता है। रेनिन की क्रिया से दूध जम जाता है। क्लोम में तीन खमीर होते हैं—ट्रिपसिन, स्टियेपसिन तथा ऐमायलेप्सिन। वह वसा, प्रोटीन व श्वेत सारो पर क्रमशः क्रिया करते हैं। पित कोलम रस की वसाओ पर क्रिया में सहायक होता है। अन्तड़ियों का रस पाचन का कार्य पूरा करते हैं:—श्वेतसारकी बनी हुई शर्कराओं को सरलतर शर्करा में, पेपेटोनो को अमीनो अम्लो में व वसाओं को तोड़कर वसा के अम्ल व गिल्सरोल में परिवर्तित करते हैं। पचे हुए भोजन का रक्त व ग्राहकाकुर शोषण करते है जो रक्त द्वारा शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचाया जाता है। वहाँ कोप अपने कार्य के लिए उसे लेते हैं।

प्रश्न

१—पाचनके विभिन्न कार्योंका वर्णन कीजिये। खमीर(Ferments) क्या है ?

२—भोजन का शोषण किस तरह होता है ? ग्राहकाकुर (Villi) क्या है ?

३—कोषों द्वारा भोजन का एकीकरण किस तरह होता है ?

अध्याय ७

रक्त

रक्त का सङ्गठन—जब तुम्हारे शरीर का कोई भाग कट जाता है तो एक लाल द्रव बाहर निकल आता है। कुछ देर बाद केवल एक हलका पीला द्रव दिखाई देता है। इसलिए रक्त में एक हलका पीला सा द्रव होता है जिसमें छोटे लाल अणु (red corpuscles) तैर रहे है। जब खून की सूक्ष्मदर्शक यन्त्र में जाँच की जाती है तो हमें मालूम होता है कि इसमें नीचे लिखी चीजें होती हैं:—

१–एक बिना रङ्ग का या हलका पीला द्रव जिसे रक्त वारि (Plasma) कहते हैं।

२–छोटे-छोटे कुछ ठोस पदार्थ जो रक्त के अणु कहलाते हैं। ये रक्ताणु दो तरह के होते हैं—(१) लाल अणु और (२) श्वेत या रङ्गहीन अणु।

लाल रक्ताणु नन्हे नन्हे गोल घेरे होते हैं। वे बहुत ही सूक्ष्म होते हैं। एक वर्ग इंच जगह को घेरने के लिए ऐसे लगभग एक करोड़ अणुओं की जरूरत पड़ेगी। हरेक लाल रक्ताणु कुछ थोड़ा सा लाल रङ्ग का होता है परन्तु चूँकि वे असंख्य हैं, वे खून को उसका लाल रङ्ग प्रदान करते हैं। लाल और श्वेत अणुओं में एक लाल रङ्ग जिसे हीमोग्लोबिन (haemoglobin) कहते है, होता है। यह ओषजन का शोषण कर सकता है और तब रक्त परिभ्रमण के समय यह ओषजन शरीर के सब तन्तुओं को दिया जाता है।

श्वेत रक्ताणु—अधिक बड़े तथा कम होते है। वे बिना रङ्ग के एवं आकृति में अनियमित होते हैं। वास्तव में वे अपना

आकार निरन्तर बदलते रहते हैं और रोगो के कीटाणुओं को घेर कर उन्हे खा जाते हैं। वे रोगो से लड़ने के लिये शरीर के
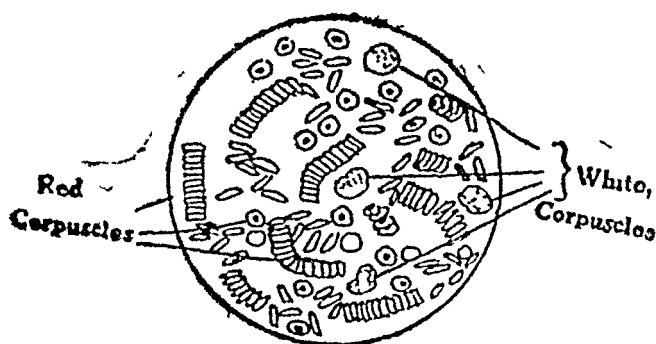
चित्र संख्या २६—रक्त अणु (Blood Corpuscles)

लिये बड़े उपयोगी है। ज्यो ही रोग के कीटाणु शरीर में घुसते हैं उनमें तथा श्वेताणुओ में युद्ध शुरू हो जाता है। ये श्वेताणु साधारण आक्रमणा को सहन कर सकते है। कभी कभी आक्रमण बड़े जोर का होता है और उसका रोकना श्वेताणुओ की शक्ति के बाहर की बात हो जाती है अर्थात् श्वेताणु युद्ध में हार जाते हैं और नष्ट हो जाते हैं। बाकी बचे हुए श्वेताणु लड़ाई जारी रखते हैं।

रक्तवारि (Plasma)—एक हलका पीला सा द्रव होता है जिसमें लाल और श्वेत रक्ताणु तैरते रहते हैं। यह घुली हुई भोजन की चीजों को शरीर के विभिन्न अंगो तक ले जाने का काम करता है।

रक्त का थक्का बॅधना (Clotting of blood)—जब खून निकाला जाता है या वह शरीर के बाहर बहने लगता है तो कुछ देर बाद उसका थक्का बॅध जाता है अर्थात् उसका स्कंधन होजाता है—आधा ठोस बन जाता है। जब खून निकलता है तब फाइब्रिन-जनक (Fibrinogen) रक्तवारि का प्रोटिन जो रक्तवारि

(plasma) में घुला हुआ होता है एक धागे के समान पदार्थ में परिणत हो जाता है। इस पदार्थ को फाइब्रिन (fibrin) कहते हैं। रक्तवारि का शेष भाग या रक्तरस (serum) ही हलके पीले द्रव के रूप में बाहर आता है।

यह खून के बहने को रोकने तथा कटे हुए स्थान के बन्द होने का अप्राकृतिक तरीका है।

दाताओं से लिया हुआ तथा दूसरे के शरीर में डालने के लिए काम में आया हुआ रक्त का थक्का बँधना रोकने के लिए उसमें एक रासायनिक पदार्थ सोडियम साइट्रेट (Sodium Citrate) मिला दिया जाता है।

रक्त का तापक्रम ९८·४° है परन्तु भिन्न २ समयों पर भिन्न है। एक ही समय भिन्न अंगो का तापक्रम भिन्न है। तापक्रम ओषकरण के द्वारा विशेषकर कार्बन तथा उदजन के आक्सिजन से मिलने से होता है। यह कार्य कोषों में होता है। मांस-पेशियों, ग्रंथियों व अन्य अंगो में यह कार्य तेजी से होता है। वहाँ तापक्रम अधिक होता है। वह गर्मी रक्त को दे दी जाती है और शरीर के दूसरे अंग तक पहुँच जाती है।

रक्त के काम

१–यह शोषित भोज्य पदार्थों का एक अस्थायी भंडार घर का काम करता है।

२–यह पोषक वस्तुओ तथा लवणों को शरीर के सारे हिस्सों में पहुँचाता है।

३–यह ओषजन को सारे तन्तुओ तक ले जाता है

४–यह फालतू चीजो को शरीर के विभिन्न भागो से हटा ले जाता है।

५–शरीर के विभिन्न भागो में यह औषदीकरण से उत्पन्न कार्बन द्विओषिद को हटाता है।

६–यह रोग के कीटाणुओं का जबर्दस्त नाशक है। यह शरीर की स्वाभाविक शक्ति तथा सुरक्षा है।

७–यह हमारे शरीर के तापक्रम (Temperature) को जो लगभग ९८.४ फा० है बनाये रखता है। यह सारे शरीर में गर्मी का वितरण करता है।

८–यह शरीर के विभिन्न अंगों को आर्द्र बनाये रखता है।

९–यह प्रणाली विहीन (Ductless) ग्रंथियों द्वारा उत्पन्न हारमोनों [Hormones) को उन स्थानों पर पहुँचाता है, जहाँ उनकी जरूरत पड़ती है।

सारांश

रक्त एक जीवित तन्तु है जो रक्त वारि, लाल व श्वेत अणुओं से मिलकर बना है। रक्त के कार्य—शोषन-पाच्य वस्तुओं को ग्रहण कर आक्सिजन देना, प्रणाली विहीन ग्रंथियों द्वारा उत्पन्न हरमोनों को सब अंगो में पहुँचाना, तथा अस्थाई भंडार-घर का कार्य करना, व्यर्थ की वस्तुओं से शरीर को रहित करना तथा तापक्रम को ठीक बनाये रखना और शरीर में गर्मी व शक्ति पहुँचाना।

जब रक्त बाहर निकलता है तो उसका थक्का बँध जाता है (Clotting)। नाड़ी की धड़कन एक मिनट में ७२ बार होती है। आयु, लिंग तथा कार्य परिमाण पर नाड़ी की गति बढ़ जाती है। दौड़ने व भारी कार्य करने से नाड़ी तीव्र गति से चलने लगती है। बाऐं क्षेपक कोष्ठ की चोटी जब जब क्षेपक कोष्ठ सिकुड़ता है तो वक्षस्थल की दिवार से टक्कर खाती है। इसे मालूम किया जा सकता है। इसे ही हृदय की धड़कन कहते हैं।

प्रश्न

१–रक्त के संगठन का वर्णन कीजिये।

२–खून का बहना प्राकृतिक ढग से कैसे रुक जाता है ?

३–रक्त के विभिन्न काम कौन-कौन से हैं ?

———

अध्याय ८

रक्त परिभ्रमण (The Circulation of blood)

दिल रक्त को वाहिनियों में ढकेलता है। दिल एक खोखला मॉस का बना अवयव है और यह वक्षोदर मध्यस्थ पेशी (diaphragm) के ठीक ऊपर तथा मध्यरेखा से कुछ बाईं तरफ वक्षस्थल में स्थित है। इसका आकार शंकु के समान है। इसका तला (base) ऊपर की तरफ और चोटी नीचे बाईं ओर है। यह अनैच्छिक मॉस पेशियों से बना है और इसलिए यह निरन्तर काम करता रहता है। तले से चोटी तक फैली हुई मॉस की घनी दीवार से यह दो भागों में बॉट दिया गया है। दाहिना और बाया अर्द्ध भाग आपस में नहीं मिलते। दाहिने भाग में अशुद्ध तथा बाये में शुद्ध रक्त रहता है। प्रत्येक अर्धभाग एक दूसरी मॉस की घनी दीवार से ऊर्ध्व तथा निम्न कोष्ठमें बांटा गया है। दोनों ऊर्ध्व कोष्ठों को ग्राहक कोष्ठ (auricle) तथा दोनों निम्न कोष्ठों को क्षेपक कोष्ठ(Ventricle) कहते हैं। दाहिने ग्राहक कोष्ठ और दाहिने क्षेपक कोष्ठ के बीच में द्वार होता है। इसी तरह बायें ग्राहक कोष्ठ तथा बाये क्षेपक कोष्ठ में भी द्वार होता है। ग्राहक कोष्ठ और क्षेपक कोष्ठ के बीच का मार्ग कपाटों (valves) द्वारा रक्षित रहता है। ये कपाट रक्त
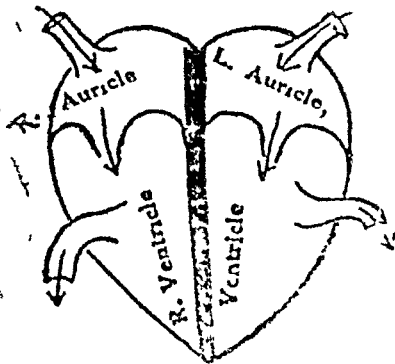
चित्र संख्या २७-क्षेपक कोष

को एक ही तरफ अर्थात् केवल ग्राहक कोष्ठ से उपेक्षक कोष्ठ की ओर जाने देते हैं। कपाट दिल की भीतरी झिल्ली के पट से बनते हैं। दाहिने ग्राहक व क्षेपक कोष्ठ के बीच के मार्ग को आवृत्त करने वाले कपाट में तीन पट तथा बांये ग्राहक व क्षेपक कोष्ठके बीच के मार्ग को ढकनेवाले कपाट में दो पट होते हैं।

बालिग मनुष्य का दिल प्रति मिनट ७२ बार निरन्तर सिकुड़ता व फैलता है। बचपन में यह प्रति मिनट १२० बार सिकुड़ता है पर धीरे धीरे यह गति घट कर प्रति मिनट ७२ बार हो जाती है।
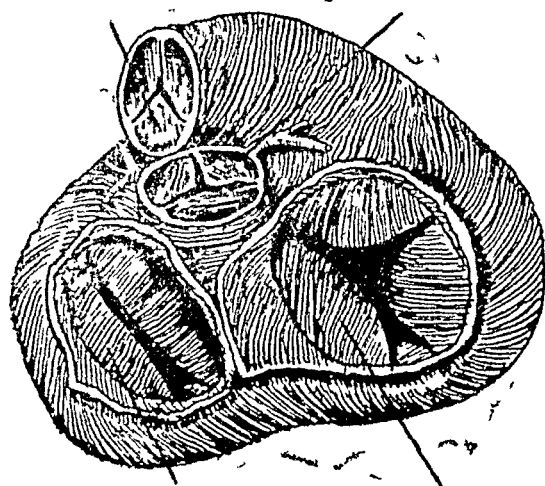
चित्र संख्या २७ (क) दिल के कपाट

दो पट वाला कपाट दाहिने ग्राहक व क्षेपक कोष्ठ के बीच के द्वार का नियन्त्रण करता है।

तीन पट वाला कपाट बाये ग्राहक व क्षेपक कोष्ठ के बीच के द्वार का नियन्त्रण करता है।

रक्त वाहिनियाँ (Blood vessels)—शरीर में रक्त बन्द नलिकाओं में से होकर चक्कर लगाता है। इन नलिकाओं को

रक्तवाहिनियाँ कहते हैं। धमनियाँ (arteries) ये रक्तवाहिनियाँ हैं जो दिल से शरीर के विभिन्न अंगों को खून ले जाती हैं। बड़ी धमनियाँ छोटी धमनियों में बँटती हैं यहाँ तक कि अन्त में उनसे बहुत सूक्ष्म नलिकाएँ जिन्हें केशिकाएँ (Capillaries) कहते हैं बन जाती हैं। धमनियों में थैलियाँ (pouches) होते हैं जिनमें खून यदि उस पर विपरीत दिशा में दबाव पड़े तो भर जाता है। केशिकाएँ (Capillaries) बहुत ही छोटी वाहिनियाँ हैं और वे साधारणतः जाल सा बना देती हैं। उनकी दीवारे बहुत पतली होती हैं। अतः उनमें गैसो का व्यापन (diffusion) बहुत जल्दी हो जाता है। खून में गैसो की अदला बदली केशिकाओं में होती है।

शिराएँ (Veins) वे रक्त वाहिनियाँ हैं जो खून को शरीर के विभिन्न अंगों से लेकर दिल को वापस पहुँचाती हैं। वे केशिकाओं के पास बहुत ही सूक्ष्म नलिकाओं के रूप में शुरू होती हैं और मिलकर बड़ी बड़ी शिराएँ बनाती हैं जो दिल के ग्राहक कोष्ठों में जाकर खुलती हैं।

शिराओं के भीतरी सतह में थैलियाँ या मुड़े हुए भाग हैं। जब खून का बहाव उलटी तरफ होता है तो वे रक्त से भर जाते हैं और मार्ग को बन्द कर देते हैं। अतः शिराएँ साधारणतः अशुद्ध रक्त दिल को ले जाती है। और धमनियाँ शुद्ध रक्त को दिल से ले जाती हैं। अपवाद दो फुफ्फुसीय धमनियाँ (pulmonary arteries) दाहिने क्षेपक कोष्ठ (Ventricle) से अशुद्ध रक्त को फेफड़ों में ले जाती हैं। दो फुफ्फुसीय शिराएँ साफ खून को
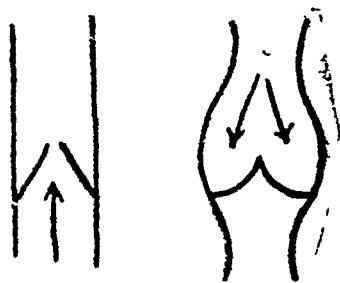
चित्र संख्या २८—रक्तवाहिनियों में कपाट दिखाये गये हैं।

फेफड़ों से बायें ग्राहक कोष्ठ को ले जाती हैं।

रक्त-संस्थान (Blood circulatory system) में दिल, धमनियाँ, केशिकाएँ तथा शिराएँ होती हैं।

दिल का काम—दिल की अनैच्छिक मॉस पेशियाँ अपने आप बारी बारी से सिकुड़ती और फैलती हैं। दोनों ग्राहक कोष्ठ एक साथ सिकुड़ते हैं और उनमे स्थित रक्त को क्षेपक कोष्ठों में भेज देते हैं। उसके बाद क्षेपक कोष्ठ सिकुड़ते हैं। ग्राहक कोष्ठ तथा क्षेपक कोष्ठ बारी बारी से बराबर सिकुड़ते रहते हैं।

दाहिने क्षेपक कोष्ठ (Ventricle) से खून फुफ्फुसीय धमनी (Pulmonary artery) मे ढकेल दिया जाता है। यह धमनी, रक्त को फेफड़ो में लेजाती है। बायें क्षेपक कोष्ठ से खून महा धमनी (Aorta) मे जाता है। यह जो सबसे बड़ी धमनी है, दिल से शुरू होती है और सारे शरीर मे खून को वितरण के लिए लेजाती है।
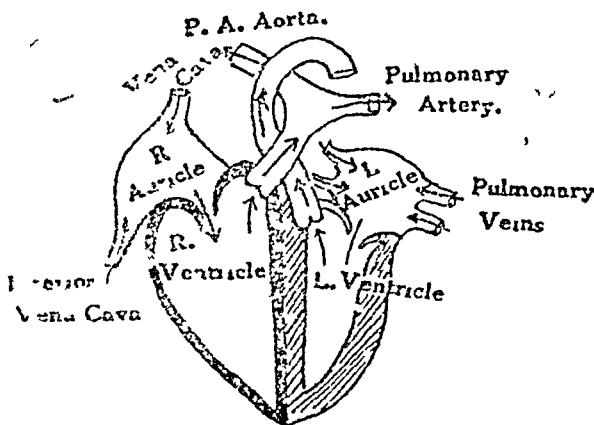
चित्र संख्या २९—दिल के कोष्ठ तथा सम्बन्धित रक्त वाहिनियाँ।

अशुद्ध रक्त दाहिने ग्राहक कोष्ठ में प्रविष्ट होता है और वहाँ से क्षेपक कोष्ठ को पहुंचाया जाता है। क्षेपक कोष्ठ से शुद्ध

होने के लिए फुफ्फुसीय धमनियों (Pulmonary arteries) द्वारा फेफड़ों में भेज दिया जाता है।

फुफ्फुसीय शिराओं (Pulmonary veins) द्वारा सा खून बायें ग्राहक कोष्ठ में ले जाया जाता है। यह क्षेपक कोष्ठ दकेला जाता है और तब शरीर में वितरण के लिए महाधमनी (Aorta) में भेज दिया जाता है।

अशुद्ध रक्त फिर दाहिने ग्राहक कोष्ठ (Right Auricle को लेजाया जाता है और इस तरह यह चक्कर जिन्दगीभर चलत रहता है।

नाड़ी (Pulse)-बायाँ क्षेपक कोष्ठ (Left Ventricle) खू को महाधमनी में ढकेलता है। ताजे खून की लहर सब धमनिय में पहुँचाई जाती है और जहाँ पर धमनी सतह के पास या किसी हड्डी पर होती है जैसे कलाई के पास बहिः प्रकोष्ठाथि (Radius) पर वहाँ इसे मालूम किया जा सकता है।

(इस धमनी को कलाई के ऊपरी भाग पर छूकर मालूम करना सीखो) यह नाड़ी कहलाती है।

रक्त का बहाव (Course of Circulation)—खून दिल (बाये क्षेपक कोष्ठ) से शरीर के विभिन्न भागों को जाता है और उसी स्थान पर वापस पहुँच जाता है। यह खून का बहाव कहलाता है। हम संक्षेप में रक्त-परिभ्रमण के पथ का वर्णन करते हैं। ओषजन से मिला हुआ तथा लाल (इसलिए शुद्ध) रक्त बाये क्षेपक कोष्ठ से महाधमनी में ढकेल दिया जाता है। महाधमनी ज्योंही दिल से अलग होती है नीचे की ओर मुड़ जाती है और उसकी शाखाएँ ऊपर की तरफ जाती हैं। यह बड़ी धमनी शाखाओं में विभाजित होती रहती है। ये शाखाएँ शरीर के सब भागो में जाती हैं। हरेक धमनी अन्त में केशिकाओं में बँट जाती है। केशिकाओं की दीवारो में से होकर ओषजन तथा

PLATE No. 3
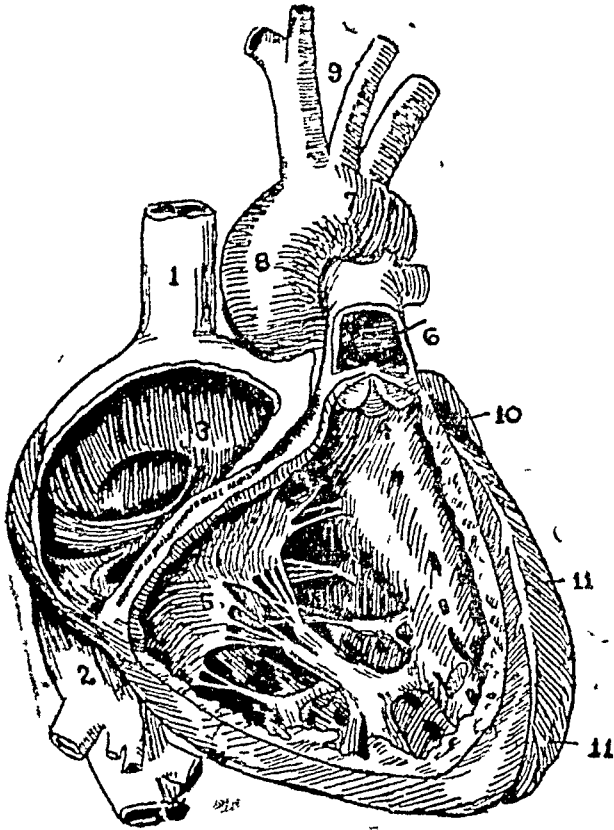
हृदय का भीतरी दृश्य (दाहिनी ओर)

१. ऊपरी वृहत् शिरा ।

२. नीचे की वृहत् शिरा ।

३. दाहिनी शष्कुली ।

४. ढपनियाँ (फुफ्फसीय धमनी) ।

५. तीन नोक वाली ढपनी

६. फुफ्फसीय धमनी ।

७.८.९. वृहत् धमनी शाखाओं सहित ।

१०. बाईं शष्कुली ।

११. बायाँ त्वोरद-कोष्ठ ।

पोषक पदार्थ आस पास के तन्तुओ को दे दिए जाते हैं। रक्त
तरह कंगाल हो जाता है अर्थात् उसमें इन चीजों का अभाव
जाता है और उसका लाल रंग नष्ट हो जाता है। यह का
द्विओषिद (Carbon dioxide) का शोषण कर लेता है अ
इसका रङ्ग नीलासा होजाता है। यह नष्ट हुई चीजो कोभी सो
लेता है और आकृति तथा गुण दोनो में पूर्णतः बदल जाता है

केशिकाएँ मिलकर छोटी शिराओ का निर्माण करती है
ये शिराएँ ज्यादा बड़ी होती जाती हैं। अन्त में दो बड़ी शिरा
में अशुद्ध रक्त एकत्र हो जाता है। इनमें से एक दिल के ऊपर
स्थान से आती है और दूसरी दिल के नीचे से और ये क्रमश
ऊर्ध्व महाशिरा (Superior vena cava) तथा निम्न महाशि
(Inferior vena cava) कहलाती है। ये दोनों मिल जाती
तथा खून को दाएँ ग्राहक कोष्ठ (Auricle) में डाल देती हैं
यह दाएँ ग्राहक कोष्ठ से दाएँ क्षेपक कोष्ठ में जाता है और त
फुफ्फुसीय धमनियों द्वारा फेफड़ो में चला जाता है।

यहाँ पर खून से कार्बन द्विओषिद (carbon dioxide
अलग हो जाता है और ओषजन (oxygen) उसमें मि
जाता है।

शुद्ध रक्त फुफ्फुसीय शिराओ द्वारा बाएँ ग्राहक कोष्ठ में ले
जाया जाता है और तब वह बाएँ क्षेपक कोष्ठ को जाता है जह
से वह महाधमनी में पहुँच कर फिर अपनी यात्रा आरम्भ क
देता है।

खून में भोज्य पदार्थ अन्नमार्ग (alimentary canal) त
यकृत (liver) से जब वह दिल की तरफ जाता है मिलते
और ओषजन फेफड़ों में प्राप्त होता है। खून इन सब वस्तु
को शरीर के सारे भागों को बाँटता है।

संक्षेप–महाधमनी–धमनियाँ–केशिकाएँ,–महाशिराएँ–दायाँ
ग्राहक कोष्ठ,–दायाँ क्षेपक कोष्ठ–फुफ्फुसीय धमनियाँ,–फेफड़े

फुफ्फुसीय शिराएँ,—बायाँ ग्राहक कोष्ठ—बायाँ क्षेपक कोष्ठ और महाधमनी।

रक्त के बहाव के प्रमाण—विलियम हार्वे ने सर्व प्रथम सन् १६२८ में खून के बहाव को बतलाया। खून के बहाव को सिद्ध करने के लिए निम्न लिखित तथ्य रक्खे जा सकते हैं:—

१—मेंढक के पैर के जाले की केशिकाओं में सूक्ष्म दर्शक यंत्र की सहायता से खून वास्तव में बहता हुआ देखा जा सकता है।

२—कपाट (valves) इस तरह लगे हुये हैं कि खून एक ही तरफ जा सकता है।

३—आध घण्टे में दिल शरीर के तमाम वजन से अधिक परिमाण का खून पप करता है।

४—नाड़ी की गति दिल की धड़कन के समयान्तर (time-interval) से मिलती है।

५—यदि किसी धमनी को काट दिया जाय तो दिल और कटे हुये स्थान के बीच में (उससे दूर नहीं क्यो कि खून दिल से आ रहा है) धमनी को बाँध देने से खून का बहना रोका जा सकता है।

६—यदि एक शिरा कट जाती है तो उसे दिल से दूर (तथा कटे हुए स्थान व दिल के बीच में नहीं) बाँध देने से खून का बहना बन्द हो जाता है क्यों कि खून शरीर के दूर के भागो से दिल की ओर आरहा है।

७—शरीर के किसी स्थान पर सुई द्वारा प्रविष्ट किये गये विष जल्द ही रक्त के बहाव से शरीर के सब भागो में पहुँच जाते हैं।

८—शराब तथा दूसरी मदिरा या दवाइयो को जो पेट में ली जाती हैं, शरीर के किसी भी भाग में से लिए गये खून में आसानी से पाई जा सकती है।

सारांश

विलियम हार्वे ने सन् १६२८ में प्रथम बार रक्त की गति का पता लगाया। इसे मेंढक के पैर के जाल में बहता देखा जा सकता है। कपाट की मौजूदगी और उसका इस प्रकार लगे होना कि रक्त एक ओर ही जा सके इन से भी यही प्रतीत होता है। धमनियों तथा शिराओं के कटने, दबाने, बाँधने तथा उनमें विष प्रविष्ट कर के भी यह दिखाया जा सकता है। नाड़ी की गति हृदय की धड़कन के समयान्तर में मिलती है। हृदय रक्त के असीम परिमाण को पम्प करता है। वह आयु भर ७२ बार प्रति मिनट ऐसा करता है।

प्रश्न

१—दिल की बनावट का वर्णन कीजिये। दिल से सम्बन्धित रक्त-वाहिनियों के नाम बतलाइये।

२—इन पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये—धमनी, केशिका, शिरा, नाड़ी व दिल की धड़कन।

३—रक्त के एक बूँद की दिल के एक हिस्से से उसी स्थान तक वापस लौटने की यात्रा का पथ बतलाइये।

४—रक्त का बहाव सिद्ध करने के लिए क्या प्रमाण दिये जा सकते हैं?

अध्याय ९

श्वासोच्छ्वास संस्थान (Respiratory System)

हम यह देख चुके हैं कि शिराओं का अशुद्ध रक्त फेफड़ों में शुद्ध किया जाता है। इसमें ओषजन मिलता है और इस में से

कार्बन द्विओषद तथा भाप निकल जाती है। कार्बन द्विओषद कर्बोदेत (Carbohydrates) तथा वसाओं (fats) (जो अन्न-मार्ग से शोषित होते हैं) के ओषदीकरण से बनता है। इस ओष-दीकरण या जलने के अबाध कार्य से गर्मी तथा शक्ति पैदा होती है और कार्बन द्विओषिद फालतू चीज के रूप में बनता है।

ओषदीकरण (Oxidation) के लिए ओषजन जरूरी है। प्रत्येक क्षण रक्त को ताजा ओषजन मिलता रहना चाहिये।

श्वासोच्छ्वास (Respiration) वह क्रिया है जिस से खून में ताजा ओपजन मिलता है तथा कार्बन द्विओषिद अलग कर दिया जाता है। यह अदलाबदली फेफड़ों में होती है।

उच्छ्वासित तथा प्रश्वसित वायु (Inspired and Expired Air)—उच्छ्वासित हवा (जो साँस के साथ अन्दर जाती है) तथा प्रश्वसित हवा (जो सांस के साथ बाहर निकाली जाती है) दोनों के संगठन में अन्तर होता है। उच्छ्वा-सित हवा में अधिक ओषजन तथा कम कार्बन द्विओषिद, भाप तथा अशुद्धियाँ होती हैं। इस हवा का तापक्रम भी प्रश्वसित हवा के तापक्रम से कम होता है। दोनो का संगठन नीचे की तालिका में आयतन के प्रतिशत के रूप में दिखलाया गया है:—

	उच्छ्वासित हवा	प्रश्वसित हवा
ओसजन	२०°९६	१६°४०
नत्रजन (nitrogen)	७९°००	७९°००
कार्बन द्विओषिद	०°०४	४°६०
अशुद्धियाँ	कुछ नहीं	बहुत कम
भाप	अनिश्चित	काफी भाप होती है

(यह तालिका उच्छ्वासित वायु में होने वाले परिवर्तनों को बतलाती है)

श्वासोच्छ्वास संस्थान—इस में मुँह तथा नासामार्ग (nasal passage), स्वरयंत्र (Larynx), टेंटुआ (Trachea) और फेफड़े होते हैं।

हवा के मार्ग—फेफड़ों में हवा या तो नासामार्ग से होकर या मुँह से जाती है परन्तु ठीक तरीका नाक से साँस लेना है। नासामार्ग मुड़ा हुआ होता है और उस पर श्लैष्मिक कला (mucous membrane) का आवरण चढ़ा रहता है। इस मार्ग में से जाने वाली हवा का तापक्रम शरीर जैसा हो जाता है और वह आर्द्र हो जाती है तथा धूल, ठोस कण एवं कीटाणु उससे अलग हो जाते हैं। गाढ़ा तथा चिपकने वाला पदार्थ जो नाक में मौजूद रहता है नाक की झिल्लियों से बनता है। यह पदार्थ कीटाणुओं को पकड़ लेता है और हवा को साफ कर देता है। इसलिए यह जरूरी है कि नाक से साँस ली जाय और मुँह से साँस न ली जाय।
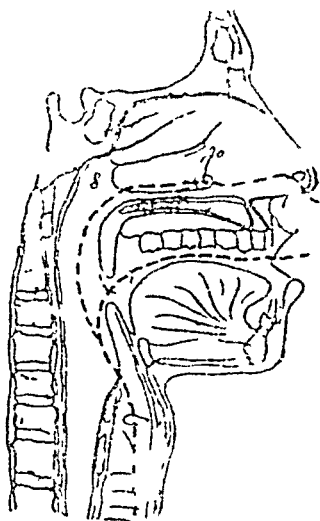
चित्र संख्या ३०—हवा के मार्ग

बहुत से बच्चों तथा बालिग आदमियों को मुंह से सांस लेने की जबरन आदत पड़ जाती है। उन्हे चाहिए कि वे अस्पताल

जाकर ठीक तरह से चिकित्सा करायें। यह गले में ग्रंथियों (glands) के बढ़ जाने के कारण होती है। यदि हम नाक से साँस न लेंगे तो बहुत से कीटाणु फेफड़ों में चले जायँगे और सर्दी लग जायगी। यदि चौकसी रखने तथा व्यक्तिगत प्रयत्न करने पर भी यह आदत न छूट सके तो चिकित्सक से सलाह लेनी चाहिये।
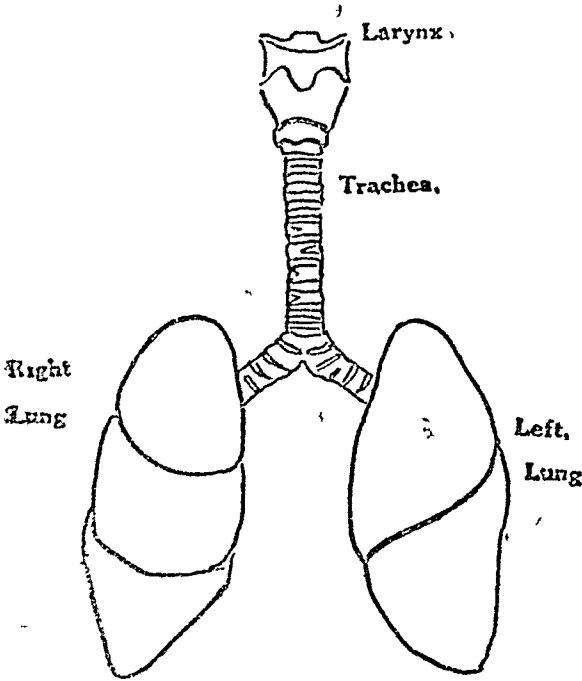
चित्र संख्या २१—स्वर-यंत्र (Larynx), टेंटुआ (Trachea) एवं फेफड़े

टेंटुआ या वायुनली बाहर से फेफड़ों तक जाती है। यह एक पाँच इंच लंबी नली है और अन्न प्रणाली (oesophagus) के सामने स्थित है। इसके ऊपर एक ढकना जिसे काकमुख

चित्र संख्या २२ १ बोलते समय स्वर रज्जु (फैले हुए)

स्वर रज्जु (काम से विरत)

(Epiglottis) कहते हैं लगा रहता है जो प्रवेश की रखवाली करता है। यह खाने की चीजों को वायु नली में जाने से रोकता है। सामने की तरफ वायुनली C के आकार के कार्टिलेज (cartilage) के घने १६ या २० छल्लों द्वारा सुरक्षित रहती है जिससे इसके दबाने से गला घुटने की नौबत न आये।
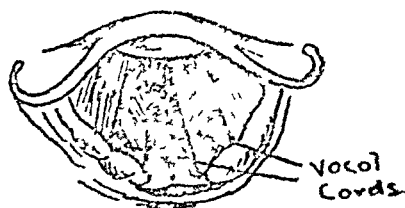
कार्टिलेज के दो ऊपर वाले छल्ले दूसरे छल्लों की अपेक्षा ज्यादा लम्बे हैं। इनसे स्वर-यंत्र (Larynx) बनता है। स्वर-यंत्र के कार्टिलेज तंतुओं से परस्पर जकड़े रहते हैं तथा माँस पेशियों द्वारा हिलते हैं। इनमें दो स्वर रज्जु (Vocal cords) होते हैं जिनके फैलाये जाने तथा पास लाये जाने पर आवाज पैदा होती है। स्वरयन्त्र साधारण श्वास-प्रक्रिया में हवा के बेरोक टोक आने जाने के लिए मार्ग देता है। पहली कार्टिलेज पुरुषों में विशेषतः उभरी हुई होती है। यह एडम्स एपिल (Adam's apple) कहलाती है तथा बाहर से छूकर मालूम की जाती है।

काग मुख (Epiglottis)—जो जीभ की जड़ के पीछे एक छोटा सा पट है, भोजन के कण या पेय को वायुमार्ग में जाने से रोकता है तथा खाते या पीते समय यह स्वरयन्त्र के ऊपर आवरण का काम करता है। साँस लेते समय यह सीधा रहता है।

वायुनली गले में प्रविष्ट होने के बाद से वायुप्रणालियों (bronchi) में विभाजित हो जाती है। एक एक वायुप्रणाली प्रत्येक फेफड़े को जाती है। टेटुए तथा वायु प्रणाली पर श्लेष्मिक कला का अस्तर तथा सिलिया (cilia) रोओं की एक परत चढ़ी रहती है। साँस लेने वाली हवा में स्थित किसी भी बाह्य पदार्थ को सिलिया (cilia) ऊपर भेज देता है। उच्छ्वासित हवा को श्लेष्मा भी साफ करता है।

वायु प्रणालियाँ और छोटी-छोटी सूक्ष्म वायु प्रणालियों (branchioles) में विभाजित हो जाती हैं। ये सूक्ष्म वायु-प्रणालियाँ फेफड़ों के प्रत्येक भाग में पहुँचती हैं।

फेफड़े (Lungs)—छाती के प्रत्येक तरफ स्थित दो फेफड़े श्वासोच्छ्वास के प्रधान अवयव हैं। वे वक्षस्थल के सारे गर्त को घेर लेते हैं। केवल वह जगह ही छूटती है जो दिल और उससे सम्बन्धित रक्त वाहिनियो से घिरी हुई है। फेफड़े भूरे रंग के स्पंज की तरह के अवयव हैं। वे लचकीले होते हैं। दाहिना फेफड़ा तीन भागो या पिंडों में तथा बायाँ दो पिण्डों में बँटा हुआ है। प्रत्येक पिंड और छोटे क्षुद्र पिंडो (lobules) में विभाजित हो जाता है। प्रत्येक पिण्ड में वायु प्रणालियों की एक शाखा पहुँचती है जिनका बहुत छोटी नलिकाओं में विभाजन तथा प्रति विभाजन होता है। अन्त में हरेक नलिका हवा की थैलियों का एक गुच्छा बनाती है। इस तरह फेफड़ा अंगूरों के गुच्छो की तरह सजे हुये तथा वायु प्रणालियों से सम्बन्धित छोटे-छोटे हवा के लाखों कोषों का समूह है। वायु के कोषों की दीवारे बहुत पतली होती हैं। इन वायु कोषों के चारों ओर फुफ्फुसीय धमनियो (pulmonary arteries) की महीन शाखायें—रक्त केशिकायें होती हैं। वहाँ पर केशिकाओं तथा

वायु की थैलियों की दीवारों में गैसों की अदला बदली होती है। रक्त से कार्बन द्विओषिद अलग हो जाता है तथा ओषजन उसमें मिल जाता है।
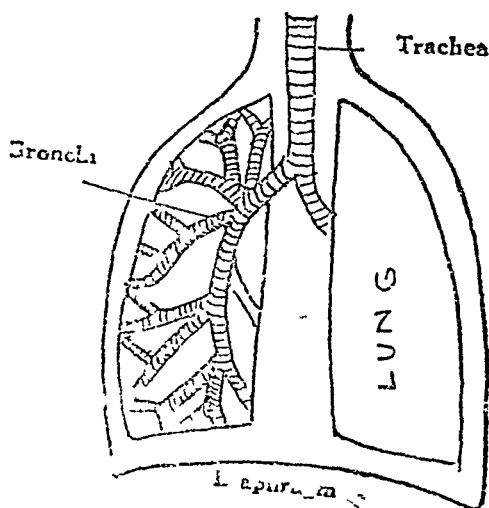
चित्र संख्या १२—फेफड़े, वायुप्रणालियाँ तथा वक्षस्थोदर मध्यस्थ पेशी

फेफड़ों की रक्षा एक झिल्ली द्वारा जिसे फुफ्फुसीयावरण (pleura) कहते हैं, होती है। फेफड़े सामने की तरफ पसलियों, पर्शुकांतरिका माँस पेशियों (Intercostal muscles) तथा वक्षोस्थि (Sternum) से पीछे की तरफ पसलियों तथा रीढ़ की हड्डियों से नीचे की तरफ वक्षस्थोदर मध्यस्थ पेशी (diaphragm) से बने हुए एक वायुरोधक (air tight) गर्त में स्थित हैं
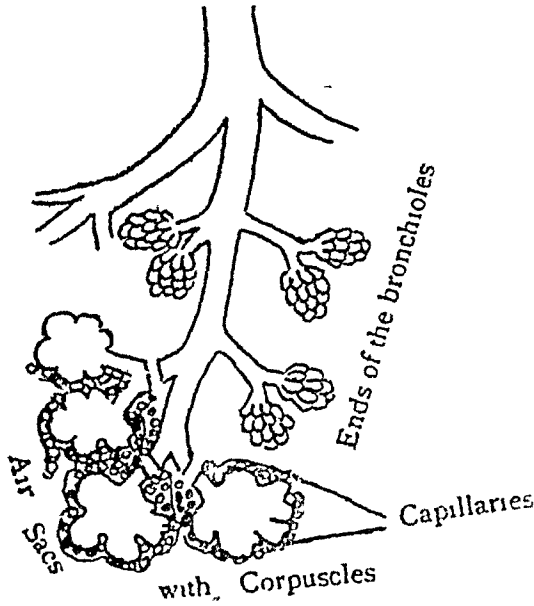
चित्र संख्या ३४—वायुप्रणालियाँ तथा हवा के थैले

(बाईं तरफ का परिच्छेद (section) बहुत ज्यादा बढ़ाकर दिखाया गया है।)

श्वासोच्छ्वास क्रिया—श्वासोच्छ्वास या साँस लेने व निकालने की क्रिया में दो तरह की गति होती हैं। उच्छ्वास फेफड़ों में हवा खींचने की तथा प्रश्वास फेफड़ों से हवा बाहर निकाल देने की क्रिया है। छाती के गर्त के बारी बारी से फैलने तथा सिकुड़ने से ये क्रियाएँ होती हैं। ये दो गतियाँ निरंतर तथा ठीक तरह से लगभग १७ बार प्रति मिनट होती रहती हैं।

ये गतियाँ दो तरह के कारणों से होती हैं:—

(१) वक्षस्थोदर मध्यस्थ श्रेणी (diaphragm) का सिकुड़ना तथा फैलना।

(२) पसलियों को जोड़ने वाले पर्शुकान्तर मॉस पेशियों (Intercostal muscles) की क्रिया।

१—जब वक्षस्थोदर मध्यस्थपेशी सिकुड़ती है तो वह नीचे दबाव डालती है जिससे वक्षःस्थल का गर्त फैल कर बड़ा हो जाता है और उदर बाहर फूल जाता है। तब यह शिथिल पड़ जाती है और ऊपर उठती है जिससे वक्षःस्थल का गर्त कम हो जाता है।

२—जब पर्शुकान्तर मॉस पेशियाँ (पसलियों के बीच की मॉस पेशियाँ) सिकुड़ती है तो वे पसलियों तथा छाती की हड्डी को ऊपर खीचती हैं। इस तरह से वक्षःस्थल का गर्त बड़ा हो जाता है। इस गति के कारण यह गर्त पीछे से आगे तथा अगल बगल बढ जाता है। यदि इस गति के साथ वक्षस्योदर मध्यस्थपेशी की नीचे की तरफ की गति होती है तो यह गर्त ऊपर से नीचे की तरफ भी बड़ा हो जाता है। दूसरी पर्शुकान्तर मॉस पेशियां पसलियों तथा वक्षोस्थि को नीचे की तरफ खींचती हैं जिससे गर्त घट जाता है।
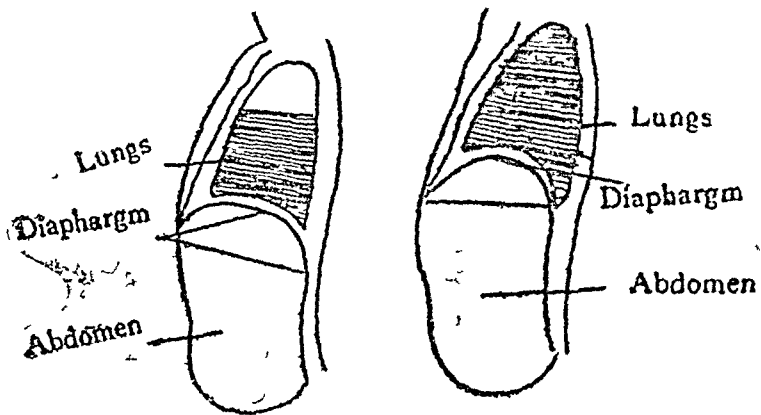
चित्र संख्या ३५ (क)—वक्षस्थोदर मध्यस्थपेशी (दबी हुई।

(ख) वक्षस्थोदर मध्यस्थ पेशी (उठी हुई)

फेफड़े एक वायुरोधक गर्त्त में रक्खे हुये हैं। यदि यह गर्त इन दोनों तरीकों से या इनमें से एक तरीके से बड़ा हो जाता है तो फेफड़े फैलते हैं और हवा अन्दर खींच ली जाती है। यदि गर्त घट जाता है तो हवा को फेफड़े से बाहर निकलना पड़ता है। ये श्वासोच्छ्वास की दो गतियाँ हैं। कसरत करने या गहरी साँस लेने से फेफड़ों का समावेशन (capacity) बढ़ाया जा सकता है। खुली हवा में प्रति दिन सुबह या शाम को कुछ मिनट के लिये गहरी साँस लेना सीखिये तथा परिणाम देखिये। श्वासोच्छ्वास की क्रिया (साँस लेने) से शिराओं का गंदा
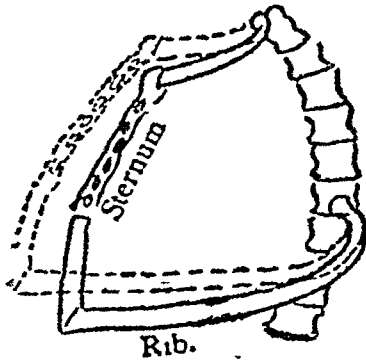
चित्र संख्या ३५ (ग) छाती का उभरना तथा नीचे बैठना (घ) पसलियाँ तथा छाती की हड्डी उठी हुई तथा स्वाभाविक अवस्था में।

खून साफ हो जाता है। यह क्रिया फेफड़ों की सूक्ष्म हवा कोषों में होती है। कार्बन द्विओषिद तथा भाप निकल जाती है और ओषजन मिल जाता है। यह बाहरी श्वासोच्छ्वास कहलाता है।

शरीर के भीतर, शरीर के प्रत्येक तन्तु में काम करने तथा गर्मी व शक्ति पैदा करने के लिये ओषजन की जरूरत पड़ती है। यहाँ पर ऊपर बतलाई गई बात से उलटा होता है। रक्त अपना ओषजन दे
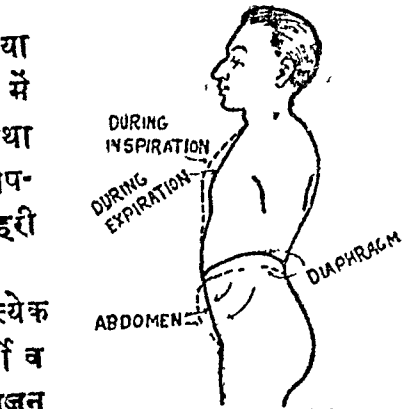
चित्र संख्या ३५ (घ)

देता है और कार्बन द्विओषिद तथा पानी जो जलने से बनते हैं ले लेता है। यह अंदरूनी श्वासोच्छ्वास—तन्तुश्वासोच्छ्वास कहलाता है।

ये दोनों क्रियाएं अत्यावश्यक हैं तथा मिनट के प्रत्येक अंश में होती रहनी चाहिये। जीवन-क्रियायें कुछ दूर तक बिना खाना खाये या पानी पिये हो सकती हैं पर बिना साँस लिये कुछ क्षणों से अधिक नहीं हो सकती।

श्वास, उच्छ्वास नियंत्रण—साँस लेने का केन्द्र सुषुम्ना शीर्षक है (११ अध्याय देखिये)। यह श्वास लेने व निकालने की क्रिया तथा छाती के गर्त के फैलने तथा सिकुड़ने की क्रिया पर नियंत्रण रखता है। आक्सिजन की कमी या रक्त में CO_2 या अम्लों की अधिकता से श्वास जल्दी जल्दी आता है।

कृत्रिम श्वासोच्छ्वास (Artificial respiration)—कृत्रिम श्वासोच्छ्वास कभी कभी उन लोगों के लिये जरूरी हो जाता है जो या तो पानी में डूब गये हैं या जिनके शरीर में बंद कमरों में जलती हुई आग से पैदा हुए कार्बन एकोषिद (carbon monoxide) साँस के साथ पहुँच गई हो। इन लोगों का केवल श्वासावरोध हो जाता है। अतः कृत्रिम उपायों से उनके फेफड़ों में हवा पहुँचाकर तथा निकाल कर श्वासोच्छ्वास की क्रिया की जानी चाहिये।

शेफर की कृत्रिम श्वासोच्छ्वास—रोगी को लिटा दिया जाता है। उसकी पीठ ऊपर रहती है तथा सर बगल से फिरा हुआ होता है जिससे मुँह स्वतंत्र रहे। कृत्रिम श्वासक्रिया करने वाला तब रोगी के ऊपर घुटने टेक कर बैठ जाता है और अपनी हथेलियों को पीठ पर बीच में रखता है। वह आगे झुकता है और अपनी कुहनियों को सीधा पीठ पर नीचे रख कर पक्का दबाव डालता है इससे छाती दब जाती है और फेफड़ों द्वारा हवा बाहर

निकल आती है। तब बिना हाथ हटाये दबाव ढीला कर दिया जाता है। इससे साँस ली जाती है। छाती का गह्वर (Cavity) बड़ा हो जाता है और वायु अन्दर खींच ली जाती है। यह क्रिया प्रति मिनट १६-२० बार तब तक की जाती है जब तक स्वाभाविक श्वास क्रिया होना शुरू न हो जाय। कृत्रिम उपाय से कभी कभी स्वाभाविक श्वासोच्छ्वास घंटे दो घंटे बाद शुरू होती है।

कृत्रिम श्वासोच्छ्वास के कई दूसरे तरीके भी हैं पर यह विधि काफ़ी आसान तथा सन्तोषप्रद है। डूबने तथा गला घुटने से कृत्रिम उपाय द्वारा बहुत सी जानें बचाई जा चुकी हैं।

सारांश

श्वासोच्छ्वास संस्थान में वायुमार्ग तथा फेफड़े है। दाहिना फेफड़ा तीन पिण्डों तथा बाँया दो पिण्डो में विभाजित है। प्रत्येक पिण्ड दो क्षुद्र पिण्डों, वायु की थैलियो तथा वायु कोषो में क्रमशः विभाजित हैं। वायु कोषो के चारो ओर महीन केशिकाएँ होती हैं। यहाँ पर रक्त से CO_2 से पृथक् होकर आक्सिजन मिल जाती है।

जीवन एक टिमटिमाता हुआ ओषदीकरण व्यवहार है। कोषो में भोज्य पदार्थ आक्सीजन से मिल कर शक्ति व गर्मी उत्पन्न करते हैं। रक्त तन्तुओं व कोषों को आक्सिजन देता है व CO_2 ले लेता है। बाहरी श्वासोच्छ्वास फेफड़ो में होता है। इस क्रिया में रक्त से CO_2 तथा वाष्प निकल जाती है तथा रक्त को आक्सिजन मिल जाती है। भीतरी श्वासोच्छ्वास कोषों में होता है। इस क्रिया में आक्सिजन कोषो को दे दी जाती है व रक्त उनसे CO_2 ले लेता है। कृत्रिम उपाय से कभी कभी कृत्रिम श्वासोच्छ्वास कार्य में लाया जाता है जब कि डूबने व गैसों द्वारा साँस रुक गई हो। शैफर श्वासोच्छ्वास की विधि से आसानी से साँस शुरू हो जाती है।

प्रश्न

१-श्वासोच्छ्वास क्या है? अन्दरूनी तथा बाहरी श्वासोच्छ्वास में क्या अन्तर है?

२-उच्छ्वसित तथा प्रश्वासित वायु में क्या अन्तर है?

३-फेफड़ों तथा उससे सम्बन्धित प्रणालियों की बनावट तथा स्थिति का वर्णन कीजिए।

४-वक्षस्थल के गह्वर (Thoracic cavity) की गतियों को समझाइये।

५-शेफ़र की कृत्रिम श्वासोच्छ्वास विधि का वर्णन कीजिए।

६-इन पर नोट लिखो :—

(क) तन्तु श्वासोच्छ्वास (ख) शरीर में कार्बन द्विओषिद की उत्पत्ति (ग) साँस लेने में वक्षस्थोदर मध्यस्थ पेशी का काम (घ) उदर से साँस लेना (ङ) श्वासोच्छ्वास का कंट्रोल।

अध्याय १०

मलमूत्र-संस्थान (Excretory system)

शरीर का मल—हम यह देख चुके हैं कि भोजन का कुछ अंश नहीं पचता। इसलिए अपाच्य भोजनांश जिनमें तरकारियों के तन्तु, फलों के छिलके व बीज इत्यादि हैं शरीर के लिए कुछ भी उपयोगी नहीं है। ये मल के रूप में इकट्ठे होते हैं और उनको शरीर से जहाँ तक संभव हो तुरन्त निकाल बाहर करना चाहिये।

भोजन के पचे हुए भाग की उन कोषों को जो या त नष्ट हो गए है या छीज गए हैं, मरम्मत के लिए जरूरत पड़त है। इन कोषों को शरीर से दूर कर देना चाहिए। पचे हुए भोजन तथा शरीर के दूसरे भागों का निरन्तर ओषदीकरण होता रहता है जिससे गर्मी पैदा होती है और विभिन्न प्रकार के काम होते हैं।

इनसे उत्पन्न फालतू पदार्थ मुख्यतः पानी, कार्बन द्विओषिद, यूरिया (Urea) तथा यूरिक अम्ल (Uric acid) शरीर के लिए अनावश्यक तथा विषैले हैं। इसलिये शरीर को स्वस्थ अवस्था में रखने के लिये इन्हें बराबर बाहर निकालते रहना ज़रूरी है। यह अनावश्यक चीजें हैं उनको बाहर निकालने वाले अवयवों को मलमूत्र या निसर्जक संस्थान कहते हैं।

मलोत्सर्ग के मुख्य अवयव फेफड़े, चमड़ी, गुर्दे (Kidneys) तथा बृहदन्त्र (large intestine) हैं। हमने यह देख लिया
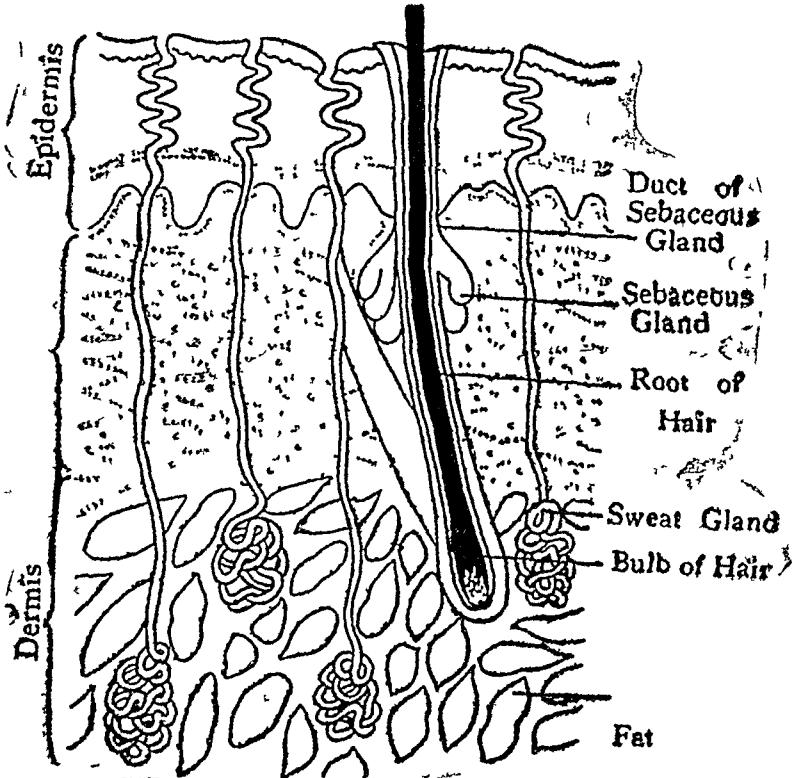
चित्र संख्या २६—चमड़ी (Skin)

है कि बृहदन्त्र अपाच्य पदार्थों को बाहर निकालने का काम करता

है और फेफड़े भाप तथा कार्बन द्विओपिद् को बाहर निकालते हैं। चमड़ी से एक दिन में पसीने के रूप में लगभग २० आउंस पानी, एक आउंस कार्बन द्विओपिद् तथा लगभग एक आउंस लवण (Salts) बाहर निकलते हैं। गुर्दे नष्ट हुए या वर्ते हुये नत्रजनीय तन्तुओ (nitrogenous tissues) से बने फालतू पदार्थों को अलग करते हैं। स्वाभाविक तौर पर एक दिन में लगभग २½ पाइंट मूत्र इक्ट्ठा होता है। इसमें लगभग एक आउंस यूरिया तथा थोड़ा सा यूरिक अम्ल होता है।

चमड़ी दो तहों से बनी है—ऊपरी तह या उपचर्म (Epidermis) और गहरी तह अर्थात् चर्म (dermis)।

उपचर्म—कठोर होती है और यह सतह कोषों (Surface cells) की बहुत सारी परतों से बनती है। यह सच्ची चमड़ी अर्थात् नीचे वाली परत की रक्षा करती है। सतह पर के कोषों के बरते जाने या रगड़े जाने पर उनका स्थान अधिक गहरे कोष लेते है।

इसकी मोटाई जगह जगह पर अल। अलग होती है। पैर के तलुओ पर यह १/२०″ मोटी तथा चहरे पर १/२००″ मोटी होती है। यह चमड़ो का वह भाग है जो छाला पड़ने पर उभरता है और अर्ध पारदर्शक है। उपचर्म निम्नतम भाग में जो मेल पीघी की परत (malphigian layer) कहलाती है एक वर्णक (pigment) होता है जो विभिन्न जातियो में चमड़ी को विशेष रंग यथा काला, सफेद और पीला रंग प्रदान करता है।

उपचर्म में रक्त वाहिनियाँ या नाडियाँ (nerves) नहीं होती। सूक्ष्म दर्शक यंत्र से देखने पर उपचर्म की सतह सूक्ष्म छिद्रो से भरी हुई मालूम होती है। चमड़ी इन नालियों से मलोत्सर्ग करने का काम करती है। छिद्र स्वेद ग्रन्थियो (Sweat glands) के मुख्य द्वार हैं। ये लगभग चौथाई इंच लम्बी छोटी नालियाँ हैं और नीचे के सिरे पर लपेटी हुई होती हैं। स्वेद ग्रन्थियाँ पसीने

के रूप में खून की गन्दगी (impurities) को बाहर निकाल डालती हैं। पसीने की इन बूँदों के वाष्पीभवन (evaporation) से चमड़ी ठंडी रहती है।

चर्म (dermis)—सौत्रिक (fibrous) कोषों से बनी है। इसमें बहुतसी रक्तवाहिनियाँ है तथा नाड़ी सूत्रो (nerve fibres) का जाल सा बना हुआ है। चर्म की ऊपरी सतह प्रवर्धनों (projections) में उभरा हुआ है जिन्हे चर्म प्रवर्धन (papillae) कहते हैं और जो अंगुलियो के सिरो, हथेलियो इत्यादि पर क़तार के रूप में बने हुए हैं। ये विशेषतः जीभ तथा होठों के सिरों पर प्रमुख हैं। नाड़ी या स्पर्श अणु (touch corpuscles) इस उभार तक पहुचता है। शरीर के इन भागो में स्पर्श-ज्ञान सब से तीव्र होता है।

चर्म के निम्न भाग में साधारण चर्म कोषों (dermis cells) में छितरी हुई वसा-कोषो की तहे होती हैं। यह न केवल शक्ति के कोप का ही काम देती है प्रत्युत गर्मी को न जाने देकर शरीर को गर्म रखती है। स्वेदग्रंथियो के अतिरिक्त जिनसे पसीना निकलता है एक और तरह का ग्रंथि जोड़ (तैल या वसा ग्रंथियाँ) तथा नलिकाएँ है जो वसात्मक या तैलीयद्रव को सतह पर छिड़कती हैं। इससे चमड़ी नरम तथा आर्द्र रहती है और वह सूखती या चटकती नहीं। उपचर्म के कोपो के कठोर पड़ जाने से नाखून बनते हैं।

केश भी उपचर्म का एक परिवर्त्तित रूप है। यह चर्म में एक छोटे थैले के तले में तिरछा रक्खा रहता है (देखिये चित्र संख्या ३६)। केश को चिकना करने के लिये प्रत्येक केश के लिए एक तैल ग्रथि होती है। हरेक केश से लगी हुई एक छोटी अनैच्छिक माँस पेशी भी होती है।

चमडी के काम—१-यह शरीर की सतह पर (तापक्रम

के परिवर्त्तन, कीटाणुओ, चोट तथा शरीर के द्रव की हानि) से बचानेवाले आवरण का काम देती है। यह शरीर को उसका आकार व रङ्ग प्रदान करती है।

२–जब बाहरी तापक्रम बढता है तो यह शरीर को ठडा रखती है।

३–वसा की तह गर्मी को नही निकलने देती।

४–यह मल को (पानी कार्बन द्विओषिद तथा लवणों को) शरीर से निकाल बाहर करता है।

५–यह एक स्पर्शेन्द्रिय है। इससे गर्मी, ठंड तथा दर्द का अनुभव होता है।

६–यह चमड़ी को चिकनी तथा गीली रखती है और इस तरह उपाञ्जनकारक (lubricating agent) का काम करती है।

७–यह कुछ अश तक तैल वगैरह का शोषण कर सकती है (इसीलिए मलहम तथा तैल लगाये जाते हैं)।

८–यह सूर्य्य की रोशनी में विटैमिन डी बना लेती है। इस तरह शरीर को स्वस्थ रखता है।

चमड़ी को स्वच्छ रखना बड़ा जरूरी है अन्यथा वह अपने विभिन्न काम नही कर सकेगी और इससे चर्म तथा अन्य रोग पैदा हो जायेंगे।

रीढ़ की हड्डी के दोनो तरफ तथा आखिरी पसलियों के सामने गुर्दे (Kidneys) स्थित हैं। उनका रग गहरा बादामी है और वे आकार में सेम से मिलते जुलते हैं। वे लगभग ४ इंच लम्बे तथा दो इंच गोलाई में हैं और प्रत्येक का वजन लगभग चौथाई पाउंड है। गुर्दों के भीतरी सतह में एक खड्डा सा है जहाँ धमनी
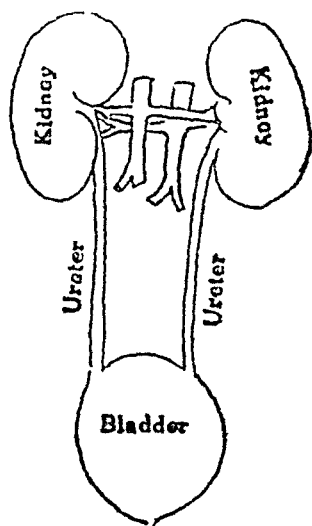
चित्र सख्या ३७–गुर्दे तथा मूत्राशय

तथा शिरा गुर्दे में प्रविष्ट होती तथा बाहर निकलती है। मूत्र-प्रणाली (ureter) या गुर्दे से मूत्राशय को जाने वाली नली इसी खड्डे अर्थात् व्रमक मूल (hilum) से बाहर आती है। मूत्राशय में पेशाब इकट्ठा किया जाता है। यह मूत्राशय मांस का एक थैला है। मूत्राशय से पेशाब मूत्रमार्ग (urethra) से बाहर निकाल दिया जाता है।
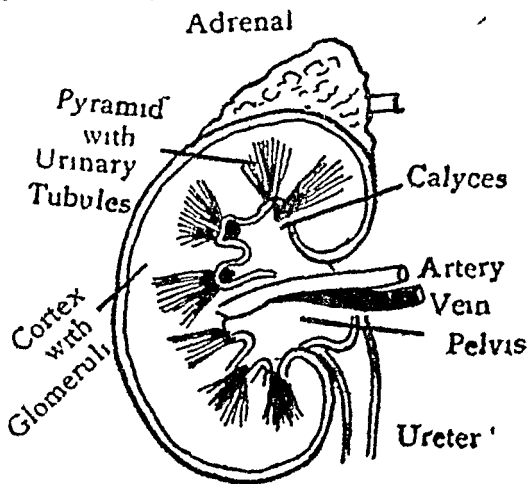
चित्र संख्या ३८—गुर्दे की भीतरी बनावट

गुर्दे की भीतरी बनावट से प्रकट होता है कि (१) उसमें एक काले रंग का एक बाहरी भाग जिसे वल्क (cortex) कहते हैं तथा (२) एक अंदरूनी हलका पीला भाग जिसे मेडूला (mudulla) कहते हैं, होता है। मेडूला में महीन शंकु के आकार की कई नलिकाएँ होती हैं जिन्हे पिरेमिड (pyramids) कहते हैं। ये मूत्र प्रणाली (ureter) की प्याले जैसी शाखाओं में पहुँचती है। मूत्र प्रणाली की शाखाओं को केलाइसेज (calyces) कहते हैं। ये मिलकर मूत्र प्रणाली का बड़ा गर्त्त अर्थात् पेलविस (pelvis) बनाती है।

गुर्दों की सूक्ष्म बनावट—सूक्ष्म दर्शक यन्त्र में देखने पर मालूम होता है कि मेडूला के पिरेमिडों में बहुत सारी सीधी सूक्ष्म नलिकाएं मूत्रीय नलियाँ (Uriniferous tubules) होती हैं जो अलग शंकु के आकार के समूहों में जिन्हें पिरेमिड कहते हैं सजी रहती हैं। प्रत्येक नलिका वल्क (Cortex) प्याले की तरह फैले हुए भाग में जिसे मेलपिघी का पिण्ड (Malpighian body) कहते हैं, शुरू होती है। पहले यह लपेटी हुई तथा घेरा डाले हुए होती है, इसके बाद यह एक बड़ी
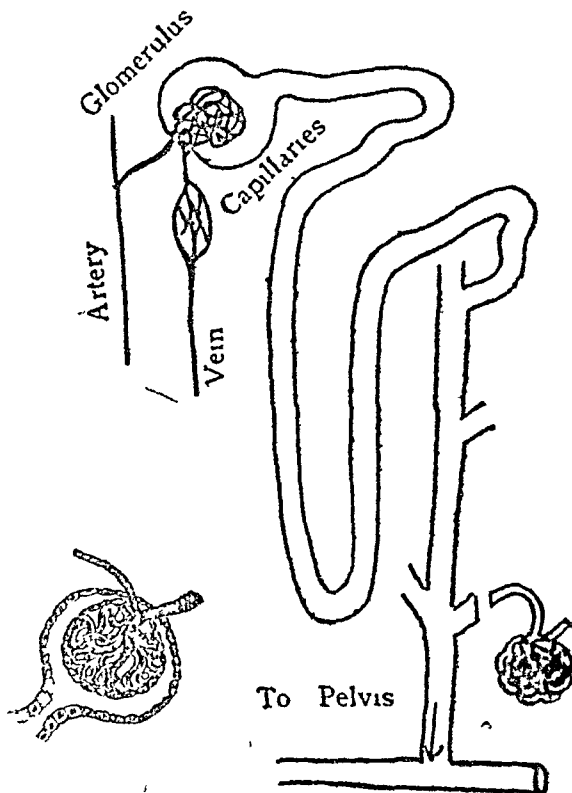
चित्र संख्या ३६—ग्लोमेरूलस

नली से मिलती है जो पिरेमिड में सीधी जाती है और कीप के आकार के पेलविस में पहुँचती है।

वृक्क धमनी (Renal artery) गुर्दे में हाइलम में प्रविष्ट होती है। यह विभाजित होकर छोटी केशिकाएँ बनाती है। वृक्क धमनी की छोटी शाखायें सीधी नलिकाओं (मूत्रीय नलियों) के पास पास जाती हैं। हरेक को एक शाखा मेलपिघी के पिण्ड को पहुँचती है जिससे केशिकाओं का एक गोल गुच्छा बन जाता है जिसे ग्लोमेरूलस (glomerulus) कहते हैं।

वृक्क धमनी नष्ट हुए फालतू पदार्थों से भरा हुआ खून लाती है। यह यहाँ पर ग्लोमेरूलसों (Glomeruli) में निःस्पन्द (filteration) तथा बिलगाव (Secretion) विधि द्वारा शुद्ध किया जाता है। इसके बाद शिरा की छोटी शाखाये खून को एकत्र करती हैं। ये शाखाएँ अन्त में मिल कर वृक्क शिरा (renal vein) बनाती हैं। वृक्क शिरा के खून में नष्ट हुए फालतू पदार्थ बहुत कम परिमाण में होते हैं।

मेटाबोलिज़्म (Metabolism)—जीवित शरीर में दो तरह के काम साथ साथ होते रहते हैं। पुराने कोषों को बदलने तथा नयी वृद्धि को शुद्ध करने के लिये नये कोषों का निर्माण होता है। निर्माण का यह कार्य अनाबोलिज्म (Anabolism) कहलाता है। इसके विपरीत कुछ कोष नष्ट और भग्न हो जाते हैं। यह काम कैटाबोलिज्म (Katabolism) कहलाता है। ये दोनों कार्य मिल कर मैटाबोलिज्म कहलाते हैं।

शरीर के अनाबोलिज्म सम्बन्धी कामों में शर्कराएँ, वसाएँ तथा नत्रजनीय पदार्थों का शोषण होता है और वे शरीर में जमा रहते हैं। ये रक्तधारा द्वारा शरीर के सारे भागों को दिया जाता है।

कैटाबोलिज्म में वसाओं तथा शर्कराओं का ओषदीकरण तथा नत्रजनीय पदार्थों का टूटना शामिल है। वसाओं तथा

शर्कराओं के कार्बन तथा उद्जन (Hydrogen) आवश्यक अंग हैं इसलिए अनेक ओषदीकरण से कार्बन द्विओषिद तथा पानी बनता है। नत्रजनीय पदार्थों के विच्छेदन से कार्बन द्विओषिद तथा पानी के अलावा यूरिया बनता है। कार्बन द्विओषिद तथा पानी को फेफड़े निकाल बाहर करते हैं। गुर्दे यूरिया तथा पानी को बाहर निकालते हैं।

गुर्दे के काम ये हैः—

१—नष्ट हुए पदार्थों के फल (यूरिया तथा यूरिक अम्ल) को जो मेटाबोलिज्म होते समय बनते हैं निकालना और इस तरह खून को साफ करना है।

२—वह विषैले पदार्थ जो किटानों तथा रासायनिक क्रियाओं से बनते हैं उनको बाहर निकालना।

३—उन दूसरे पदार्थों को जो खून में स्वाभाविक अनुपात से अधिक हैं अर्थात् सोडियम और पोटैशियम के क्लोराइड, सलफेट और फास्फेट की अधिकता को हटाना।

४—जब रक्त में द्रव द्रव्य अधिक होता है तो गुर्दे अधिक मूत्र बनाते हैं, और जब द्रव द्रव्य कम होता है तो कम। इस तरह गुर्दे रक्त के परिमाण का नियन्त्रण करते हैं।

मूत्र का बनना—मूत्र मूत्रीय नलिकाओं के ग्लोमेरुलसों में विलग होता है मानो छलनी में से छनकर और यह मोड़े वेष्टित मार्ग नालियों और उनकी शाखाओं में से होकर अन्त में गुर्दे के पेलविस में चला जाता है। यहाँ से वह मूत्राशय को ले जाया जाता है। जहाँ पर वह तब तक इकट्ठा होता रहता है जब तक मूत्राशय भर नहीं जाता। इसके बाद मूत्र मार्ग में होकर पेशाब बाहर निकाल दिया जाता है।

बृहदंत्र (large intestines) मल (पाखाना) को निकालने के लिये जिम्मेवार है। इसमें भोजन का बिना पचा हुआ भाग, पाचनरसों के अनावश्यक पदार्थ, अन्न मार्ग के छीजे हुये कोष

और कीटाणु (bacteria) होते हैं। बृहदंत्र के कई संकोचनों से मल शरीर से बाहर निकलता है। इन संकोचनों के कारण मल बाहर निकालने वाली नली मलाशय (rectum) से बाहर निकल जाता है।

शरीर से मल को जहाँ तक हो सके तुरन्त बाहर निकाल देना जरूरी है अन्यथा वह किसी भी हद तक सड़ सकता है और विष तथा गैस पैदा हो जाती है इससे कष्ट तथा दर्द हो सकता है। ठीक तरह का भोजन करने तथा कसरत करते रहने से पेट ठीक तरह से काम करता है। पेट ठीक तरह से काम करे इसके लिए खाने में कुछ मोटा भाग (roughage) भी होना आवश्यक हो सकता है। इससे पेट और अतड़ियों में रगड़ पैदा होती है और वे ठीक तरह से काम करती हैं।

पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि फेफड़े किस तरह कार्बन द्विओषिद तथा पानी को बाहर निकालते हैं। इस संबन्ध में उस अध्याय को फिर देख लेना चाहिये।

सारांश

मलमूत्र संस्थान शरीर से अनउपयोगी पदार्थों को बाहर निकालते हैं। दो भिन्न कार्य एक साथ होते रहते हैं नये कोषों का निर्माण तथा पुराने कोषों का नाश। कोष (नष्ट व भग्न) तथा अनेक कार्यों में जो अनुपयोगी पदार्थ उत्पन्न होते हैं उन्हें गुर्दे, फेफड़े, त्वचा तथा बृहदंत्र बाहर निकालते हैं।

चमड़ी की बनावट इसके विभिन्न कार्यों के लिए बनाई गई है। चमड़ी पसीने के रूप में पानी, कार्बन डियोकसाइड, लवण और चिकनाई शरीर से बाहर निकालती है। शरीर का आवरण रखती व तापक्रम ठीक रखती है। यह स्पर्शेन्द्रिय है, शरीर को चिकना व गीला रखती व कुछ अंश में तैल शोषन कर सकती है। चमड़ी सूर्य की रोशनी से विटामिन (D) बनाती है जो स्वास्थ्य बढ़ाता है।

गुर्दे मूत्र निकालते हैं। मूत्र में पानी यूरिया व यूरिक अम्ल व लवण होते हैं। गुर्दे रक्त के परिमाण पर भी नियन्त्रण रखते हैं। ग्लेमरूलस में निःस्पन्दन विधि द्वारा मूत्र रक्त से पृथक् किया जाता है मूत्र वहाँ से नली द्वारा मूत्राशय को जाता है। फेफड़े CO_2 व पानी बाहर निकालते हैं। वह यन्त्र अपाच्य भोजनांशो को बाहर निकालते हैं।

प्रश्न

१—जीवित शरीर के नष्ट हुए पदार्थों के फल (products) क्या हैं? और वे कैसे बनते हैं?

२—चमड़ी की बनावट का वर्णन कीजिए। उसके क्या काम हैं?

३—गुर्दों की बनावट बतलाइये। खून से मूत्र कैसे छनता है? इसका वर्णन कीजिये।

४—फेफड़ों तथा अन्तड़ियों के मलोत्सर्ग के कार्य को समझा कर बतलाइये।

अध्याय ११

वात-संस्थान (Nervous system)

खोपड़ी के खड्डे में मस्तिष्क होता है जो वात-संस्थान का केन्द्र है। मस्तिष्क (brain) सुषम्ना की लम्बाई तक फैला रहता है।

यह उलझा हुआ संस्थान शरीर के प्रत्येक भाग को चलाता तथा नियंत्रण करता है। वात-संस्थान हमें सोचने, जानने, समझने और याद रखने की सामर्थ्य प्रदान करता है। मॉस पेशियों पर अपना नियन्त्रण रख कर शरीर की विभिन्न गतियों को ठीक करता है।

स्पर्श, स्वाद, घ्राण, श्रवण तथा दृष्टि की ज्ञानेन्द्रियाँ इस वात-संस्थान के कारण काम करती हैं। यह अनुभूतियों—प्रेम, घृणा,

प्रसन्नता, डर, दुःख तथा इच्छा का भी स्थान है।

शरीर की प्रत्येक गति वात-संस्थान द्वारा होती तथा ठीक रक्खी जाती है। जीवित शरीर के दूसरे सारे संस्थान जिनका हमने अभी तक अध्ययन किया है इस संस्थान के नियन्त्रण तथा निरीक्षणमें काम करते हैं। यह काम नाड़ियों द्वारा प्रेषित संवादों से होता है। नाड़ियाँ संवाद को चर्म, आँख कान तथा दूसरे केन्द्रों से मस्तिष्क तक ले जाती हैं। मस्तिष्क तुरंत संबंधित माँस पेशिय तथा अवयवों को दूसरी नाड़ियोंके समूह द्वारा आज्ञा प्रदान करता है। वात-संस्था नकी उपमा टेलीफोन से दी जा सकती है। मस्तिष्क एक बड़े भारी केन्द्रीय एक्सचैंज का काम करता है और नाँड़ियाँ शरीर के प्रत्येक भाग से जुड़े हुये टेलीफोन के तार हैं। सुषुम्ना (spinal cord) नाड़ी कोषों के समूह हैं जो स्थानीय एक्सचैज का काम करते हैं।
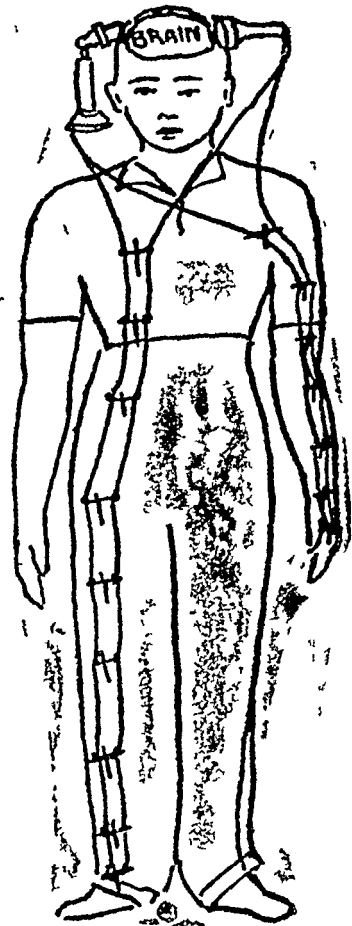
चित्र सख्या ४० वात टेलीफोन एक्सचेंज।

वात-संस्थान दो भागों में विभाजित किया गया है:—

१—*मस्तिष्क-सुषुम्ना-संस्थान* (cerebro-spinal system)—इसमें मस्तिष्क, सुषुम्ना और मस्तिष्क-सुषुम्ना नाड़ियाँ होती हैं।

यह शरीर के बाहरी भागों, माँस पेशियों, ज्ञानेन्द्रियों तथा केन्द्रीय मस्तिष्क के मध्य एक अटूट सम्बन्ध स्थापित करता है।

२—संवेदनात्मक संस्थान (sympathetic system). जो पाचन, रक्त भ्रमण, श्वासोच्छ्वास अवयवों और ग्रंथियों का

चित्र संख्या ४१—मस्तिष्क, सुषम्ना, नाड़ियाँ
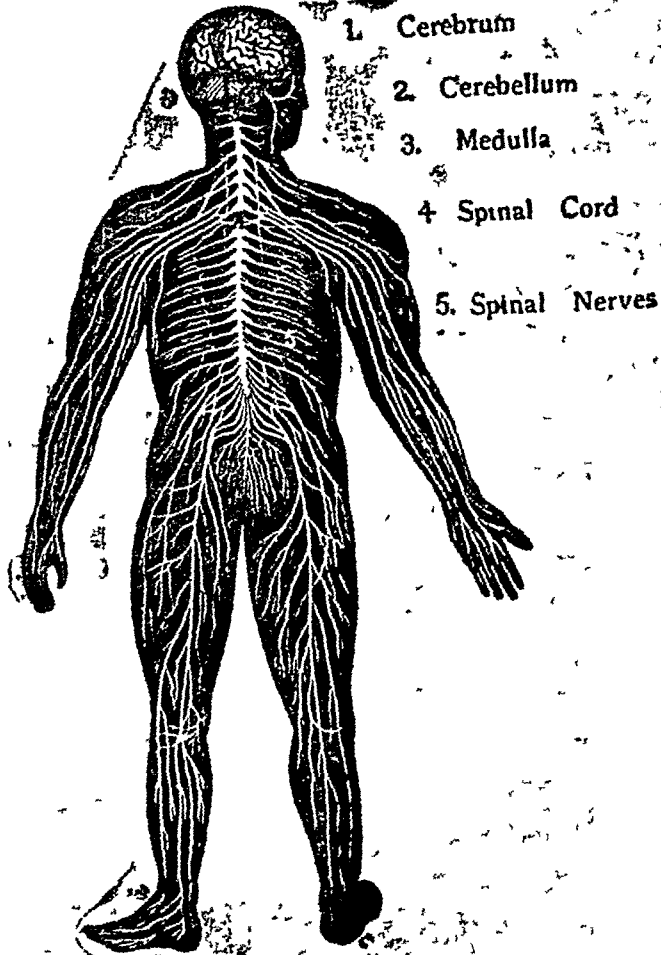
नियंत्रण करता है। इसमें दो लम्बी व पतली नाड़ियाँ होती हैं। इनमें से एक रीढ़ की हड्डी के एक तरफ और दूसरी दूसरी तरफ खोपड़ी से वस्तिगह्वर (Pelvis) तक होती है।

मस्तिष्क सुषुम्ना या केन्द्रीय वात-संस्थान—यह शरीर के केन्द्रीय अक्ष (axis) खोपड़ी तथा कसेरू की नली में स्थित है। यह बाहर से खूब सुरक्षित है क्योंकि इन वात-ततुओं को थोड़ी सी चोट लग जाने पर मृत्यु हो सकती है। पेटी की तरह खोपड़ी तथा सुरक्षित कसेरुका में रहने के अतिरिक्त यह बचाने वाले आवरण की कड़ी तहों से सुरक्षित रहती है।

इसमें मस्तिष्क, सुषम्ना तथा नाड़ियाँ होती हैं।

नाड़ियाँ वात कोषों (nerve cells) या न्यूरोन्स (neurones) से जो परस्पर महीन बंधक तंतुओ (connective tissues) से तंतुओं में बंधे रहते हैं। इस तरह वात कोष सफेद धागों के समान मालूम होते हैं।

नाड़ियाँ दो तरह की हैं :—

(१) एक तरह की नाड़ियाँ मस्तिष्क या सुषुम्ना को संदेश ले जाती हैं। वे केन्द्रगामी (Afferent) कहलाती हैं चूंकि वे साधारणतः इन्द्रियज्ञान (अर्थात् स्पर्श, दृष्टि,घ्राण,दर्द आदि) का अनुभव कराती हैं वे सांवेदनिक नाड़ियाँ (sensory nerves) भी कहलाती हैं।

२—दूसरी तरह की नाड़ियाँ जो मस्तिष्क या सुषुम्ना से सन्देश मॉसपेशियो, रक्तवाहिनियों, ग्रन्थियो इत्यादि को ले जाती हैं, केन्द्रत्यागी (Efferent) नाड़ियाँ कहलाती हैं। उन्हें गति नाड़ी (motor nerves) भी कहते हैं।

इस तरह हम आवाज सुनते हैं, जो सांवेदनिक या केन्द्रगामी नाड़ी द्वारा मस्तिष्क को पहुँचाई जाती है। मस्तिष्क सम्बन्धित मॉस पेशियों को आवश्यक आज्ञाएँ देता है जिससे हम उस

व्यक्ति की तरफ मुड़ कर उसकी बात सुनें। ये आज्ञाएँ गति या केन्द्र त्यागी नाड़ियों द्वारा ले जाई जाती हैं।

नाड़ियाँ ग्रन्थियों (glands) को भी सन्देश पहुंचाती हैं। जब यह संवाद कि भोजन परोस दिया गया है, मस्तिष्क के पास ले आया जाता है, वह लाला ग्रन्थियों को मुँह में लार भरने की आज्ञा देता है। मस्तिष्क को संवाद सांवेदनिक नाड़ी (Secretory nerve) पहुँचाती है। यह रसोत्पादक इसलिए कहलाती है क्योंकि यह ग्रंथियों में रस का उत्पादन करने का कारण बनती है।

कुछ नाड़ियाँ पूरी तरह से सांवेदनिक होती हैं और कुछ पूर्णतः गति नाड़ियाँ होती हैं। पर अधिकांश नाड़ियाँ मिश्रित नाड़ियाँ हैं जो दोनों तरफ संवाद पहुँचाती हैं।

खोपड़ी का सारा गर्त मस्तिष्क से भर जाता है। यह तीन कड़े आवरणों से घिरा रहता है। इसमें वात कोषों तथा वात-तंतुओं के समूह होते है। इसमें बहुतसी रक्त वाहिनियाँ होती हैं। आदमी के मस्तिष्क का भार ५०-५६ आउंस तक तथा स्त्री के मस्तिष्क का भार ४५-४८ आउंस तक होता है। बड़ा मस्तिष्क ज्यादा बुद्धि तथा दूसरे उच्च गुणों का चिह्न है। औरत के मस्तिष्क
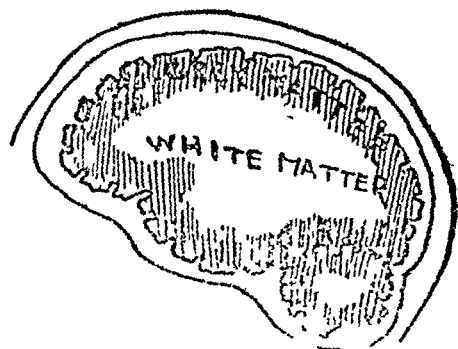
चित्र नं ४२—मस्तिष्क की सतह लपेटन के कारण बढ़ गई है।

का वजन इसलिए कम नहीं है कि वह मानसिक शक्ति में पुरुष से घट कर है वल्कि इसलिये कम है कि उसका आकार अपेक्षाकृत पुरुष से छोटा है।

मनुष्य का मस्तिष्क किसी दूसरे जानवर के मस्तिष्क की अपेक्षा शरीर के अनुपात से बहुत अधिक बड़ा होता है। इसके अलावा मानव प्राणियों के मस्तिष्क की सतह उसमें तहे पड़ने तथा रेखाओं के होने के कारण बढ़ जाती है।

मस्तिष्क तीन मुख्य भागों में बाँटा गया है—

१—बृहत् मस्तिष्क (Cerebrum) यह खोपड़ी के सारे ऊपरी भाग को भर देता है और यह सारे मस्तिष्क का अधिकांश ($\frac{७}{८}$) है।

२—लघुमस्तिष्क (cerebellum) यह बृहत् मस्तिष्क के पीछे के भाग के ठीक नीचे होता है।

३—सुषुम्ना शीर्षक (Medulla oblongata) यह सुषुम्ना को दिमाग़ से मिलाती है।

(१) बृहत मस्तिष्क—में दो बड़े दाहिने और बायें पिंड होते हैं इनमें से हरेक फिर तीन पिंडों में विभाजित होता है। बृहत् मस्तिष्क के बाहरी भाग में एक गुलाबीपन लिये भूरे रङ्ग के वात कोषतन्तु (nerve cells) तथा भीतरी भाग में श्वेत वात कोष सूत्र (white nerve fibres) होते हैं। भूरे पदार्थ बाहरी परन्तु लगभग $\frac{१}{८}$ इंच मोटी होती है। हमारी सारी अनुभूतियाँ इस भूरे पदार्थ में पहुँचती हैं और आवश्यक प्रतिक्रियाएँ या आज्ञाएँ इन कोषो से जारी होती हैं।

यह वात पदार्थ (भूरी वस्तु) कई सारी लपेटों में मुड़ा हुआ होता है इससे इसकी सतह बहुत बढ़ जाती है। बहुत ही संस्कृत पुरुष के मस्तिष्क की यह स्पष्ट विशेषता है। निम्न प्राणियों में ये

लपेटन नहीं होती। उच्च प्राणियों में यह शुरू होती है। मनुष्य
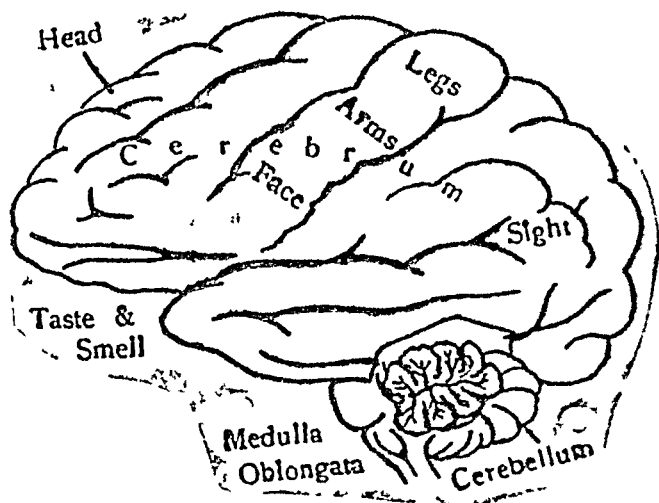
चित्र संख्या ४३—मस्तिष्क (Brain)

में ये बहुत अधिक होती है। बहुतसी लपेटनें (जिसका मतलब मस्तिष्क की सतह बड़ी होना है) व्यक्ति की उच्चतर मानसिक शक्तियो का परिचायक है।

बृहत मस्तिष्क के काम—यह निम्न लिखित बातों का स्थान है:—

१—बुद्धि (सोचने समझने तथा निर्णय करने की शक्ति)

२—इच्छा [ऐच्छिक (voluntary) कार्यों के करने की शक्ति]

३—अनुभूति (अपनी ज्ञानेन्द्रियो द्वारा अपने चारों ओर की चीजों के जानने की शक्ति)

४—उमङ्ग (यह हमें प्रेम करने, घृणा करने, डरने तथा दुःख एवं सुख अनुभव करने के योग्य बनाती है)

५—स्मृति (याद रखने की शक्ति)

६—कल्पना।

७—शरीर की सब गतियों का नियंत्रण।

पशुओं पर प्रयोग करके या उन व्यक्तियों का जो मस्तिष्क-रोग से पीड़ित हैं या जिनके मस्तिष्क को चोट लग गई है, अवलोकन करके निश्चित केन्द्र (centres) मालूम किये जा चुके हैं। शरीर की गति का नियन्त्रण मस्तिष्क की एक पट्टी करती है जो कान के पास से तिरछी ऊपर की तरफ जाती है। निश्चित क्षेत्र हाथ, भुजा, पैर, उदर, चेहरे, गले इत्यादि का नियन्त्रण करते हैं। मस्तिष्क के निश्चित क्षेत्र जो प्रत्येक २ इंच इस तरफ़ से उस तरफ़ होता है, स्वाद, घ्राण, श्रवण तथा दृष्टि से सरोकार रखते हैं। भाषणकेन्द्र एक ही है।

बृहत् मस्तिष्क के पिंडों के काम के बारे में एक विचित्र बात यह है कि प्रत्येक बाजू अपनी उल्टी तरफ़ के शरीरार्ध को नियंत्रित करती तथा उससे सम्बाद प्राप्त करती है। दाहिना पिंड शरीर के बाएँ भाग का नियन्त्रण करता है।

(२) *लघु मस्तिष्क*—यह बृहत् मस्तिष्क के पिछले भाग के नीचे होता है और उससे एक आवृत्त करने वाली झिल्ली से अलग किया गया है। इस के दो अर्ध भाग होते हैं। इस में (बाहरी) भूरा तथा (भीतरी) सफेद पदार्थ होता है। जब इस का परिच्छेद काटा जाता है तो यह वृक्ष जैसा दिखाई पड़ता है (देखिये चित्र संख्या ४३)।

काम—

१—शरीर के पासंग (balance) को बनाये रखना।

२—उलझे हुए कामों में यथा घूमना, खड़े होना, दौड़ना जिनमें बहुतसी मांस पेशियाँ काम करती हैं, माँस पेशियों की गति को नियमित–समतुल्य–करना।

लघु मस्तिष्क के एक पार्श्व में स्थित एक गोल पिंड होता है जिसे पिच्युइटरी पिंड (Pituitary body) कहते हैं। यह शरीर की साधारण वृद्धि का नियन्त्रण करती है।

(३) सुषुम्नाशीर्षक—यह मस्तिष्क को सुषुम्ना से मिलाता है। यह लगभग डेढ़ इंच लम्बा तथा ऊपरी भाग में लगभग पौन इंच मोटा होता है। इसमें बाहर की ओर श्वेत पदार्थ तथा भीतर भूरा पदार्थ होता है।

काम—इसमें महत्त्वपूर्ण केन्द्र होते हैं जो जीवन-कार्यों का नियन्त्रण करते हैं। ये काम साँस लेना, रक्त का घूमना, ग्रास निगलना, लाला का बहना, जिह्वा की गति तथा गले के पिछले भाग की गति है।

यदि सुषुम्ना शीर्षक के नीचे के भाग में चोट लग जाय तो तुरन्त मृत्यु हो जाती है क्योंकि दिल तथा फेफड़े चोट की वजह से तुरन्त अपना काम बन्द कर देते हैं। इसके ऊपरी भाग में चोट लगने से सारी अनुभूतियाँ नष्ट हो जाती हैं। इस तरह का आदमी जी सकता तथा साँस ले सकता है पर उसे दर्द नहीं मालूम होगा।

मस्तिष्क तथा मस्तिष्क शीर्षक के नीचे की सतह से मस्तिष्क नाड़ियाँ (Cranial nerves) निकलती हैं। इन नाड़ियों के बारह जोड़े होते हैं। वे खोपड़ी के तले से नौ छिद्रों में से होकर बाहर निकलते हैं और इनका सम्बन्ध मुख्यतः घ्राणेंद्रिय, स्वादेंद्रिय, आँख तथा गर्दन से होता है। उनके जोड़े होते हैं।

नीचे की तालिका में विभिन्न मस्तिष्क नाड़ियों की प्रकृति तथा काम दिखलाये गये है :—

युग्म(Pair) संख्या	नाम	कार्य क्षेत्र	प्रकृति	काम
१	घ्राण (Olfactory)	नाक की भीतरी सतह	सावेदनिक (sensory) नाड़ी	सूंघना
२	दृष्टि (Optic)	आँखके गोलकों Eyeballs की सबसे अन्दरूनी परत	सावेदनिक नाड़ी	देखना
३	मोटोरेस ओक्यूलाई Motores oculi	आँखके गोलकों की मास पेशियाँ	गति (motor) नाड़ी	सविधान (Accommodation), आँखकी गति ।
४	ट्रोक्लियर (Trochlear)		गति नाड़ी	आँखों को नीचे तथा बाहर की तरफ घुमाना ।
५	त्रिशाखा (Trigeminal)	इसके दो मूल हैं— १ जबड़े की माँस पेशियाँ २ दाँत, जीभ	१ गति नाड़ी २ सांवेदनिक नाड़ी	१ जबड़े की मांसपेशियों को घुमाती है । २ स्वाद-जीभके सामनेका भाग
६	पेब्ड्यूसेन्स (Abducens)	आँख की बाहरी माँस-पेशियाँ	गति (motor)	आँखें बाहर की तरफ घुमाई जाती हैं ।
७	मौखिकी (Facial)	चेहरे की माँसपेशियाँ	गति नाड़ी	चेहरे की मांसपेशियोंको घुमाना

८	श्रवण (Auditory)	भीतरी कान	सावेदनिक (sensory) नाड़ी	सुनना तथा साम्य (Equilibrium)
९	जिह्वाकण्ठीय (Glosso-pharyngeal)	जीभ का पृष्ठ भाग	इसके दो मूल हैं— १ सावेदनिक (sensory) २ गति (motor) नाड़ी	१ स्वाद-जीभ का $\frac{२}{३}$ पृष्ठभाग २ निगलनेवाली मासपेशियों का नियन्त्रण।
१०	वेगस (Vagus)	स्वरयन्त्र(Larynx), फेफड़े दिल,आमाशय stomach अन्तड़ियाँ,यकृत (liver), क्लोम (pancreas), प्लीहा (spleen)	अंशतः सावेदनिक तथा अंशतः गतिनाड़ी	इन अवयवों का नियन्त्रण करती है।
११	स्पाईनल ऐक्सेसरी (Spinal accessory)	गर्दन तथा पीठ	गति नाड़ी	गर्दन तथा पीठ की माँस-पेशियों को घुमाती है।
१२	जिह्वा अधोवर्ती (Hypoglossal)	जीभ की माँसपेशियाँ	गति नाड़ी	भाषण की सूक्ष्म गतियों का नियन्त्रण करती है।

सुषुम्ना कशेरु की नाली (vertebral canal) में स्थित है
यह सुषुम्नाशीर्षक का कशेरु की नाली में फैलाव (extension)
है।
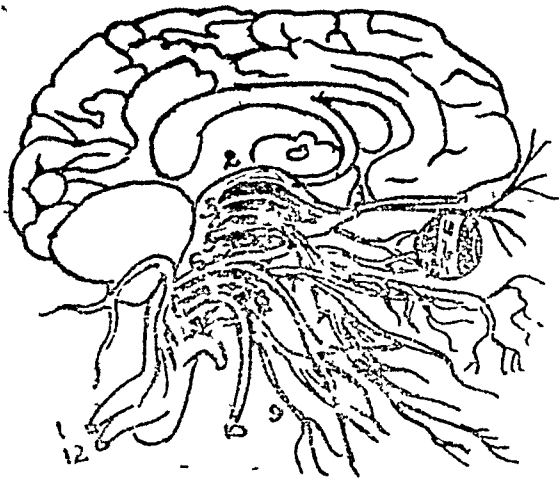
चित्र संख्या ४४—मस्तिष्क की नाड़ियों की जड़ें (Roots of the cranial nerves)

यह पश्चादस्थि (occipital bone) के एक बड़े छिद्र में से
होकर निकलती है। चोटी पर लगभग आध इंच मोटी होती है
और नीचे की तरफ़ पतली तथा नुकीली हो जाती है। यह केवल
पहले कटिकी कशेरु (lumber vertebra) के तले तक ही पहुँ-
चती है। यह तीन कड़ी परतों से ढकी रहती है।

इसमें दो तरह का वात पदार्थ होता है—सफेद तथा भूरा।
सफ़ेद पदार्थ बाहर की तरफ होता है और भूरा अन्दर की तरफ़
जैसे कि सुषुम्नाशीर्षक में है। मस्तिष्क में उसका उलटा होता है।

अन्दरूनी भूरे पदार्थ से ३२ नाड़ियाँ निकलती है। इन्हें
सौषुम्न नाड़ियों (spinal nerves) कहते हैं। कशेरुकाओं के
बीच के छोटे छिद्रों में से कशेरुका नाली के दोनों तरफ़ से ये
नाड़ियों बाहर निकलती हैं। वे चर्म, रक्त वाहिनियों तथा अव-

यवों को जाती हैं।
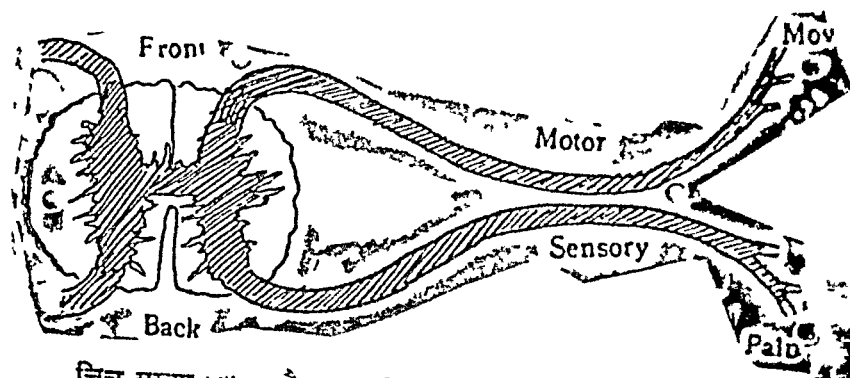
चित्र सख्या ४५—सौषुम्न नाड़ियाँ (Spinal nerves)

हरेक सौषुम्न नाड़ी की दो जड़ें होती हैं—एक सुषुम्ना के सामने से निकलती है और दूसरी उसके पृष्ठ भाग से। वे नाड़ियां जो सामने से निकलती हैं सुषुम्ना के आगे के भूरे पदार्थ से पैदा होती हैं। पृष्ठ भाग से निकलने वाली नाड़ियाँ सुषुम्ना के पीछे के भूरे पदार्थ से उत्पन्न होती हैं। सामने और पीछे दोनों तरफ भूरे पदार्थ के सींग के समान प्रवर्द्धन हो जाते हैं जहाँ से इन जड़ों का उद्गम होता है।

वे जड़ें जहाँ सुषुम्ना के आगे से आती हैं शरीर की माँस पेशियों की गति का नियंत्रण करती हैं और इसलिए वे गति नाड़ी (motor nerves) कहलाती है।

सुषुम्ना के पृष्ठ भाग से आने वाली जड़े, चमड़ी अर्थात् शरीर की सतह मे संवाद अनुभूतियाँ लाती हैं और इसलिए सांवेदनिक नाड़ियाँ (sensory nerves) कहलाती हैं।

प्रत्येक नाड़ी धड़ इन दो जड़ों के मिलने से बनता है।

सुषुम्ना का काम—

(१) सुषुम्ना शरीर के विभिन्न भागों के पृष्ठ भाग से

निकलने वाली (सांवेदनिक) नाड़ियों से प्राप्त संवादों को लेती है और उन्हें मस्तिष्क को भेजती है। यदि नाड़ी के आगे का भाग नष्ट हो जाय तो अनुभूति नष्ट हो जायगी पर मांस पेशियाँ फिर भी काम करती रहेंगी।

(२) अग्रभाग से निकलने वाली (गति) नाड़ियों द्वारा यह मस्तिष्क की प्रेरणाओं (impulses) को माँस पेशियों तक भेजती हैं और इस तरह अपेक्षित गति होती है। यदि केवल अग्रभाग नष्ट कर दिया जाय तो हिलने की शक्ति नष्ट हो जायगी यद्यपि अनुभूतियाँ फिर भी हो सकती हैं। यदि दोनों जड़ों में चोट पहुँच जाती है तो सम्बन्धित स्थान न तो हिल जुल सकता है और न वहाँ कुछ अनुभूति ही हो पाती है।

(३) सुषुम्ना एक स्वतन्त्र केन्द्र की तरह भी काम करती है। यहाँ पर संवाद प्राप्त किये जाते हैं और मस्तिष्क के बिना किसी हस्तक्षेप के माँस पेशियों को आदेश प्रदान किये जाते हैं। यह काम स्वयं प्रेरित क्रिया (reflex action) कहलाता है।
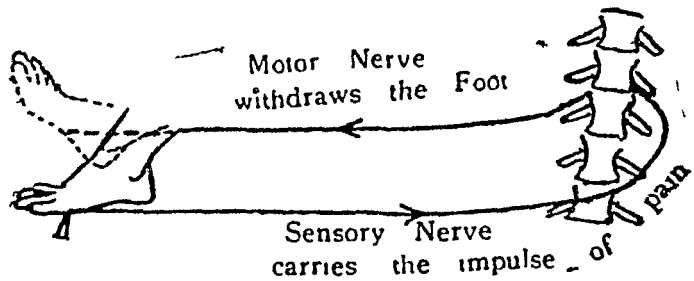
चित्र संख्या ४६—स्वयंप्रेरित क्रिया—पैर अपने आप हटा लिया गया है

स्वयं प्रेरित क्रिया—सुषुम्ना का एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य है। सुषुम्ना द्वारा प्राप्त संवाद तुरन्त वापिस भेजे जाते हैं। अर्थात् माँस-पेशियों को परवर्तित किये जाते हैं। ये स्वयं प्रेरित क्रिया एक स्वयं प्रेरित चाप (Arc) द्वारा की जाती है स्वयं प्रेरित आर्क (Arc) में एक ज्ञान नाड़ी होती है। सुषुम्ना

२ सामान्य रीति, नियम, स्वभाव आदि के विपरीत क्रम मे

का भाग, एक गति नाड़ी, तथा एक हिलने वाला अवयव होता है। ऐसी स्वय प्रेरित क्रियाओं से शरीर की रक्षा होती है।

मान लीजिए एक बच्चा अपना हाथ गर्म कोयले पर रखता है। सुषुम्ना के पृष्ठ भाग से उद्भूत सांवेदनिक नाड़ी द्वारा संवाद सुषुम्ना को पहुँचाया जाता है। फौरन संवाद आगे भेज दिया जाता है और गतिनाड़ी द्वारा हाथ की मॉस पेशी को हाथ हटा लेने के लिए वापिस पहुँचाया जाता है। यह काम बिना मस्तिष्क के ज्ञान के होता है और स्वयंप्रेरित क्रिया (reflex action) कहलाता है।

उन व्यक्तियों में भी यह क्रिया होती है जिनके शरीर के नीचे के अंगों में मस्तिष्क तथा सुषुम्ना के बीच का सम्बन्ध टूट जाने से लकवा मार गया है और उनमें न तो अनुभूति होती है और न वे हिल पाती हैं फिर भी यदि पैर के तलवों में गुदगुदी की जाय तो तुरन्त ही वे लात मार देंगे।

स्वयंप्रेरित क्रिया के अन्य उदाहरण ये हैं :—

१—जब कोई व्यक्ति नींद में सो रहा हो तो उसके पैर में गुदगुदी करने से वह अपना पैर हटा लेगा।

२—खाँसी आना जब वायु नली में कोई पदार्थ चला जाय।

३—जब कोई व्यक्ति नजदीक में सांप को देख लेता है तो वह डर कर चिल्ला उठता है।

स्वयं मस्तिष्क से कई स्वयं प्रेरित क्रियाएं उस व्यक्ति के अनजाने में होती हैं।

उदाहरण :—धक्के या चोट से अचानक [illegible] उठना।

आनेवाली सामने की [illegible] से आँख का झपक जाना।

रोशनी की या बन्दूक छूटने पर होने वाली अचानक चौंध से आँख का मुँद जाना।

ऐसी सब हालतों में व्यक्ति के अनजाने में ही काम होता है।

हमारे शरीर में कई स्वयंप्रेरित क्रियायें लगातार होती रहती हैं। अन्तरजात, स्वयं क्रियायें स्वाभाविक (Instincts) क्रियायें कहलाती हैं।

बच्चा जन्म लेते ही माता का दूध पी सकता है। स्वयंप्रेरित क्रियायें जो हम प्रायः अभ्यास से सीखते हैं वह व्यवहार (habits) या आदत बन जाती हैं। जैसे चलना, साइकिल चलाना, तैरना, टाइप करना इत्यादि।

सवेदनात्मक वात-संस्थान (Sympathetic Nervous System)—इस संस्थान में दो लम्बी पतली नाड़ियाँ—खोपड़ी से बस्तिगह्वर तक कशेरु (vertebral column) की हरेक बाजू की तरफ एक होती है। इसकी कई गैंगलियनों (ganglia) से शाखाये निकलती हैं। ये शाखायें सारे अंदरूनी अवयवो और रक्तवाहिनियों को जाती हैं और ये सौषुम्न नाड़ियों से जुड़ी होती हैं।

संवेदनात्मक संस्थान में कोई संवाद नहीं जाता पर यह मस्तिष्क या सुषुम्ना से उत्पन्न संवादों को ले जाने का काम करता है।

संवेदनात्मक संस्थान पाचन, पोषण, रक्त-भ्रमण तथा श्वासोच्छ्वास को नियन्त्रण करता है। यह नियन्त्रण माँसपेशियों तथा इन अवयवो की पेशियों की गति पर दबाव डालकर किया जाता है। धमनियो की पेशियों के सिकुड़न से उसमें रक्त का बहाव कम किया जा सकता है। संवेदनात्मक नाड़ियों का भिड़ा हुआ जाल जो फेफड़ों, दिल, आमाशय, अन्तड़ियों और रक्तवाहिनियों की मांस पेशियो के चारों ओर बना हुआ है, इन अवयवों के काम पर नियन्त्रण करता तथा प्रेरणात्मक असर डालता है

सारांश

वात-संस्थान समस्त शरीर की क्रियाओं पर नियन्त्रण रखता है। बृहत् मस्तिष्क बुद्धि, इच्छा, अनुभूति, भावों, आनन्द, स्मृति तथा कल्पना का केन्द्र है। यह शरीर की समस्त गतियों पर नियन्त्रण रखता है।

लघु मस्तिष्क शरीर का पासंग बनाए रखता है और माँस पेशियों की गति को नियमित रखता है।

सुषुम्नाशीर्षक में महत्व पूर्ण केन्द्र होते हैं जो श्वास लेना, रक्त परिभ्रमण, ग्रास निगलने, जिह्वा तथा पिछले गले की गति का नियन्त्रण करता है। वह मस्तिष्क को संवाद भेजती है और मस्तिष्क की संचालन आज्ञाओं को मॉस पेशियों तक भेजती है। यह स्वयं प्रेरित क्रियाओं पर नियन्त्रण रखती है। संवेदनात्मक वात संस्थान भीतरी अवयवों के कार्यों तथा अवयवों की पेशियों की गति पर नियन्त्रण रखती है।

प्रश्न

१—वात संस्थान के साधारण कार्यों के सम्बन्ध में एक छोटी टिप्पणी लिखिये।

२—इनको समझाइये—सांवेदनिक, गति सम्बन्धी, रसोत्पादक (Secretory), लपेटन, बुद्धि, इच्छा, उमंगें।

३—बृहत् मस्तिष्ककी बनावट तथा उसके कामका वर्णन कीजिए।

४—लघु मस्तिष्क तथा सुषुम्नाशीर्षक की रचना तथा कार्यों का वर्णन कीजिये।

५—मस्तिष्क नाड़ियों के काम का सङ्क्षिप्त रूप से वर्णन कीजिये।

६—सुषुम्ना की रचना तथा उसके काम का वर्णन कीजिये।

७—स्वयं प्रेरित क्रिया क्या है ? उदाहरण देकर समझाइये।

८—संवेदनात्मक वात संस्थान पर एक छोटी टिप्पणी लिखिये।

अध्याय १२
ज्ञानेन्द्रियाँ

वात संस्थान से ज्ञानेन्द्रियों का घनिष्ट संबंध है। वे हमें बाहरी संसार का जिसमें हम रहते हैं ज्ञान कराती हैं। प्रत्येक बात जिसका मस्तिष्क को ज्ञान होता है ज्ञानेन्द्रियाँ द्वारा आती है। ज्ञानेन्द्रियाँ मस्तिष्क नाड़ियों के बदले हुए विकार हैं। हरेक बात जिसका वह हुक्म करता है इसलिए की जाती है क्योंकि मस्तिष्क को कुछ न कुछ बात ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त हुई है। ज्ञानेन्द्रियाँ ये हैं :—

१—देखने के लिये आंखे।
२—सुनने के लिए कान।
३—स्वाद लेने के लिए जीभ।
४—सूँघने के लिये नाक।
५—अनुभव करने के लिये अर्थात् स्पर्श, दर्द, गर्मी तथा मालूम करने के लिये चमड़ी।

आँखें दृष्टि के अवयव हैं ये आँख के गड्ढे में सुरक्षित रूप से स्थित है। आँख एक गेंद की तरह होती है और उसका व्यास लगभग एक इंच होता है सामने को छोड़कर यह सब तरफ से हड्डियों द्वारा चित्र संख्या ४७ अश्रुग्रंथियाँ 'Tear Glands' भली भाँति रक्षित है। सामने से यह चमड़ी तथा माँस के दो
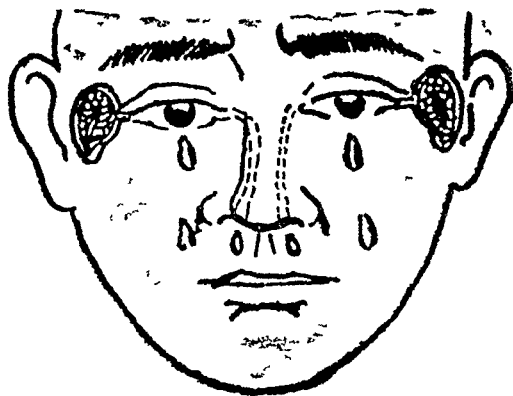
गतिशील पटों द्वारा रक्षित है। ये पलकें (eyelids) कहलाती हैं पलकों के किनारों पर नन्हे से केश होते हैं जिन्हे बरौनियां (eyelashes) कहते हैं। पलकें आँख की रक्षा करती हैं।

हरेक पलक की भीतरी सतह में एक चिकनी झिल्ली होती है जिसे कंजंक्टाइवा (conjunctiva) कहते हैं। यह कुछ तो अपने खुद के रस से तथा कुछ आँसुओं से गीली रखी जाती है। आँसू दो छोटी ग्रन्थियों में बनते हैं जिनमें से एक हरेक आँख के बाहर की तरफ होता है। यदि धूल या बाहरी चीज आँखों में चली जाती है तो आँसू उसे नीचे बहा ले आते हैं। आँख का गोलक तीन परतों या आवरणों से बना है:—
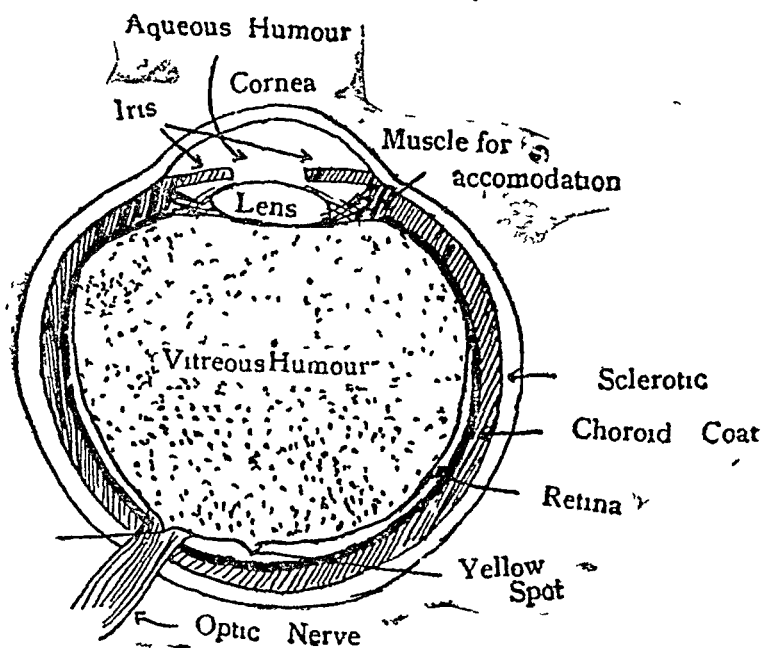
चित्र संख्या ४८—आंख के गोलक में से परिच्छेद

१—स्कलेरोटिक (Sclerotic) श्वेत पटल।
२—कोरियोइड (Chorioid) मध्य पटल।

३—कृष्ण पटल (Retina)।

स्क्लेरोटिक या बाहरी आवरण एक मोटी बचाव करने वाली परत है। यह सामने के भाग के अतिरिक्त सारी आँख को आवृत कर लेता है। सामने की ओर आँख उभर कर पारदर्शक गोल भाग बनाती है जिसे कोर्निया (cornea) कहते हैं। बाहर से आँख का जो श्वेत भाग दिखाई देता है वह स्क्लेरोटिक आवरण है। यह भाग अपारदर्शक है। कोर्निया ही प्रकाश रश्मियों को भीतर जाने देता है। यह प्रकाश के लिए एक छिद्र है। कोर्निया के पीछे उपतारा (iris) की खोलीचढ़ी होने से वह काला दिखाई देता है।

स्क्लेरोटिक पीछे से मोटी रस्सी की तरह दृष्टि-नाड़ी से छिदा हुआ होता है और इसके बाहरी सतह से छै माँस पेशियां जुड़ी होती हैं जो अक्ष (eye ball) को विभिन्न दिशाओं में घुमाते हैं।

कोरियोइड (chorioid) आँख का दूसरा आवरण है। यह रंगीन झिल्ली है जिसमें बहुत सी रक्त वाहिनियाँ हैं। इसका काम आँख की कोठरी को अंधकारमय करना है। और आँख का पोषण करता है। स्क्लेरोटिक की भाँति यह भी पीछे दृष्टि नाड़ी द्वारा छिदा हुआ होता है।
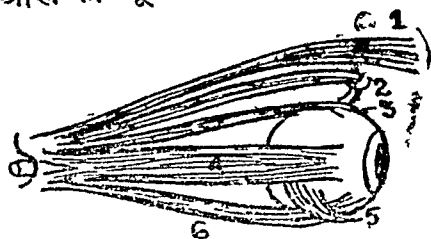
चित्र संख्या ४९—आँख के गोलक की माँस पेशियाँ

सामने की तरफ कोरियोइड का गोलाकार छिद्र तारा (pupil) बनाता है। यह छिद्र एक गोलाकार काले परदे द्वारा नियंत्रित होता है जिसे उपतारा (iris) कहते हैं। उपतारा दो तरह की मांस पेशियों से मिलकर बनता है। इनमें से एक तारे (pupil) को (जब आँख प्रकाश से दूर हटा ली जाती है)

और बड़ा बनाती हैं और दूसरी तारे को (जब आँख प्रकाश की तरफ़ मुड़ती है) और छोटी बनाती है।

चित्र संख्या ४९—(क) आँख के गोलकका परिच्छेद सामने का भाग भीतर से

उपतारा आँख को रंगीन बनाता है क्योंकि इसके तंतुओं में एक वर्णक (pigment) होता है जो विभिन्न व्यक्तियों तथा जातियों में अलग अलग होता है। उपतारा की काली सतह को आवृत करने वाले काले वर्णक के कारण स्वयं उपतारा में से कोई प्रकाश नहीं जा सकता।

कृष्ण पटल (retina) आँख का सब से अन्दरूनी आवरण है। यह प्रकाश का सुग्राहक (sensitive) है। पीछे से प्रवेश करने वाली दृष्टि नाड़ी के फैलकर बढ़ जाने से बना हुआ यह एक बहुत पतला आवरण है। कृष्ण पटल में कई परतें होती हैं। कोरियोइड परत के निकटतम एक कृष्ण-वर्ण के कोषों का समूह है जो प्रकाश को फैलने से रोकता है। बहुत ही विशिष्ट काम के लिए बने हुए कोषों की एक दूसरी परत होती है। इन कोषों को दंडिका तथा शंकु (Rods and Cones) कहते हैं। ये प्रकाश के
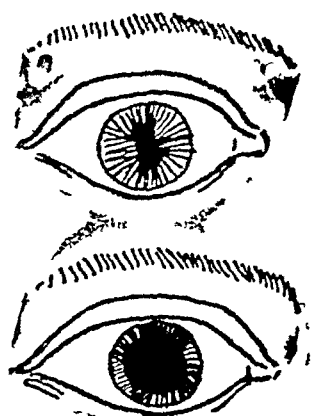
चित्र संख्या ५०—इसमें यह दिखलाया गया है कि तारा किस तरह छोटा और बड़ा होता है।

सुग्राहक हैं। शंकु प्रकाश की तीव्रता का भी सुग्राहक हैं। दंडिकायें रंग देखने की सामर्थ्य प्रदान करती हैं। दृष्टि नाड़ी के सूत्र (fibres) दृश्यानुभूतियों को मस्तिष्क तक पहुँचाते हैं।

वह बिंदु जहाँ दृष्टि नाड़ी मस्तिष्क में प्रविष्ट होती है अंध विन्दु (blind spot) कहलाता है। यहाँ न तो दंडिका होती है और न कोन। इसलिये यह स्थान प्रकाश का सुग्राहक नहीं है। कृष्ण पटल (Retina) के बीच में पीछे एक स्थान है जो पीत बिन्दु (yellow spot) कहलाता है। यहाँ पर सब से अधिक साफ दिखाई देता है।

आँख की कोठरी (chamber of the eye)—उपतारा द्वारा आँख का भीतरी भाग दो असम कोठरियों में विभाजित किया गया है। सामने की कोठरी जो किरीट (cornea) तथा उपतारा के वीच में है, एक साफ पानी जैसे द्रव तरल रस (Aqueous humour) से भरी हुई होती है। उपतारा तथा कृष्णपटल के वीच की कोठरी अधिक बड़ी है और वह एक पारदर्शक जेली जैसे पदार्थ से जिसे सांद्ररस (vitreous humour) कहते हैं भरी होती है।

ताल (Lenses)—उपतारा के पीछे तथा पृष्ठभाग में सांद्ररस में टिका हुआ एक युगल उन्नतोदर (double convex) ताल है जिसे नेत्रकाँच (crystalline lens of eye) कहते हैं। इस ताल की वक्रता (curvature) एक तरह की माँस पेशियों द्वारा कुछ बदली जा सकती है। ये माँस पेशियाँ सिकुड़ कर ताल को बीच में कुछ अधिक मोटा बना देती हैं। कैमरा में ताल को आगे पीछे घुमा कर के प्रतिबिंब स्पष्ट किया जाता है अर्थात् फोकस करने में वस्तु तथा ताल के बीच की दूरी को घटा बढ़ा देते हैं। आँख की संविधान क्षमता (Power of accommodation) के कारण उससे दूर की तथा निकट की वस्तुएँ दिखाई दे जाती हैं।

हम किस तरह देखते हैं ?—आँख पर पड़ने वाला प्रकाश मुख्यतः नेत्र काँच (crystalline lens) द्वारा कृष्ण पटल पर केन्द्रित होता है पर किरीट (cornea) ताल के सामने का तरल रस (aqueous humour) तथा पीछे का सांद्ररस भी केन्द्रित करने में थोड़ा-सा भाग लेते हैं। प्रकाश के ठीक तरह केन्द्रित हो जाने पर वस्तु का उलटा प्रतिविम्ब ठीक कृष्ण पटल पर पड़ता है। कृष्ण पटल की दण्डिकाएँ तथा शंकु प्रकाश द्वारा उत्तेजित होते हैं। ये दृष्टिनाड़ी तक चालू रहते हैं। दृष्टिनाड़ी इस संवेग (impulse) को मस्तिष्क में ले जाती है, जहाँ पर चाक्षुप संवेदन (visual sensations) उत्पन्न होते हैं।
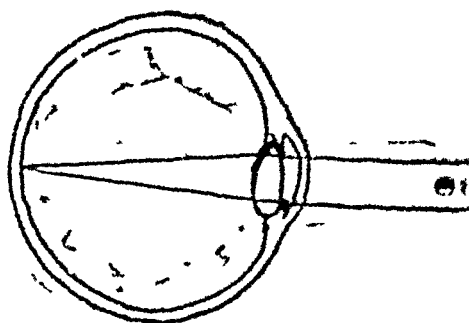
चित्र संख्या ५१—स्वाभाविक आँख प्रतिविम्ब कृष्णपटल पर केन्द्रित है

अच्छी आँख में प्रकाश की सारी रश्मियाँ ठीक कृष्ण पटल (retina) पर केन्द्रित होती है और इसीलिए हम स्पष्ट तौर पर वस्तुओं को देखते हैं। (चित्र संख्या ५१)
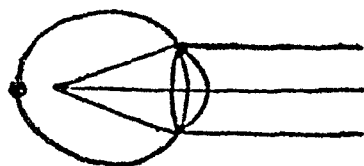
(ए) निकट दृष्टि—प्रतिबिंब कृष्ण पटल के आगे बनता है।

लेकिन तब ऐसा नहीं होता जब किसी आदमी की आँखें चपटी और छोटी या बड़ी और उभरी हुई होती हैं। ऐसा होने

[बी] दूर दृष्टि-प्रतिबिंब कृष्ण पटल के पीछे बनता है

पर प्रकाश का किरण पुञ्ज (beam) वर्त्तन (refraction) के बाद या तो कृष्ण पटल के आगे या उसके पीछे किसी विन्दु पर संस्तृत (converge) होता है। इससे साफ (चित्र संख्या ५२ निकट दृष्टि तथा दूर दृष्टि) तसवीर नहीं बन पाती। फलस्वरूप अस्पष्ट प्रतिबिम्ब बनता है।
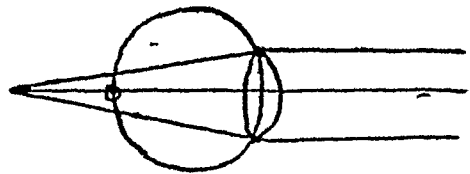
यदि आँख बड़ी या बहुत उभरी हुई है तो रश्मियाँ कृष्ण पटल के सामने केन्द्रित होती हैं। दृष्टि की यह खराबी 'निकट दृष्टि' कहलाती है।

यदि आँख बहुत छोटी और चपटी है तो प्रकाश रश्मियाँ कृष्ण पटल के पीछे केन्द्रित होती हैं। यह खराबी 'दूरदृष्टि' है।

A

C

B
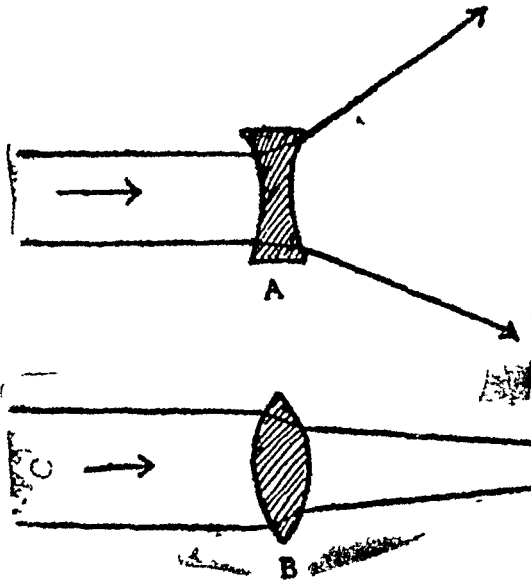
(ए) नतोदर ताल (concave lens) प्रकाश रश्मियों को अपस्तृत (diverge) करता है।
(बी) उन्नतोदर ताल (convex lens) उन्हें संस्तृत (converge) करता है।

चित्र संख्या ५३

अगर खराब आँख के आगे एक दूसरा ऐसा ताल रख दिया जाता है जो निकट दृष्टि वाले व्यक्तियों के लिए प्रकाश रश्मियों को थोड़ा अपसृत करे (नतोदर ताल) और दूरदृष्टि वाले व्यक्तियों की हालत में इन्हें संसृत करे (उन्नतोदर ताल) तो ये रश्मियाँ कृष्णपटल पर केन्द्रित होंगी और खराब आँख भी अच्छी आँख की तरह काम करेगी और स्पष्ट तौर पर देख सकेगी।
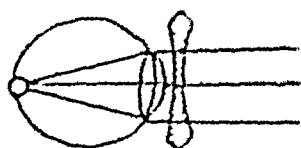
चश्मों द्वारा अच्छी की गई निकट तथा दूरदृष्टि
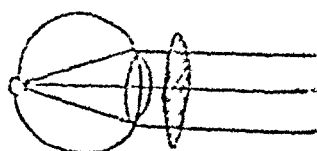
चित्र संख्या ५.४

सारांश

ज्ञानेन्द्रियाँ मस्तिष्क नाड़ियों के विशेपता प्राप्त बदले हुये विकार हैं। वह ज्ञान प्राप्त करती हैं। ज्ञान उन्हें दृष्टि, श्रवण, स्वाद, घ्राण तथा स्पर्श द्वारा प्राप्त होता है।

आँख के तीन परत हैं। श्वेत पटल उसकी रक्षा करती है। मध्य पटल आँख-कोठरी को अंधकार मय तथा उसका पोषण करता है। कृष्ण पटल प्रकाश को ग्रहण करता है। उपतारा तारे को अंधकार में बड़ा तथा प्रकाश में छोटा बनाता है। कोर्निया लैंस तथा दोनों द्रव प्रकाश रश्मियोंको कृष्ण पटल पर केन्द्रित करते हैं।

फोकसिंग कैमरे की भाँति ही होता है, इसमें ताल की वक्रता भी कुछ बदली जा सकती है जिससे आँख दूर तथा निकट की वस्तुओं को देख सकती है।

आँख पर पड़ने वाला प्रकाश कृष्णपटल में दृष्टि नाड़ी के कोषों पर पड़ता है। दृष्टि नाड़ी इन संवेदों को मस्तिष्क में ले जाती है।

दृष्टि की आम त्रुटियाँ-निकट दृष्टि व दूर दृष्टि ऐनक द्वारा

ठीक की जाती हैं। दूर दृष्टि उन्नतोदर ताल और निकट दृष्टि नतोदर ताल द्वारा ठीक जाती है।

कान—कान वह अवयव है जो ध्वनि लहरों को एकत्र करता है और उन्हे वात संवेगों (nervous impulses) में परिणत करता है। ये संवेग मस्तिष्क को भेज दिये जाते हैं।

कान तीन भागों में विभाजित किया गया है:—बाह्यकर्ण, मध्यकर्ण तथा आभ्यन्तर कर्ण।

बाह्यकर्ण में चमड़ी से ढकी हुई कार्टिलेज की एक पट्टिका होती है। इसे कर्णशष्कुली (pinna) कहते हैं। इसका आकार शङ्ख जैसा होता है। यहाँ से कठ कर्णनली (auditory canal) शुरू होती है। यह लगभग सवा इञ्च लम्बी एक नली है। इस पर चमड़ी की पतली परत का एक अस्तर लगा होता है और इस में कान का मोम बनाने वाली ग्रन्थियाँ होती हैं। यह नली महीन केशों से ढकी रहती है। ये केश धूल के कणों तथा कीड़ों को नली के अन्दर जाने से रोकते हैं। इसका भीतरी सिरा एक पतली वृत्ताकार झिल्ली से जिसे कर्णपटल (tympanic membrane) कहते हैं बन्द रहता है। यह पटल मध्यकर्ण को बाह्य कर्ण से अलग करता है।

मध्य तथा आभ्यन्तर कर्ण खोपड़ी के तले की संखास्थि (temporal bone) से खूब मजबूती से सुरक्षित रहते हैं।

मध्यकर्ण वाह्यकर्ण से कर्णपटल और आभ्यन्तर कर्ण से दो छिद्रों द्वारा अलग होता है। इसकी भीतरी दीवार में एक अण्डे की आकृति का (Fenestra ovalis) और दूसरा गोलाकार (Fenestra Rotunda) ये दो छिद्र होते हैं। इसके पश्चात् आभ्यन्तर कर्ण होता है। मध्यकर्ण को तीन छोटी हड्डियों की एक शृङ्खला पटल को इस झिल्ली से जोड़ती है। ये तीन हड्डियाँ अपनी आकृति के कारण मुग्दर (hammer

या malleus) नेहाई (anvil या incus) तथा रकाब (stirrup या stapes) कहलाती हैं।
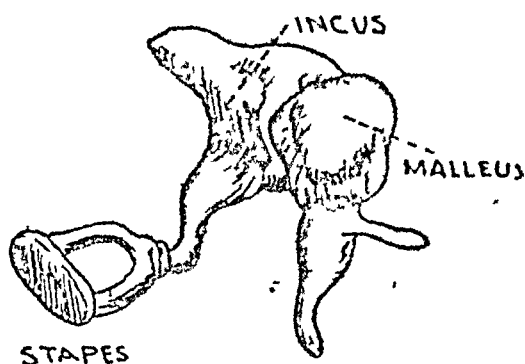
चित्र संख्या ५५—मध्यकर्ण की हड्डियाँ

मध्यकर्ण की भीतरी तथा नीचे की तरफ एक तंग नली है जो कंठकर्णनाली (Eustachian tube) कहलाती है। वह मुखकंठ (pharynx) तक जाती है। इस तरह मध्यकर्ण का गर्त बाहर की तरफ मिलता है और कर्ण पटल के दोनों तरफ का दबाव कंपनों के परिमाण को नियन्त्रित करने के लिए बराबर कर दिया जाता है।

अभ्यान्तर कर्ण—इसकी रचना बड़ी उलझी हुई है और अपनी पेचदार शकल के कारण 'गहन' (labyrinth) कहलाता है। हड्डी के बने गहन के भीतर की ओर एक बंद झिल्लीकी बनी थैली होती है जो एक साफ तरल पदार्थ से भरी रहती है। इस तरल पदार्थ को एन्डोलिम्फ (endolymph) कहते है।

गहन के तीन भाग होते हैं (१) कर्णकुटी (vestibule) (२) कोकलिया (cochlea) और (३) अर्धवृत्ताकार नालियाँ (semi circular canals) कर्णकुटी बीच में है। यह सामने कोकलिया से तथा पीछे अर्धवृताकार नालियां से जुड़ी रहती

है। रकाब अस्थि का पैर-रकाब (foot plate) कर्णकुटी की अंडाकार खिड़की में ठीक बैठता है।

कोकलिया एक छोटे घोंघे के आवरण की तरह होता है। श्रवण नाड़ी (auditory nerve) इसमें आकर समाप्त होती है। कोकलिया मध्यकर्ण से एक गोल खिड़की, कोकलिया द्वार (Fenestra rotunda) से मिला रहता है। इस पर एक झिल्ली चढ़ी होती है।

तीन अर्धवृत्ताकार नालियाँ तीन विभिन्न समतलों में सजी
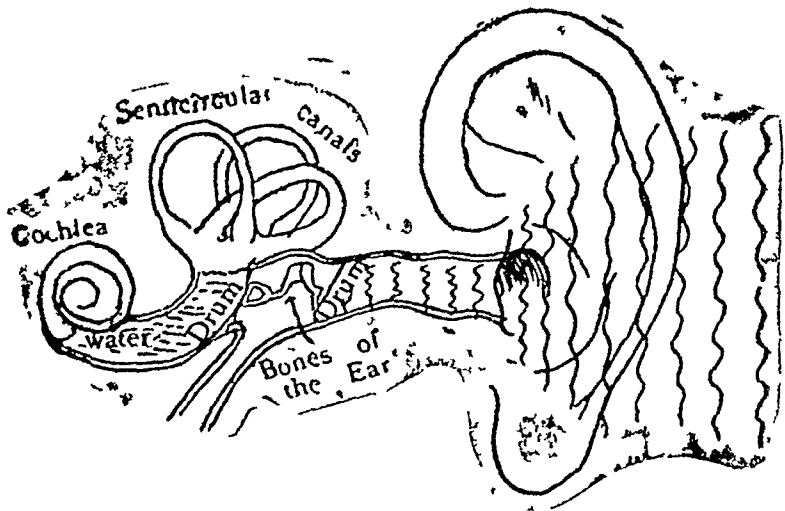
चित्र संख्या ५६—सुनने की क्रिया

होती हैं, और यह कर्ण.कुटी से जुड़ी होती हैं। श्रवण नाड़ी की एक शाखा इनमें से प्रत्येक नाली के एक सिरे तक फैली होती है। इनका काम शरीर के साम्य को बनाये रखना है। वे शरीर की प्रत्येक गति का लेखा रखती हैं और हमें अपनी स्थिति का ज्ञान कराती हैं।

सुनने की *क्रिया*—हरेक प्रकार की ध्वनि हवा में कंपन पैदा करती है जिससे उसमें लहरें बन जाती हैं। ये लहरें बाह्यकर्ण

में से जाती हैं। बाह्यकर्ण केवल उन्हें लेने और इकट्ठा करने का काम करता है। वे वहाँ से श्रवणनाली को प्रेरित की जाती हैं। वे वहाँ जाकर कर्णपटल से टकराती हैं और सारे यन्त्र को पटल, तीनों हड्डियों, फेनेस्ट्रा ओवेलिस, कोकलिया द्वारा, कोकलिया के भीतर तरलपदार्थ को गतिशील बना देती हैं। यहाँ से कंपन नाड़ियों के सिरों को भेजे जाते हैं। संवेग मस्तिष्क को ले जाया जाता है जहाँ पर यह ध्वनि संवेदन उत्पन्न करता है।

सारांश

कान के तीन भाग होते हैं:—

(१) वाह्यकर्ण, (२) मध्यकर्ण, (३) आभ्यन्तर कर्ण। बाह्यकर्ण में एक पट्टिका होती है और कराट कर्णनली मध्यकरण में तीन छोटी हड्डियाँ होती हैं जो बाहर की तरफ कर्ण पटल से जुड़ती हैं और अन्दर की तरफ गोल खिड़की से। आभ्यन्तर कर्ण एक झिल्ली का गहन है जो अस्थि गहन के भीतर होता है। गहन के तीन भाग होते हैं।

१. कर्णकुटी, कोकलिया, तीन अर्धवृत्ताकार नलियों।

वाहरी कर्ण, ध्वनि लहरों को एकत्रित करता है और वह परदे पर टकराती हैं। यह कम्पन कान के सारे अंगों में फैल जाती है तथा परदे तीनों अस्थियों और गोल व अण्डाकार खिड़कियों, द्रव्य पदार्थों से होती हुई श्रवण नली तक पहुँच जाती है। यह सवे इस नाड़ी द्वारा मस्तिष्क को पहुँचता है।

स्वादेन्द्रिय—जीभ की ऊपरी सतह पर की जिह्वा झिल्ली में होती है। इस पर आवृत्त झिल्ली खुरदरी है तथा उसमें से कई प्रवर्द्धन जिन्हें पैपिला कहते हैं, निकलते हैं। स्वाद नाड़ियाँ इन प्रवर्द्धनों तक आती हैं। इन प्रवर्द्धनों में कोषों का एक संग्रह होता है। ये स्वादकोष कहलाती हैं।

मस्तिष्क नाड़ियों का पाँचवाँ तथा नवाँ जोड़ा स्वाद कोषों तक पहुँचता है। स्वादकोष घुले हुए पदार्थों द्वारा उत्तेजित किये

जाते हैं और यह संवेदन वात संवेगो में परिवर्त्तित किया जाकर मस्तिष्क को पहुँचाया जाता है।
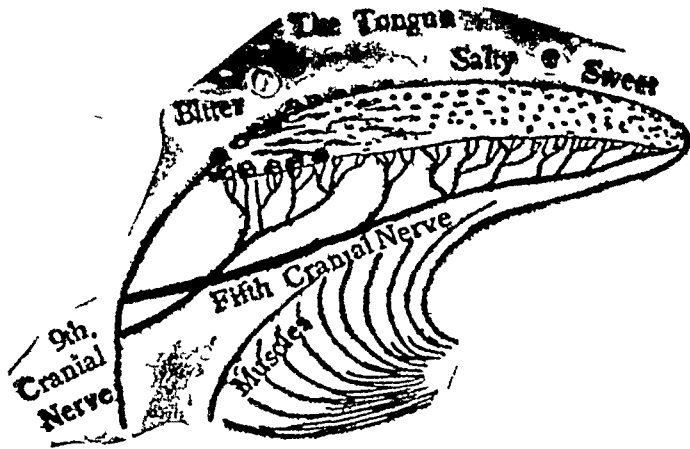
चित्र संख्या ५७—स्वादेन्द्रिय जिह्वा

वास्तव में केवल चार तरह का स्वाद होता है जो मुँह में मालूम किया जाता है। यह मीठा, खारा, खट्टा और नमकीन होता है। जीभ का पिछला भाग खारे पदार्थों का सबसे अच्छी तरह स्वाद ले सकता है। इसके आगे का तथा बीच का भाग मीठे तथा नमकीन स्वाद के लिए अधिक उपयुक्त है। दूसरे सारे स्वाद इन चार मूल स्वादों के मिश्रण मात्र हैं। बहुत बार स्वाद की अनुभूति बहुतसे पदार्थोंद्वारा प्राप्त गंध के कारण गंध की अनुभूति से मिली रहती है।
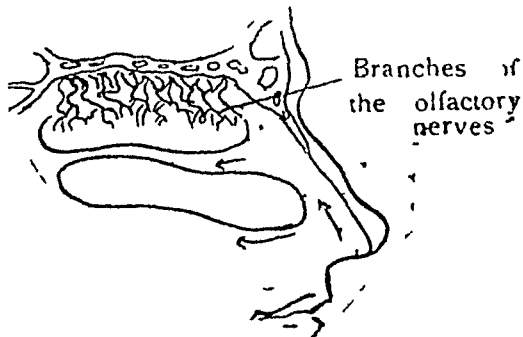
चित्र संख्या ५८—नाक का परिच्छेद—इसमें घ्राण नाड़ी की शाखाएँ दिखाई गई हैं।

घ्राणेन्द्रिय—सूँघने की इन्द्रिय

नाक है। नाक का केवल दशांश ऊपरी भाग सूंघने का काम करता है बाकी नौ अंश सांस लेने का काम करते हैं। इनका सूँघने से कोई सम्बन्ध नहीं है।

नाक के वायु मार्ग के सिरे पर एक गहरी पीली झिल्ली होती है जिसमें घ्राण नाड़ी (olfactory nerve) की झर्झरास्थि (ethmoid bone) में से जिसमें कई छलनी सरीखे छिद्र होते हैं, बहुत सी महीन शाखायें निकलती हैं। घ्राण नाड़ी के अन्त के सिरो पर विशिष्ट कोष होते हैं जो बहुत ज्यादा फैल जाते हैं ये घ्राण कोष कहलाते है। ये गंधमय कणों के लिए जो उनके सम्पर्क में आते हैं, बहुत चेतन होते हैं। नाड़ी के ये सिरे संवेगों को मस्तिष्क में भेजते हैं।

इन कोषों को उन भाप के अणुओं से ही जो ऊपर उठते हैं तथा उनके सम्पर्क में आते हैं उत्तेजन मिलता है। कुछ पदार्थों से गंधमय भाप के बहुत महीन कण बनते हैं और केवल यही पदार्थ जो भाप बन जाते हैं गंधमय होते हैं।

श्लैष्मिक कला (mucous membrane) सर्दी लग जाने पर सूज जाती है और भाप को ऊपर जाने तथा घ्राण नाड़ी के सिरो के सम्पर्क में आने से रोकती है। इसलिए ज़ुकाम होने पर हमारी घ्राण शक्ति मारी जाती है।

स्पर्शेन्द्रिय—चमडी की सारी सतह पर नाड़ियों के सिरों पर लाखो छितरी हुई छोटी गाँठे होती हैं। नाड़ियो के ये सिरे सौषुम्न नाड़ियों से जुड़े रहते है। सारी चमड़ी पर फैली हुई इन छोटी गाँठो में स्पर्शानुभूति रहती है।

इन छोटी गाँठो को खास काम करना पड़ता है। ये सब गर्मी, सर्दी, दर्द या स्पर्श की सम्वेदनाएं अनुभव नहीं कर
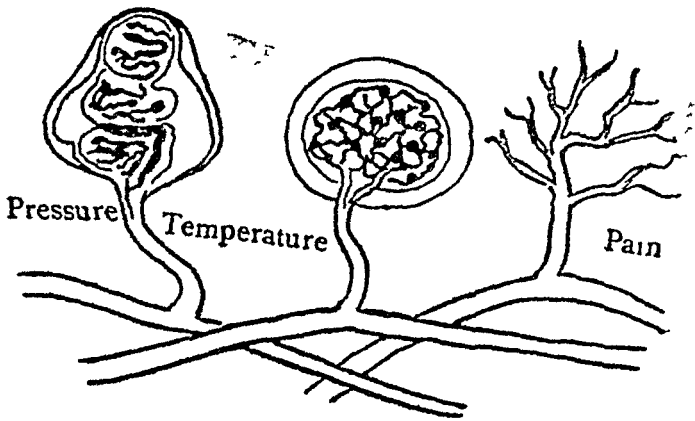
चित्र संख्या ५६—चमड़ी के स्पर्श-अवयव (बढ़ाये हुये)

सकतीं। हरेक गाँठ एक ही तरह की संवेदना से उत्तेजित की जा सकती है।

इस तरह केवल कुछ विंदु शीत की संवेदना का अनुभव कर सकते हैं। गर्मी के लिये अलग विंदु हैं। दूसरे दर्द तथा बाकी दबाव का अनुभव करते हैं। बहुत सारे प्रभाव कई सारे ऐसे विंदुओं द्वारा अनुभूत संवेदनाओं के मिलने के परिणाम हैं। ऐसे विंदु एक दूसरे के काफी निकट होते हैं।

चमड़ी के कुछ भाग दूसरों की अपेक्षा अधिक सांवेदनिक हैं। चमड़ी के किसी भाग की संवेदनशीलता एक साथ कंपास के जोड़े के दोनों सिरों को मालूम करने की योग्यता से मालूम की जाती है। चर्म के कुछ भाग यथा जीभ के आगे का भाग दोनों सिरों को स्पष्ट तौर पर मालूम कर लेते हैं यदि उनकी दूरी केवल १/२० इंच हो। ओठों का सिरा तब दूसरी संवेदना प्रदान करता है जब दो सिरे आपस में १/१२ इंच दूर हों। गालों पर सिरे एक इंच की दूरी पर और पीठ के बीच में लगभग तीन इंच की दूरी पर होने से दुहरी संवेदना मालूम की जा सकती है।

चमड़ी वस्तुओं के शुद्ध तापक्रम की अच्छी निर्णायिका नहीं है। यह पदार्थों के सापेक्ष तापक्रम का केवल अंदाज बतलाती है। अगर आप अपने एक हाथ की उंगली को ठंडे पानी में और दूसरे हाथ की उंगली को गर्म पानी में डालें और फिर उन दोनों को गुनगुने पानी में रखें तो वही पानी एक को गर्म और दूसरी को ठंडा मालूम होगा।

गाल, पलकें और कुहनियाँ गर्मी की सर्वाधिक संवेदनशील होती हैं।

जीभ, ओंठ तथा उंगलियों की आंतरिक सतह स्पर्शज्ञान की सर्वाधिक संवेदनशील है।

चमड़ी की नाड़ी के आखिरी सिरों पर अनुभूत प्रत्येक संवेदना नाड़ियों द्वारा मस्तिष्क को ले जाई जाती है।

सारांश

जीभ स्वादेन्द्रिय है। इसकी ऊपरी सतह खुरदरी और उभरी हुई होती है। उभरी हुई सतह को पेपीला कहते हैं। यह स्वाद कोप होते हैं। स्वाद चार तरह के होते हैं। मीठा, खट्टा, खारा और नमकीन। स्वाद कोप केवल घुले हुये पदार्थों द्वारा ही उत्तेजित किये जाते हैं।

सूँघने की इन्द्रिय नाक है। घ्राण नाड़ी से महीन शाखा निकलती है, जो नाक के ऊपरी भाग में फैल जाती हैं। नाड़ी के यह सिरे गन्धयुक्त कणों से उत्तेजित होते हैं।

चमड़ी की सारी सतह पर सुषुम्न नाड़ियों के सिरे होते हैं। जो गर्मी, सर्दी, दर्द या स्पर्श की संवेदना नाड़ी द्वारा मस्तिष्क को पहुँचाते हैं। चमड़ी के कुछ भाग दूसरों की अपेक्षा अधिक साम्वेदिक होते हैं।

प्रश्न

१—आँख की बनावट तथा दृष्टि क्रिया का वर्णन कीजिये।

२—दृष्टि के साधारण दोष क्या हैं और वे किस तरह ठीक किये जाते हैं ?

३—कान की बनावट तथा श्रवण क्रिया का वर्णन कीजिये।

४—रसनेन्द्रिय तथा घ्राणेन्द्रिय के काम को समझाकर लिखिये।

५—स्पर्शेन्द्रिय पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

अध्याय १३

प्रणालीविहीन ग्रन्थि-संस्थान (Endocrine System)

प्रणालीयुक्त एवं प्रणालीविहीन ग्रंथियाँ—हम कई सारी ग्रंथियों को देख चुके हैं जो कई पदार्थों को बनातीं या रक्त से निचोड़ती हैं और अपने रस या मल को नली द्वारा बाहर डालती हैं। लाला ग्रंथियां (Salivory glands) और आमाशय तथा अंतड़ियों की ग्रन्थियाँ अपने रसों को छोटी नलियों से अन्नमार्ग में डालती हैं। क्लोम (pancreas), पित्ताशय के (देखिये चित्र संख्या २४) अन्नमार्ग में अपना रस भेजने के लिए खुद की नालियाँ होती है। स्वेद ग्रन्थियाँ (देखिये चित्र संख्या ३६), अश्रु ग्रंथियां (देखिये चित्र संख्या ४७) और स्तन ग्रंथियां अपने रस को शरीर की सतह पर अपनी नलियों द्वारा निकालते हैं। गुर्दों में भी मूत्र को ले जाने के लिए नालियाँ होती हैं (देखिये चित्र संख्या ३७)। ऐसी ग्रन्थियां बाह्य रसोत्पादक ग्रंथियां या प्रणाणीयुक्त ग्रंथियां कहलाती हैं।

शरीर में बहुत से ऐसे अवयव हैं जो स्पष्टतः ग्रंथि वाले हैं पर जिनके रस किसी नाली द्वारा बाहर नहीं निकाले जाते। अभी तक उनके काम का कुछ पता नहीं चला था। क्योंकि उनके रस प्रणालीयुक्त ग्रंथियों के रस की तरह एकत्र नहीं किये जा

सकते थे। इन ग्रंथियो का बाहर की ओर कोई द्वार नही होता था। इन अवयवों की रक्तवाहिनियां में होकर इनके रस सीधे रक्त में चले जाते हैं और इस तरह शरीर के विभिन्न तंतुओं में जिनपर इनकी क्रिया होती है लेजाये जाते हैं। ये ग्रंथियाँ आंतरिक रसोत्पादक ग्रथियाँ या प्रणाली विहीन ग्रंथियाँ कहलाती हैं।

ये शरीर तथा मन दोनो के क्षेम के लिए आवश्यक हैं क्योकि इनसे विभिन्न संस्थानो का परस्पर ठीक तरह समायोजन होता है। इन ग्रंथियों के रस दूर के अवयवो को उत्तेजित करके उन्हे कार्यशील वनाते हैं। वह आंतरिक रस जो शरीर के तन्तु द्वारा बनता है और रक्तधारा में मिलता है तथा किसी दूसरे तन्तु या अवयव को उत्तेजित करता है हारमोन (Hormone) कहलाता है। ज्योही खाना पक्वाशय में प्रविष्ट होता है, पक्वाशय के कुछ कोष सिक्रीटोन (Secreton) नामका एक हारमोन बनाते हैं। यह क्लोम को जाता है और उसे उत्तेजित करके क्लोम रस का निर्माण करवाता है। हारमोन शरीर की वृद्धि तथा आकार का नियंत्रण करते हैं। वे स्वभाव (temperament) का भी नियंत्रण करते हैं। लैंगिक विकास तथा गौण लैंगिक गुणों के विकास का नियंत्रण करते हैं।

गत कई दशाब्दियो मे इन ग्रंथियो के रसों के काम के ज्ञान का विस्तार काफी बढ गया है। प्रणाली विहीन ग्रथि संस्थान में निम्न लिखित प्रणाली विहीन ग्रंथियाँ होती हैं:—

१—पिनियल (Pineal)

२—पिच्युइटरी (Pituitary)

३—थायरोयड (Thyroid)

४—पैरा थायरोयड (Para Thyroid)

५—थाइमस (Thymus)

६—एड्रिनल (Adrenals)

७—लैंगरहैंस के आइलेट (Islets of Langerhans)
८—प्रजनन ग्रंथियाँ (gonads)
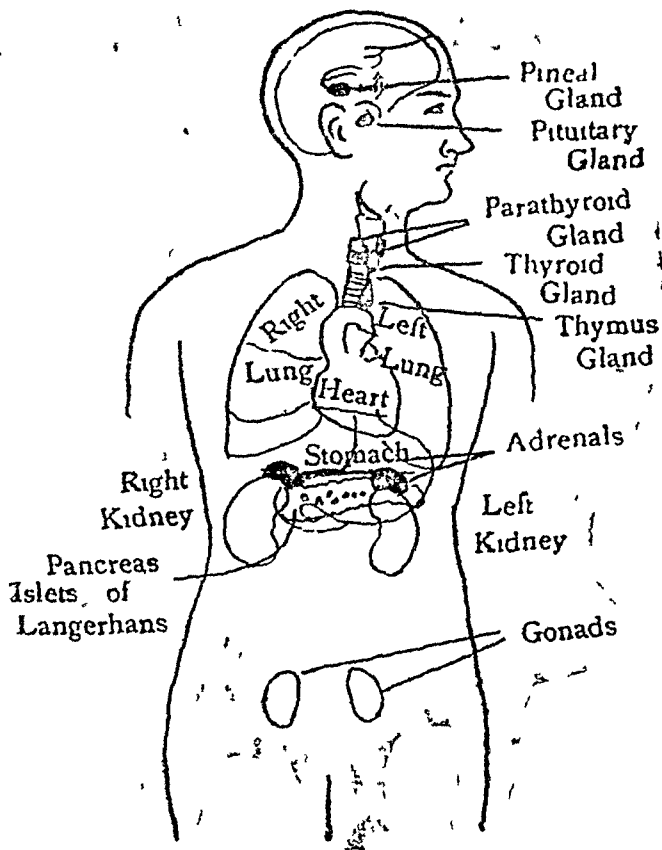
चित्र संख्या ६०—प्रणाली विहीन ग्रंथियों की स्थिति।

(१) *पिनियल*—एक छोटी ग्रंथि है जो मस्तिष्क के पिछले भाग में लघु मस्तिष्क के पास गहरी स्थित है। आकार में यह गिल्टीदार होती है। इसके क्या काम हैं इसका यथोचित अध्ययन नहीं किया गया है। यह ख्याल किया जाता है कि यह गौण लैंगिक विशेषताओं को यानी उन विशेषताओं को जो स्त्री-

पुरुषों के बाहरी आकृति में अन्तर प्रकट करती है—पुरुषों में
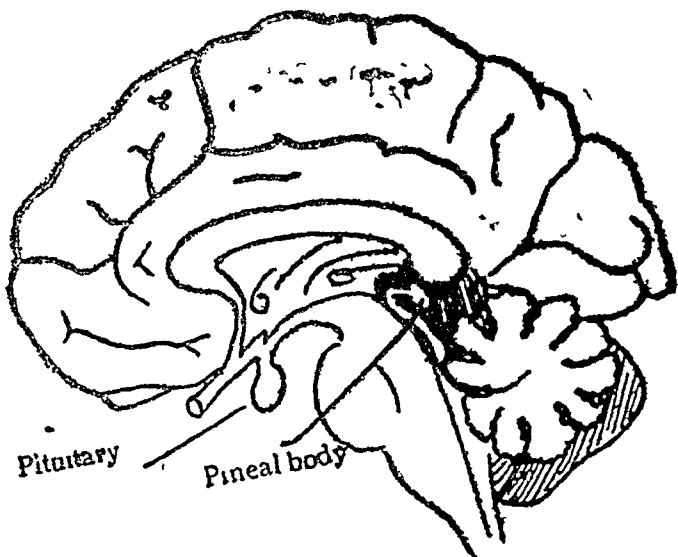
चित्र संख्या ६१—पिनियल तथा पिच्युइटरी ग्रंथियाँ

दाढ़ी तथा मूँछ का होना और स्त्रियों में उनका न होना और नर तथा मादा के स्वर का अन्तर ठीक रखने के लिये जिम्मेवार है।

(२) पिच्युइटरी—ग्रंथि एक छोटीसी ग्रंथि है जो तोल में लगभग एक आउंस के आठवें भाग के बराबर है। यह मस्तिष्क के मूल में जतूकास्थि (sphenoid bone) के एक खोखले भाग में स्थित है। यह दो स्पष्ट पिंडों से मिलकर बनी है। इनमें से हरेक अलग एक हारमोन पैदा करती है। सामने के पिंड का रस शरीर की साधारण व अस्थिसम्बन्धी वृद्धि तथा विकास को ठीक रखता है। यह लैंगिक अवयवों के विकास का भी नियन्त्रण करता है।

अगर रस कम बनता है तो हड्डियों का विकास रुक जाता है। फलतः आदमी बौना बन जाता है। इससे मानसिक तथा

लैंगिक विकास भी कम होता है।

मगर यदि सामने के भाग का रसोत्पादन बालिग होने के बाद अत्यधिक होता है तो हाथ, पैर, नाक और हड्डी बहुत ज़्यादा विकसित हो जाती है। बचपन में इस ग्रंथि की अधिक क्रियाशीलता से हड्डियों की वृद्धि बढ़ जाती है और लैंगिक विकास भी ज़्यादा होता है। पिछले भाग का हारमोन रक्त शर्करा, रक्त दाब तथा अन्तड़ियों की गति का नियंत्रण करता है। यह व्यक्ति द्वारा निकाले गये मूत्र के परिमाण को ठीक रखने में भी सहायता प्रदान करता है।

यदि यह हारमोन कम हो तो शर्करा का आोषदीकरण के लिए ठीक उपयोग नहीं हो पाता। वह वसा में परिणत हो जाती है। इससे आदमी मोटा हो जाता है। उसको अत्यधिक भूख, विशेषतः मीठी चीज़ों के लिए, लगती है। वह सुस्त बन जाता है।

इन कामों के अलावा यह कई दूसरी प्रणाली विहीन ग्रंथियों थायरोइड, एड्रीनल एवं प्रजनन ग्रंथियों पर असर डालती है। इससे विभिन्न अवयवों में अपने कामों को ठीक तरह चलाने में अनुकूल सहयोग प्राप्त होता है। पन्द्रह साल की आयु तक बढ़ती वेग से होती है। इसके बाद वह धीरे-धीरे धीमी पड़ जाती है और साथ ही लैंगिक अवयवो का विकास होने लगता है। इन ग्रंथियों के परस्पर कार्य से यह निश्चय हो जाता है कि लैंगिक विकाल बहुत जल्दी न हो और वृद्धि बहुत पहिले रुक जाय या वह बहुत अरसे तक होती रहे और लैंगिक विकास में देरी हो जाय। औरतें इसलिए छोटी होती हैं क्योंकि उनमें तरुणाई पुरुषों की अपेक्षा पहले आ जाती है।

इसे प्रणाली विहीन ग्रंथि संस्थान की ग्रंथि-स्वामिनी ठीक ही कहते हैं।

(३) *थायरोइड ग्रंथि* में अंडाकार पदार्थ का एक जोड़ा होता

है जो गर्दन के सामने एड्म की एपिल के हरेक पार्श्व में एक स्थित है। उनके रस में थोड़ा-सा आयडिन (iodine) होता है। व्यक्ति के क्षेम के लिए यह हारमोन आवश्यक है। यह मेटाबोलिज्म तथा शरीर की बढ़ती को उत्तेजित करता है।

इस हारमोन की कमी से सुस्ती आती है तथा पूरा विकास नहीं हो पाता। बच्चे की बढ़ती रुक जाती है और उसका शरीर ठिगना हो जाता है। उसका सिर एवं चहरे की आकृति बिगड़ जाती है। उसकी बुद्धि भी कम होती है और वह मूर्ख की तरह मालूम होता है। यह हम जानते हैं कि मेंढ़क के अंडे से टेडपोल (tadpole) बनते हैं। ये टेडपोल बाद में मेंढक में परिवर्तित होते हैं। यदि टेडपोल की थायरोइड ग्रंथि हटाली जाय तो वह जीवन पर्यंत टेडपोल ही बना रहेगा और बढ़ कर मेंढक नहीं बनेगा। मगर यदि थायरोइड ग्रंथि का सत टेडपोल में प्रविष्ट करा दिया जाय तो वह बहुत शीघ्र विकसित होकर मेंढक बन जायगा। ग्रंथि से उत्पन्न रस को तैयार करने के लिए आयडीन जरूरी है। उन देशो में जहाँ की जमीन में आयडीन का अभाव होता है यह रस यथेष्ट परिमाण में नही बन पाता। फलतः वहाँ व्यक्तियों को घेघा रोग हो जाता है। घेंघा ग्रंथियों के आकार में अस्वाभाविक वृद्धि के कारण होता है।
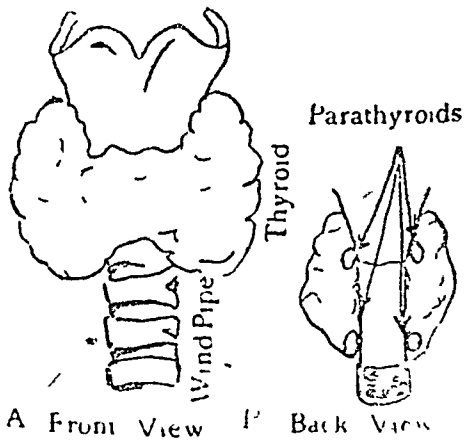
चित्र संख्या ६२—थायरोइड ग्रंथि

इस रोग को आयडीन या इस हारमोन के सत जो साधारणतः

भेड़ की ग्रंथि से प्राप्त किया जाता है, देने से रोका जा सकता है। थायरोइड के सत को थोड़े परिमाण में देने पर शरीर की विशेषतः ठिगने बच्चों की वृद्धि तथा मेटाबोलिज्म में सहायता प्राप्त होती है।

यदि थायरोइड ग्रन्थि अधिक क्रियाशील होती है जो शरीर में केटाबोलिज्म या कर्वोदेतों का उपयोग बहुत तीव्र गति से होता है। इससे वजन कम हो जाता है और कुछ अवस्थाओं में मृत्यु तक हो जाती है।

(४) पैरा *थायरोइड ग्रन्थियाँ*—छोटी अंडाकार ग्रन्थियों के दो जोड़े हैं। प्रत्येक पाव इंच लम्बी होती है। वे थायरोइड के निकट स्थित हैं। (देखिये चित्र संख्या ६२ (बी) पर रचना तथा काम में इससे नहीं मिलती।

पैरा थायरोइड ग्रंथियाँ केलसियम के मेटाबोलिज्म के नियंत्रण का काम करती हैं। एक व्यक्ति के पैराथायरोड निकाल दी गईं। पाँच या छः दिनों में रक्त में केलसियम की कमी पाई गई। माँस पेशियों की उग्र मरोड़न ने रोगी पर आक्रमण किया। इसके कुछ देर बाद उसकी मृत्यु होगई। केलसियम की सुइयाँ लेने से हालत सुधर जाती है। इस अवस्था को टिटैनी (titany) कहते हैं। इसमें माँस पेशियों में अचानक अनैच्छिक सिकुड़न तथा ऐंठन हो जाती है। यदि ग्रंथियाँ अधिक क्रियाशील हुईं तो खून में केलसियम का परिमाण बढ़ जाता है और वह संस्थान मन्द पड़ जाता तथा माँसपेशियों में कमजोरी आजाती है, आमाशय और अन्तड़ियों से खून निकलने लगता है। कुछ दिनों में मृत्यु आ घेरती है।

(५) *थाइमस* एक श्वेत तन्तु की बड़ी ग्रंथि है जो अंशतः छाती में होती है। बचपन में यह ग्रन्थि क्रियाशील (active) होती है पर चौदह तथा पंद्रह वर्ष की आयु में सिमटने लगती है

उसके बाद पिघल जाती है।

ऐसा मालूम होता है कि इसका लैंगिक वृद्धि (sexual growth) से कुछ संबंध है। यह उसे तब तक अटका रखती है जब तक यथेष्ट शारीरिक वृद्धि नहीं हो जाती। थाइमस के निकाल देने से लैंगिक विकास जल्दी हो जाता है।

अस्वाभाविक अवस्थाओं में थाइमस ग्रंथि बाजिरा व्यक्तियों में बनी रहती है। ऐसे व्यक्तियों का शरीर दुबला होता है, मानसिक बुद्धि कम होती है, और संवेदना-नाशक (अचेतन बनानेवाला) पदार्थ दिये जाने पर अज्ञात कारण से मृत्यु हो जाती है।
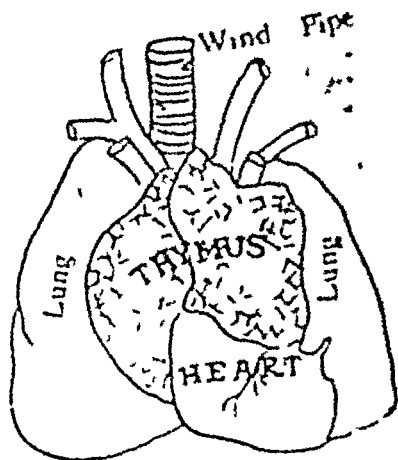
चित्र संख्या ६३—थाइमस

(६) एड्रिनल या उपवृक्क (supra renal glands) दो छोटे पिंड हैं जो ठीक गुर्दों के ऊपर होते हैं। उनके रस के काम ये हैं:—

१—रक्त के बहाव को ठीक रखना।

२—द्राक्ष शर्करा या शर्करा के परिमाण को ठीक रखना।

३—रक्तदाब को ठीक बनाये रखना।

४—थकावट को दूर करना।

५—पिच्युइटरी के सहयोग से लैंगिक विकास को प्रभावित करना।

इन ग्रंथियों का आंतरिक रस एड्रीनेलीन कहलाता है। एड्री-नेलीन विशेषतः खतरे के उपस्थित होने पर कई अवयवों को

उत्तेजित करके उन्हे अधिक कार्यशील बना देता है। आकस्मिक आवश्यकता के समय ये ग्रंथियाँ ज्यादा काम करने लगती हैं। इनमें अधिक रसोत्पादन होने से दिल की धड़कन बढ़ जाती है। ग्लायकोजन (glycogen) द्राक्ष शर्करा या रक्त शर्करा में परिणत हो जाता है ताकि वह माँस पेशियों के इंधन के काम आ सके। चमड़ी की ग्रंथियों भी उत्तेजित हो जाती हैं जिससे पसीना अधिक आने लगता है। यह शरीर को ठंडा रखता है। केश खड़े हो जाते हैं। इस तरह आदमी लड़ने या भागने के लिए तैयार हो जाता है। आँखें निकल आने तथा पुतलियों चौड़ी हो जाने से उसकी आकृति डरावनी हो जाती है।

(७) लेङ्गर हेंस के आइलेट—छोटे कोष हैं जो सारे क्लोम में बंटे हुए हैं (देखिये चित्र संख्या ६०)। ये कोष प्रणालीविहीन ग्रंथियों की तरह काम करते हैं और एक पदार्थ बनाते हैं जिसे इंसुलिन (insulin) कहते हैं। यह द्राक्ष शर्करा के द्वारा शोषण में सहायक होता है और द्राक्ष शर्करा को यकृत तथा मांसपेशियो में एकत्र करने में सहायक होता है। और जरूरत पड़ने पर रक्त में चले जाने में भी सहायक होता है।

यदि आइलेटो का रस काफी नहीं होता तो रक्त में शर्करा का परिमाण बहुत हो जाता है क्योंकि इसके अभाव में तंतु इसे नहीं जला पाते तथा उपयोग में नही ला सकते। इस रोगीली हालत को मधुमेह कहते हैं। शर्करा का उपयोग नहीं होता। तंतु का पूरा पोषण नहीं हो पाता और वे कमजोर हो जाते हैं। मूत्र ज्यादा बनने लगता है। मूत्र में शर्करा निकल जाती है और बहुमूत्र की बीमारी हो जाती है। अर्थात् लघुशंका की हाजत बार-बार होती रहती है। इंसुलिन की खोज से सूई द्वारा उसे शरीर में प्रविष्ट कराकर मधुमेह का इलाज कराना आसान हो गया है।

क्लोम (pancreas) प्रणालीयुक्त तथा प्रणाली विहीन दोनों

प्रकार की ग्रंथि हैं। क्लोम नली से क्लोम रस भेजा जाता है। इंसुलिन इस अवयव की रक्त वाहिनियों में सीधा चला जाता है।

(८) *प्रजनन ग्रंथियाँ* (Gonads) लैंगिक ग्रंथियां—स्त्रियों की प्रजनन ग्रंथियो को डिम्ब ग्रंथियाँ (ovaries) तथा पुरुषों की प्रजनन ग्रंथियो को शुक्र ग्रंथियां (testes) कहते हैं। ये प्रमुख प्रजनन अवयव हैं तथा प्रणालीयुक्त ग्रंथि की तरह काम करती हैं। ये रज तथा शुक्रोत्पादन करती हैं और उन्हे नालियो में से निकालती है।

ये रक्त को दूसरे रस भी देती हैं जिन पर गौण लैंगिक विशेषताओ के लिए उत्तरदायित्व रहता है। विशेषताएँ वे हैं जो पूर्ण लैंगिक विकास होने पर प्रकट होती हैं और जिनसे मादा को नर से पृथक् कर सकते हैं। अर्थात् आदमी के चेहरे तथा ऊपरी ओठ पर बालो का निकलना तथा बढना और उसकी आवाज का मोटापन तथा स्त्रियो के स्तन विकास ऐसी विशेषताएँ हैं।

इन ग्रंथियों का आभ्यांतरिक रसोत्पादन (internal secretion) जीवनी शक्ति तथा आदमी के व्यक्तित्व को साधारण तौर पर प्रभावित करता है। जब यह ग्रंथियाँ निकाल दी जाती हैं तो आदमी नपुंसक हो जाता है। यदि औरतो मे इन ग्रंथियो द्वारा बनने वाला आभ्यांतरिक रस यथेष्ट नही है तो वे मोटी हो जाती हैं और उनके चेहरे पर बाल निकल आते है।

सामान्य—हम यह देख चुके हैं कि ये प्रणालीविहीन ग्रंथियाँ शरीर के पोषण, वृद्धि तथा लैंगिक विकास पर बड़ा प्रभाव डालती हैं। इन ग्रंथियो की कम या अधिक कार्यशीलता से शरीर में भयंकर गड़बड़ी हो जाती है। कुछ ऐसी अवस्थाओ को इन ग्रंथियों का सत सूई द्वारा शरीर में प्रविष्ट कर के ठीक किया जा सकता है। मधुमेह रोग को ठीक करने के लिये सूई द्वारा इंसुलिन को शरीर में प्रविष्ट करते हैं। थायरोइड का सत वृद्धि को

बढ़ाने के लिये उपयोग में आता है। आयडीन या थायरोइड का सत सूई द्वारा शरीर में प्रविष्ट करके घेघा रोग को ठीक किया जाता है। ऐड्रिनेलिन की सूई से रक्त का दबाव ठीक किया जाता है। जब एक स्वस्थ व्यक्ति के ऐड्रिनैलिन की सुई लगाई जाती है तो वह अधिक कार्यशील हो जाता है और उसे थकान कम मालूम होती है। बच्चे को थाइमस के सत की सूई लगाने पर उसकी वृद्धि तथा विकाश की गति को तीव्र करने की आश्चर्य-जनक शक्ति हो जाती है।

साराश

प्रणाली विहीन ग्रंथियों के नालियाँ नहीं होती। उनके रस रक्त में चले जाते हैं जो हारमोन कहलाते हैं। हारमोन शरीर, मन व लैंगिक विकास पर नियन्त्रण रखते है। यह शरीर के रासायनिक कार्यों पर नियन्त्रण रखते हैं।

पिच्युइटरी शरीर और लैंगिक विकास पर नियन्त्रण करता है। यह प्रणाली विहीन ग्रंथि संस्थानकी स्वामिनी है। थायरोइड मैटाबोलिज्म, तथा शरीर के विकास को उत्तेजित करता, थाइमस शारीरिक वृद्धि में सहायता देती है तथा जब तक यथेष्ट शारीरिक विकास नही हो जाता तब तक मानसिक वृद्धि को रोके रखती है। पन्द्रह वर्ष की आयु के पश्चात् वह सिकुड़ने लगती है और बाद में नष्ट हो जाती है। ऐड्रिनल जीवन के लिए आवश्यक है और इसका रस ऐड्रिनिलीन खतरे के समय काम आता है। लैंगर हैंस के आईलेट क्लोम में होते हैं। इनके रस में इन्सुलिन होती है जो शर्कराओं के शोषण का नियन्त्रण रखती है। प्रजनन ग्रन्थियों के हारमोनें गौण लैंगिक गुणों के विकास को नियन्त्रण करते हैं और जीवन शक्ति पर बहुत प्रभाव डालते हैं। यह ग्रंथियाँ शरीर के पोषण, वृद्धि तथा लैंगिक विकास पर बहुत प्रभाव डालती हैं।

प्रश्न

१—प्रणाली विहीन ग्रन्थियों के सामान्य काम पर एक छोटी टिप्पणी लिखिये।

२—इन्हें समझाइये—प्रणाली विहीन, प्रणाली युक्त, हारमोन, एड्रिनेलीन, इन्सुलिन।

३—विभिन्न प्रणाली विहीन ग्रन्थियों तथा उनके कार्यों का बहुत संक्षिप्त वर्णन कीजिये।

४—घेंघा, टिटैनी और मधुमेह रोग को समझाइये। वे कैसे दूर होते हैं?

अध्याय १४

वंश की अविच्छिन्नता

लैङ्गिक उत्पादन (Sexual Reproduction)—सारे जीवधारी प्राणियों के सम्बन्ध में एक बड़ी विशिष्ट तथा महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रत्येक जीवधारी व्यक्ति का जन्म किसी पूर्व जीवनधारी व्यक्ति से होता है। पास्त्यूर (Pasteur) और दूसरों के खोज कार्य से यह निश्चित रूप से सिद्ध हो गया है कि सूक्ष्मतम प्राणियों में भी जीवन की उत्पत्ति जीवन से ही हो सकती है।

उच्चतर जीवों में एक नये व्यक्ति को जन्म देने के लिए दो विभिन्न लिंगी युवा व्यक्तियों का सहयोग आवश्यक है। लैङ्गिक प्रजोत्पादन (Sexual reproduction) में विशिष्ट लैङ्गिक कोषों का एक नया कोष बनाने के लिये सम्मिलन होता है। माता का भाग अंडा है। यह एकमात्र कोष है जो आँख से दिखाई देता है। यह चारों ओर से खाद्य पदार्थ के यथेष्ट परिमाण से घिरा रहता है। एक नर कोष से जिसे शुक्रकीट (spermatozoa)

कहते हैं गर्भाधान होता है। शुक्र कीट बहुत सूक्ष्म होता है शुक्र कीट और अंडे (रज) के सम्मेलन को गर्भाधान कहते हैं। गर्भाधान के पश्चात् अंडा बढ़ता है और उसका कई बार विभाजन होकर नये व्यक्ति का शरीर बनता है। प्रत्येक बहु कोषीय प्राणी का भी जीवन एक कोष से गर्भस्थित के पश्चात् रज से शुरू होता है जो
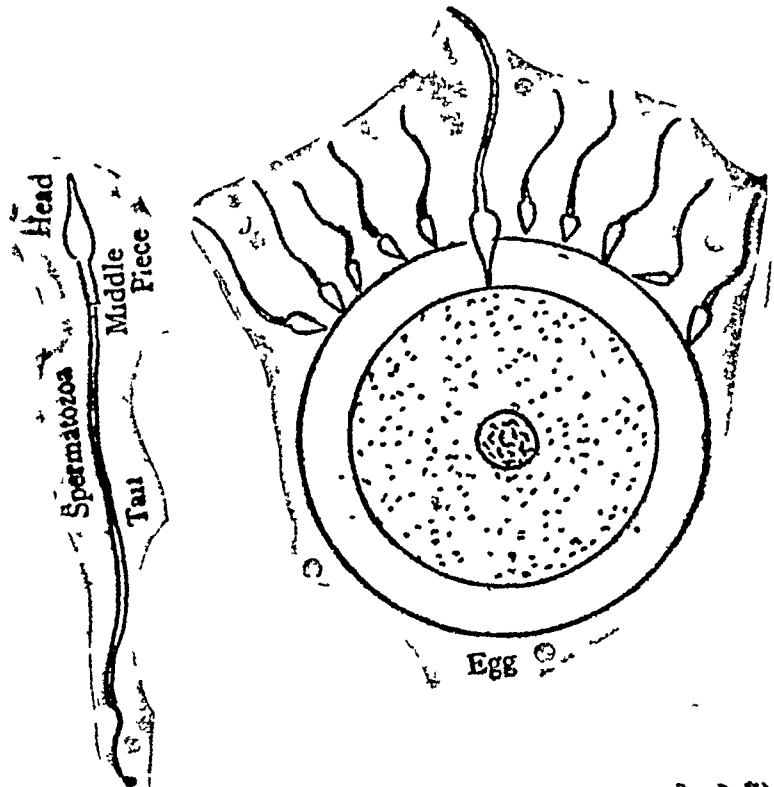
चित्र संख्या ६४–मानव रज तथा शुक्रकीट (बढ़ाकर दिखलाये गये हैं)

कोष विभाजन वृद्धि तथा विभाजन से बने हुए पदार्थ के पृथक्-करण से सन्तान का शरीर बनता है। नया बच्चा जिसे भ्रूण या foetus कहते हैं माँ के गर्भ में नौ महीने में अपना

पूरा आकार प्राप्त कर लेता है। इस काम के लिए बनी रक्तवाहिनियों द्वारा इसे माँ से पोषण प्राप्त होता है। गर्भ के सिकुड़ने से बच्चे का जन्म होता है अर्थात् वह गर्भाशय के बाहर आ जाता है। यह एक रस्सी द्वारा गर्भाशय की दीवारों से अब भी जुड़ा होता है। इस रस्सी को बच्चे के जन्म के बाद काट दिया जाता है और इस तरह बच्चे को माँ से अलग कर दिया जाता है।

नर प्रजननेन्द्रिय शुक्रकीट दो अवयवों (ग्रंथियों) में बनते हैं जिन्हे शुक्र ग्रंथियाँ कहते हैं। ये युवावस्था में ही काम करती हैं। शुक्रकीट और जेली की तरह तरल पदार्थ वीर्य जिसमें शुक्रकीट तैरते हैं तरुणाई आने के पश्चात् बराबर बनते रहते हैं। वीर्य के कुछ भाग का तंतुओं द्वारा निरंतर शोषण होता रहता है और वह तंतुओं के विशेषतः वात तथा मस्तिष्क कोषों के पोषण के लिए बहुत बढ़िया चीज है। यथेष्ट वीर्य दो शुक्र प्रणालियों (Vasdeferens) द्वारा शुक्राशय में एकत्र किये जाने के लिए चला जाता है। शुक्राशय (Seminal Vesicles) दो छोटे थैले हैं जो मूत्राशय के ठीक पीछे होते हैं।
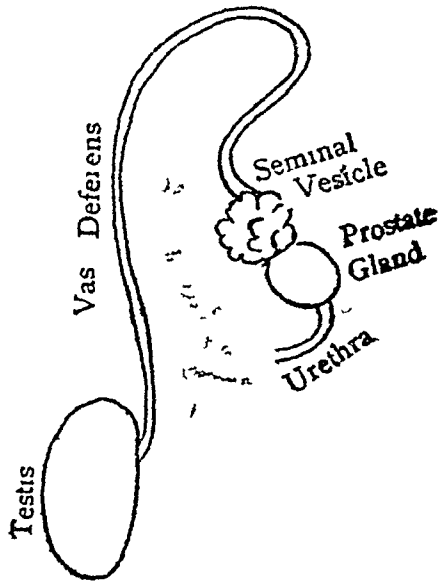
चित्र संख्या ६५—नरप्रजननेन्द्रिय (Male Reproductive Organs)

शुक्रकीट के तैरने के लिए सिर और पूँछ होती है। वहाँ के प्रोस्टेट ग्रंथियों द्वारा बनाए हुए एक तरल पदार्थमें तैरते रहते हैं। शुक्राशय से एक नली शुरू होती है जो वीर्य तथा शुक्रकीटों को मूत्रमार्ग (urethra) को ले जाती है। जब शुक्रकीट प्रोस्टेट ग्रंथि के तरल पदार्थ के सम्पर्क में आते हैं तो वे अधिक तरल हो जाते हैं और उनमें से किसी एक के रज तक पहुँचने तथा उसमें गर्भस्थिति ठीक करने से पहले काफी दूर तक चले जा सकते हैं।

स्त्री प्रजनन अवयव वस्तिगह्वर में होते हैं। इनमें योनि (birth canal) गर्भाशय डिम्ब प्रणालियाँ (fallopian tubes) तथा डिम्ब ग्रंथियाँ (ovaries) होती हैं। डिम्ब ग्रंथियों में डिम्ब (ova) बनते हैं। डिम्ब ग्रंथियाँ बादाम के आकार की दो ग्रन्थियाँ हैं। वे डेढ़ इंच लम्बी तथा आधी इंच मोटी होती हैं। ये गर्भाशय से दो डिम्ब प्रणालियों द्वारा जुड़ी होती हैं।

डिम्ब प्रणालियाँ—ये गर्भाशय के पास वाले सिरे पर सँकड़ी होती हैं पर डिम्ब ग्रन्थियों की ओर कीप के आकार की होती हैं। डिम्ब जब तक उसका (नर के वीर्य के) शुक्रकीट से गर्भाधान नहीं हो जाता डिम्ब प्रणालियों में रक्खा रहता है शुक्रकीट गर्भाशय के ऊपर जाकर डिम्ब से मिलता है। यदि डिम्ब का गर्भाधान नहीं हो पाता तो यह पका हुआ डिम्ब प्रति मास कुछ रक्त एवं श्लेष्मा के साथ बाहर
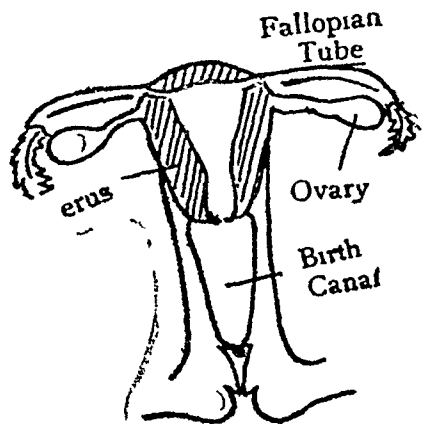
चित्र संख्या ६६—स्त्री प्रजनन इंद्रियाँ
(Female Reproductive Organs)

निकल आता है और नया डिम्ब बनता है।

गर्भाधान हो जाने पर डिम्ब गर्भाशय में आता है। गर्भाशय मांस पेशियों का घना एक खोखला अवयव है। यह तीन इंच लम्बा और एक इंच मोटा होता है। ऊपरी सिरे पर यह चौड़ा होता है और नीचे योनि से मिला रहता है जो लगभग पाँच इंच लम्बी होती है और उसका द्वार बाहर की ओर होता है।

गर्भाधान—नये व्यक्तियों को निर्माण का कार्य एकाकी कोषों को जो इसी काम के लिए होते हैं, दे दिया गया है। दो ऐसे विशिष्ट कोष डिंब तथा शुक्र कीट हैं। असल में गर्भाधान नर कोष (शुक्रकीट) व स्त्रीकोष (डिंब) के संयोग से होता है। डिंब अपेक्षा कृत बहुत बड़ा और अकर्मण्य (iner) होता है तथा माता के शरीर से जुड़ा रहता है, नरकोष बहुत छोटा होता है परन्तु वह अबाध कार्यशील होता है और उसके एक पूँछ होती है जिससे वह गर्भाशय के ऊपर डिंब प्रणालियों में चला जाता है। केवल नर और मादाकोषों का संयोग ही गर्भाधान है। डिंब का खाद्य पदार्थ नष्ट हो जाता है और शुक्र कीट की पूँछ नष्ट हो जाती है।
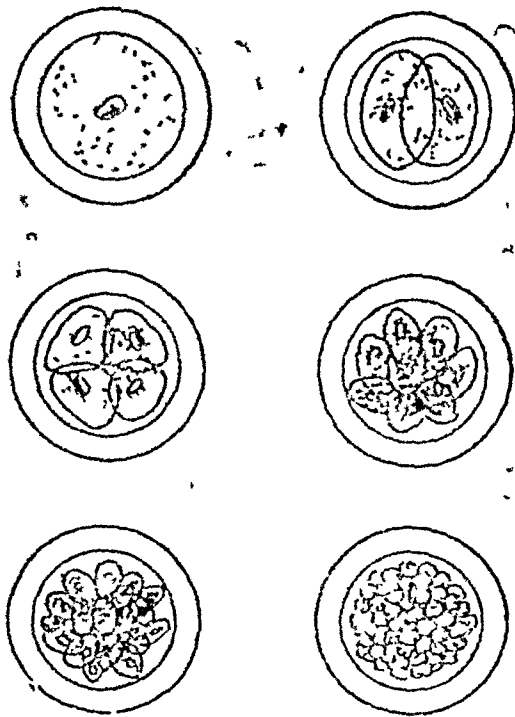
चित्र संख्या ६७—गर्भाधान के पश्चात् डिंब का विभाजन

विकास—गर्भाधान के पश्चात् डिंब का गर्भाशय की दीवारों में विकास आरम्भ हो जाता है। गर्भाधान होते ही तुरन्त डिंब दो कोषों में विभाजित हो जाता है—इन दो कोषों से चार कोष बनते हैं, चार से आठ और इसी तरह विभाजन तब तक होता रहता है जब तक गोलीय कोषों का पूरा ढेर नहीं बन जाता। यह धीरे-धीरे एक थैली से घिर जाता है, जिसमें विकसित होता हुआ शिशु या भ्रूण तैरता है। कुछ समय के पश्चात् प्लेसेंटा नामक झिल्ली बनती है। इससे भ्रूण को पोषण तथा श्वासोच्छ्वास के लिए आवश्यक ओषजन मिल जाता है। जन्म के समय तक

भ्रूण के फेफड़े काम करना शुरू नहीं करते। फालतू पदार्थ (waste products) भी प्लेसेंटा द्वारा हटाये जाते हैं। इस प्रबन्ध का ब्यौरा पेचदार है। गर्भावस्था में माता के पेट में भ्रूण को भोजन तथा ओषजन पहुँचाने और फालतू पदार्थों को हटाने के लिए रक्त वाहिनियों की बड़ी भारी रचना होती है।

चित्र संख्या ६८—शिशु का विकास

गर्भाशय के फैलने तथा अवयवों के शिथिल होने के लिये आवश्यकता से अधिक स्थान रखा गया है। कूल्हे की हड्डी भी सन्धि बंधनों (ligaments) के ढीले पड़ने से थोड़ी-सी ढीली हो जाती है। नौ महीने समाप्त होने पर बच्चा जिसका शिर नीचे और कूल्हा ऊपर की तरफ होता है, तीव्र गति से सिकुड़ने पड़ने से बाहर निकल आता है।

बच्चे के जन्म के बाद गर्भाशय अपना स्वाभाविक आकार प्राप्त कर लेता है और उसमें जुड़ी हुई माँस पेशियाँ धीरे-धीरे अपना पुराना लहजा (tone) प्राप्त कर लेती हैं।

जन्म के कुछ ही देर पश्चात् दुग्धग्रन्थियाँ काम करना शुरू कर देती हैं। स्वस्थ माता अपने बच्चे को पहले नौ महीने या उसके आस-पास दूध पिला सकती है क्योंकि उसके स्तनों में दूध प्रचुर परिमाण में आने लगता है।

हम पैतृक गुण कैसे प्राप्त करते हैं ?—माता-पिता के गुण तथा विशेषतायें उनकी सन्तान में बहुत अधिक अंश तक मौजूद रहती हैं। हम पहले कह चुके हैं कि गर्भाधान में डिंब तथा शुक्र कीट का संयोग होता है अर्थात् वे मिलकर एक हो जाते हैं। वास्तव में वीर्यकोष डिंब से प्रोटोप्लाज्म में अपने नुकीले सिर से चाबुक की तरह पूँछ से ढकेला हुआ प्रविष्ट होता है (चित्र संख्या ६१)। शुक्र कोष के सिर का थोड़ा सा प्रोटोप्लाज्म डिंब के प्रोटोप्लाज्म से मिलता है। तब शुक्र कोष का केन्द्रक (nucleus) डिंब के केन्द्रक की तरफ चला जाता है और ये दोनों केन्द्रक मिल जाते हैं। डिंब केंद्रक का शुक्रकेंद्रक के साथ मिलकर गर्भाधान किये हुए डिंब का एक केंद्रक बनाना ही सच्चा गर्भाधान है। पिता और माता अपनी संतति पर क्रोमोसोम (chromosomes) की मार्फत प्रभाव डालते हैं। इससे बच्चे अपने माँ बाप जैसे बन जाते हैं और उनकी विशेषताएँ यही निर्णय करते हैं।

माता या पिता में से प्रत्येक नये व्यक्ति के लिए आवश्यक पदार्थ का आधा भाग प्रदान करते हैं, यह पदार्थ केंद्रक में होता है और इसे क्रोमोसोम (Chromosomes) कहते हैं। अभी हाल ही में यह सिद्ध हुआ है कि कोष की आन्तरिक रचना बड़ी उलझी हुई होती है। कोष के ढाँचे के अध्ययन से कोष के भीतर सूक्ष्म पदार्थों के अस्तित्व का पता लगा है। ये पदार्थ जब किसी रंग में डुबाये जाते हैं तो अच्छी तरह रंग पकड़ते हैं और सूक्ष्म दर्शक यन्त्र में देखे जा सकते हैं। केंद्रक के भीतर इन रंगे जा सकनेवाले पदार्थ का नाम क्रोमोसोम रखा गया है जिसका मतलब 'रंगे हुए पदार्थ' होता है। क्रोमोसोम पैतृक गुणों के वाहक होते हैं। उनकी एक निश्चित बनावट है—क्रोमोसोमों की संख्या, आकार, रूप तथा व्यवस्था वर्ग (species) विशेष में अटल रहते हैं तथा उस वर्ग के लिए ये विशिष्ट होते हैं।

औरतों में चौबीस बराबर जोड़े (४८) होते हैं जबकि पुरुषों में तेईस जोड़े तथा एक अनिश्चित क्रोमोसोम (४६ + १) होते हैं।

हम मानव प्राणियों में ही नहीं वास्तव में सारे जानवरों तथा पौधों में से प्रत्येक वह है जो वह स्वयं है, दूसरा कोई नहीं, क्योंकि क्रोमोसोमों का एक निश्चित क्रम होता है जो हमें गर्भाधान के समय प्राप्त हुए थे।

चित्र संख्या १६—आदमी के क्रोमोसोम
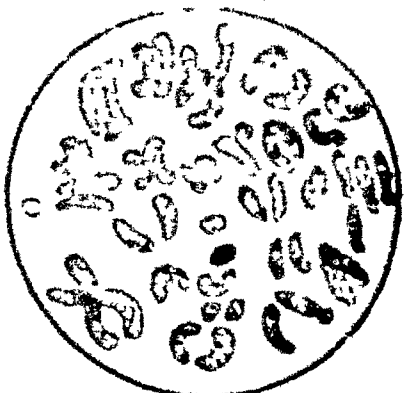
क्रोमोसोम माता-पिता की विभिन्न विशेषताओं के वाहक होते हैं। इन विशेषताओं का विवाह के पूर्व अध्ययन किया जाना चाहिए जिससे माता-पिता का केवल अच्छी अपेक्षित विशेषतायें भी सन्तान में आने दी जायँ। यद्यपि जैसा आदमी हम

चाहते हैं उसके गुणों को प्रस्तावित करना कठिन है लेकिन जिस किसी की आप खोज में हैं यदि वह ऊँचाई है तो अधिक ऊँचे को देखिये। यदि दीर्घ जीवन चाहा जाता है तो विवाह ऐसे वंश में होना चाहिये जिसके सदस्य आपकी चाही हुई आयु से अधिक उमर तक जीने के लिए प्रसिद्ध हैं। सन्तानोत्पादन में या वंश को अविच्छिन्न रखने में दूसरों की अपेक्षा आगे बढ़ जाने का सवाल है।

सारांश

नर प्रजनन संस्थान में दो शुक्र ग्रन्थियाँ, दो शुक्र प्रणाली, दो शुक्राशय, सहायक या प्रोस्टेट ग्रन्थियाँ तथा मूत्र मार्ग होते हैं। शुक्र कीट शुक्र ग्रन्थियों में बनते हैं और शुक्राशय में एकत्रित होते हैं। आवश्यकता के समय एक प्रणाली द्वारा मूत्राशय में पहुँच जाते हैं।

स्त्री प्रजनन संस्थान में दो डिम्ब ग्रन्थियाँ, दो डिम्ब प्रणालियाँ, गर्भाशय तथा योनि होती हैं। डिम्ब ग्रन्थियों में डिम्ब बनते हैं जो डिम्ब प्रणालियों में पकड़े रहते हैं। शुक्र कीट से गर्भाधान पर यह गर्भाशय में चला आता है और नौ महिने में भ्रूण बन जाता है। इसका पोषण प्लेसेटां द्वारा अपनी माता के रक्त में होता है। सन्तान में माता पिता के गुण तथा विशेषताएँ होती हैं। वह एक दूसरे से बहुत मिलते जुलते हैं। क्रोमोसोम या रंगे हुए पदार्थ जो केंद्रक में होते हैं, पैतृक गुणों के वाहक होते हैं। क्रोमोसोम माता के अण्डे द्वारा और पिता से शुक्र कीट द्वारा गर्भाधान के समय नये शिशु को प्राप्त होते हैं।

प्रश्न

१—गर्भाधान क्या है ?

२—नर प्रजनम संस्थान का वर्णन कीजिये।

३—स्त्री प्रजनन संस्थान का वर्णन कीजिये।

४—संक्षेप में बतलाइये हम पैतृक गुण कैसे प्राप्त कर सकते हैं ? क्रोमोसोम क्या है ?

भाग २

स्वास्थ्य विज्ञान

The Greek Goddess of Health

अध्याय १५

प्रारम्भिक वर्णन

स्वास्थ्य विज्ञान में स्वास्थ्य को बनाये रखने तथा रोगों से बचने के लिये बनाये गये नियमों या सिद्धान्तों का संस्थान होता है।

स्वास्थ्य में शरीर के सब अवयव व मन ठीक तरह से काम करते हैं और हम स्वस्थ प्रतीत होते हैं, रोग में शरीर के अवयव ठीक ठीक काम नहीं करते और शरीर और मन में कोई खराबी हो जाती है।

स्वास्थ्य विज्ञान कोई नया विज्ञान नहीं है। इसका अंग्रेजी शब्द हाइजीन स्वयं यूनानी शब्द -हाइजिया (Hygieia) से निकला है। हाइजिया स्वास्थ्यकी देवी थीं जिनके लिए यह माना जाता था कि वे जनता के स्वास्थ्य की निगरानी किया करती हैं।

विज्ञान ने हमें यह सिखलाया है कि स्वास्थ्य के नियमों को न मानने से तथा कीटाणुओं (germs) से रोग पैदा होते हैं। रोग ईश्वर के न्याय के कारण या भूत प्रेतों द्वारा नहीं होता जैसा कि कई अनजान लोग कभी-कभी मानते हैं। विभिन्न रोगों के कारण अब मालूम कर लिये गये हैं और उनकी दवाएँ तथा उनसे बचने के उपाय स्थिर कर लिये गए हैं।

वे देश, जहाँ स्वास्थ्य के नियमों का जनता पालन करती है और जहाँ रोगों के रोकने के उपाय काम में लिये जाते हैं और वहाँ के लोग महामारियों से पूरी तरह से बचे हुये हैं और वहाँ के लोग काफी अरसे तक जीते हैं और स्वस्थ जीवन व्यतीत करते हैं।

इसलिए स्वास्थ्य विज्ञान का विषय बहुत महत्त्वपूर्ण है। स्वास्थ्य के नियमोंका जानना इसलिए जरूरी है कि हम स्वास्थ्य एवं दीर्घायु प्राप्त कर सकें और रोगों से बच सकें। इन नियमों को

जानना तथा उनके अनुसार आचरण करना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है।

यह भी जरूरी है कि 'स्वस्थ जीवन कैसे बिताना चाहिए' यह सन्देश सब लोगों तक, उन स्त्री-पुरुषों तक भी, जिनको पाठशाला में इन नियमों के जानने का अवसर नहीं मिलता पहुँचाया जाय। विद्यार्थी भावी नागरिक हैं। उन्हे इस संदेश को अपने अशिक्षित पड़ौसियों तक पहुचाना चाहिए और न केवल स्वास्थ्य के नियमो के अनुसार जीवन व्यतीत करना चाहिये बल्कि उन नियमों को दूसरों को सिखाना भी चाहिये। इसी से ही व्यक्तियों का स्वास्थ्य, घरेलू स्वास्थ्य, जाति का स्वास्थ्य ठीक बना रहेगा।

स्वास्थ्य विज्ञान हमे निम्नलिखित बातें सिखाता है:—

१—कैसे रहना चाहिये ?

२—कहाँ रहना चाहिए और अपने घर कैसे बनाने चाहिये ?

३—खचाखच भरे हुए घरों तथा गंदे स्थानों में रहने में के खतरे।

४—क्या खाना चाहिये (कब, कितना, कैसे और क्या नही खाना चाहिये)

५—तम्बाकू, शराब तथा दूसरी दवाइयों के प्रयोग के खतरे।

६—कैसा पानी पीने के लिए अच्छा है ? (अच्छा पानी कैसे प्राप्त हो सकता है ?)

७—क्या पहनना चाहिये ?

८—सफ़ाई, कसरत, मनोरंजन तथा आराम का लाभ।

९—छुतैले रोग किस तरह फैलते हैं और उनसे कैसे बचा जा सकता है ?

अतः स्वास्थ्य विज्ञान हमें सिखाता है कि हम अपने को किस तरह स्वस्थ रख सकते हैं और रोगों का बचाव किस तरह किया जाता है।

स्वास्थ्य विज्ञान का अध्ययन दो भागों में किया जा सकता है-

१—वैयक्तिक स्वास्थ्य वृत्त अर्थात् व्यक्ति का स्वास्थ्य।

२—सार्वजनिक स्वास्थ्य वृत्त अर्थात् जनता का स्वास्थ्य या जन स्वास्थ्य विद्या।

वैयक्तिक स्वास्थ्य वृत्त हमें व्यक्ति के स्वास्थ्य को बनाये रखने के सिद्धान्त तथा तरीके सिखलाता है। इसमें नीचे लिखी बातें आती हैं—

(१) भोजन (२) पानी (३) व्यायाम, निद्रा तथा आराम (५) शरीर की सफाई, (६) शरीर के लिए वस्त्र।

घरेलू स्वास्थ्य वृत्त साधारणतः वैयक्तिक स्वास्थ्य वृत्त में सम्मिलित है। इसमें नीचे लिखी बातों का वर्णन होता है:—

१—कहाँ रहना चाहिए—घर की स्थिति व निर्माण तथा व्यञ्जन (ventilation)

२—घर की सफाई।

३—घर के कचरे का अन्तिम विनाश।

४—घर को प्रकाशित—गर्म तथा ठंडा करना।

५—घर में पानी तथा भोजन को रखने का प्रबन्ध।

सार्वजनिक स्वास्थ्य वृत्त में सारी जाति के स्वास्थ्य की समस्याओं तथा रोगों को फैलने से रोकने का वर्णन होता है।

व्यक्तियों का तथा उनके साथियों का स्वास्थ्य एक दूसरे पर आश्रित है। इसलिए वैयक्तिक तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य की समस्याओं का अध्ययन एक साथ किया जाना सब से अच्छा है। चूँकि जनता के स्वास्थ्य की समस्याओं का सम्बन्ध क़सबे या गाँव के लोगों के स्वास्थ्य की निगरानी से है, प्रत्येक व्यक्ति

की इसमें बड़ी अभिरुचि होती है। वास्तव में सारी जाति के स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए और रोगों के होने तथा फैलने से रोकने के लिए जाति के सारे सदस्यों के सहयोग तथा सक्रिय सहायता की आवश्यकता है।

सार्वजनिक स्वास्थ्य वृत्त का सम्बन्ध निम्न लिखित बातों से हैं:—

(१) घरों का निर्माण तथा उनको खचाखच भरे जाने से रोकना,

(२) सड़कों, गलियों, नालियों तथा दूसरी सार्वजनिक जगहों को बनाना तथा उन्हे साफ रखना,

(३) सब तरह के कचरे तथा गंदगी का अन्तिम विनाश,

(४) अच्छा पानी देने का प्रबन्ध करना,

(५) हवा, पानी तथा भोज्य पदार्थों को खराब करने से रोकना,

(६) संक्रामक रोगों से बचाव,

(७) जन्म और मृत्यु का लेखा रखना,

(८) शिशु तथा गर्भवती माता की निगरानी, तथा

(९) शव का अन्तिम विनाश।

इन नियमों के ज्ञान तथा तदनुकूल आचरण से कई देशों में जहाँ स्वास्थ्य के नियमों का ठीक तरह से पालन किया गया है, उत्कृष्ट परिणाम प्राप्त हुए हैं। भारतवर्ष में इस ओर काफी प्रगति हो रही है और यदि लोग वैयक्तिक तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य के नियमों का पालन करेंगे तो अधिक अच्छा परिणाम होना निश्चित है। जनता की भलाई के लिए कई नियमों का जबरदस्ती पालन करवाना आवश्यक होता है। अपनी व्यक्तिगत तथा सामान्य भलाई के लिये प्रत्येक व्यक्ति को नियमों या सिद्धान्तों के अनुसार आचरण करना चाहिए।

सारांश

स्वास्थ्य विज्ञान, स्वास्थ्य को बनाये रखने तथा रोगो से बचने से सम्बन्धित विज्ञान है। रोग देवताओं की नाराजगी से उत्पन्न नहीं होते परन्तु स्वास्थ्य के नियम न पालन करने से आते हैं। स्वास्थ्य विज्ञान के दो भाग होते हैं—व्यक्ति का स्वास्थ्य तथा जनता का स्वास्थ्य। वैयक्तिक स्वास्थ्य में व्यक्ति के स्वास्थ्य को बनाये रखने के सिद्धान्त सिखलाये जाते हैं। सार्वजनिक स्वास्थ्य वृत में सारी जाति के स्वास्थ्य की समस्या तथा रोगो को फैलने से रोकने का वर्णन होता है।

हमें अपनी तथा जनता के स्वास्थ्य की भलाई के लिये स्वास्थ्य के नियम पालन करने चाहिये।

प्रश्न

१—(क) स्वास्थ्य विज्ञान क्या है ?

(ख) इस विषय का विस्तार क्या है ?

२—सार्वजनिक स्वास्थ्य की खास समस्याएं क्या हैं ?

३—स्वास्थ्य के नियमों का पालन करने से होने वाले लाभ क्या हैं ?

अध्याय १६

हवा तथा व्यञ्जन (Air and Ventilation)

हवा जरूरी है—हवा जीवन की एक आवश्यक वस्तु है। कुछ मिनटों से अधिक हम इसके बिना नहीं जी सकते। हवा में ओपजन (oxygen) होता है जिसकी प्रत्येक क्षण रक्त की सफाई के लिये जरूरत पड़ती है। हम यह देख चुके हैं कि ओषजन फेफड़ों की हवा से खून के साथ मिलता है। यह रक्त धारा में ले जाया जाता है जहां यह भोज्य पदार्थों के औषदीकरण तथा

शरीर के काम के करते रहने तथा शक्ति तथा गर्मी उत्पन्न करने के लिये काम में आता है।

ताजा हवा थकान मिटाकर आनन्द देती है तथा हमें मजबूत बनाती है। आदमियों से भरे हुए घरों तथा गन्दे स्थानों की खराब हवा से अनेक रोग पैदा होते हैं।

हवा का संगठन—हवा गैसों का मिश्रण है। ओषजन तथा नाइट्रोजन इसके मुख्य अंग हैं। कार्बन द्विओषिद (Carbon dioxide) थोड़े परिमाण में पाया जाता है। धुआँ, धूल के कण और भाप विभिन्न परिमाण में मौजूद रहते हैं। हवा का संगठन निश्चित नहीं है अर्थात् वह बदलता रहता है। ओषजन तथा कार्बन द्विओषिद के परिमाण कुछ अंश तक बदल सकते हैं। कस्बों के निकट धूल, धुआँ तथा दूसरे कण हवा में मौजूद होते हैं। देहात या समुद्री किनारे की हवा में थोड़ा-सा ओजोन (ozone) होता है। स्थान तथा मौसम के मुताबिक हवा में भाप का परिमाण बदलता रहता है। साफ हवा का औसत आयतन संगठन निम्न लिखित है:—

नाइट्रोजन	.	७८·८
ओषजन	.	२०·९४
कार्बन द्विओषिद	.	·०४
दूसरी गैसें	.	·९४
		१००·००

नाइट्रोजन—हवा का अधिकांश भाग नाइट्रोजन होता है। यह एक निष्क्रिय गैस है। यह रंगहीन, स्वाद रहित तथा गंध-विहीन होती है। यह न तो जलती है और न जलने को प्रश्रय देती है। नाइट्रोजन केवल ओषजन को हलका करने का काम करती है।

ओषजन—रंग विहीन, स्वाद रहित तथा निर्गंध गैस है।

वह जलने में प्रश्रय देती है। यह सब जीवों के लिए जरूरी है। वह जलने तथा ओषिदकरण के काम में आती है। मानव शरीर को देह गरम रखने तथा शक्ति पैदा करने के लिये इसकी जरूरत पड़ती है। जीवन जलने की धीमी विधि है। जीवनी कार्यों में भोज्य पदार्थों का जो हम खाते हैं निरन्तर ओषिदकरण होता रहता है। पौधे तथा प्राणी ओषजन के बिना नहीं जी सकते।

कार्बन द्विओषिद—यह वायुमण्डल में थोड़े परिमाण में मौजूद रहता है और यह परिमाण पौधों के लिए आवश्यक है। हवा में वर्तमान इस गैस के थोड़े परिमाण (·०२ या ०४ %) से हरे पौधों को बहुत सा कार्बन मिलता है। पौधों को हरा रंग देने वाला पदार्थ हवा में वर्तमान कार्बन द्विओषिद को विछिन्न कर सकता है। कार्बन भोजन के रूप में रख लिया जाता है और ओषजन हवा को दे दिया जाता है।

हवा में अधिक परिमाण में कार्बन द्विओषिद का होना हानिकारक है। इससे सिर में दर्द हो जाता है और ठंड लग जाती है।

मनुष्य, जानवर और पेड़ पौधे श्वासोच्छ्वास प्रक्रिया में कार्बन द्विओषिद बाहर निकालते हैं। सब तरह के जलने में भी यह गैस पैदा होती है पर सूर्य की रोशनी में पौधे इसका खंडन करके वायु मण्डल से हटा लेते हैं। इस तरह हवा में इसका प्रतिशत परिमाण लगभग स्थिर रहता है।

भाप—हवा में हमेशा रहती है। यदि हवा बहुत शुष्क या बहुत आर्द्र होती है तो आदमी को बेचैनी तथा अरुचि होने लगती है।

हवा के गुण—शुद्ध हवा रंग विहीन, स्वाद रहित तथा निर्गन्ध होती है। यह गैसों का मिश्रण है। इसके गुण गैसीय मिश्रण के बदले हुए गुण मात्र हैं। यह दहन तथा जीवन का

पोषण करने वाली है। स्वस्थ जीवन के लिए ताजा हवा जरूरी है। यह चमड़ी के काम को तथा रक्त के बहाव को बढ़ाती है। यह फेफड़ो को स्वस्थ रखती है। यह मस्तिष्क को ताजा बनाती है।

हवा में अपद्रव्य (impurities)—हवा में दो तरह के अपद्रव्य होते हैं:—आसक्त-अटकी हुई (suspended) तथा गैसीय (gaseous)।

एक अंधेरे कमरे में एक छिद्र में से आनेवाले प्रकाश की किरण में हवा में आसक्त तैरने वाले ठोस कण आसानी से देखे जा सकते हैं। कुछ कण इतने छोटे होते है कि उन्हे आँख से नही देखा जा सकता।

ठोस या आसक्त कण या तो कार्बनिक (organic) के या अकार्बनिक (inorganic) पदार्थ के हो सकते हैं।

अकार्बनिक अपद्रव्यो में धूल मिट्टी आदि के महीन टुकड़े होते हैं। यदि वे हाल ही में वर्षा की धारा द्वारा धोकर नहीं ले जाये गये हैं तो वे हवा में थोड़े परिमाण में मौजूद होते हैं।

यदि उनका परिमाण बढ जाता है जैसे कि आँधी आने पर हुआ करता है तो वे आँखो तथा गले में जलन पैदा करते हैं। खानो तथा कारखानो में जहाँ हवा में विभिन्न कण होते है, काम करनेवालो को आँख, गले तथा फेफड़ों के रोग हो जाते है।

कार्बनिक अपद्रव्यों में रुई, ऊन, रेशम, महीन बुरादे, चमड़ी की पपड़ी, केश, पराग तथा पोधो के बीच और बेक्टीरिया एवं रोगो के कीटाणु शामिल हैं। सूखे हुए थूक से उसमें मौजूद चीजों के सूखे हुए टुकड़े तथा कीटाणु हवा में मिल सकते हैं। इससे रोग की छूत दूसरो को लग सकती है।

ये अपद्रव्य खतरे के बड़े भारी कारण हैं।

हवा में मौजूद फंगस (Fungus) पौधे के बीज या चमड़ी

की सूखी पपड़ियाँ चर्मरोग तथा चेचक का कारण बनती हैं।

हवा के गैसीय अपद्रव्यों के मुख्य कारण ये हैं :—

१—मनुष्यों, जानवरों तथा पौधों का श्वासोच्छ्वास।

२—दहन (Combustion)

३—विच्छेदन (Decomposition)

श्वासोच्छ्वास द्वारा हवा में मिले हुए अपद्रव्य—साँस के साथ अन्दर जानेवाली हवा तथा साँस के साथ बाहर निकली हवा का संगठन विभिन्न होता है। साँस के साथ बाहर निकली वायु में कार्बन द्विओषिद भाप तथा कार्बनिक अपद्रव्यों के छोटे टुकड़े अधिक परिमाण में होते हैं। इनमें ओषजन कम होता है। श्वास के साथ बाहर निकली हवा में कार्बन द्विओषिद का परिमाण लगभग ४·५% होता है। जिस हवा में हम साँस लेते हैं उसमें कार्बन द्विओषिद केवल ·०४% होता है।

दहन से हवा में मिले हुए अपद्रव्य—लकड़ी के कोयले, लकड़ी तथा तेल के जलने से कार्बन द्विओषिद, कार्बन एकोषिद तथा धुआँ पैदा होता है। बन्द कमरों में कोयले के जलने से बहुत परिमाण में कार्बन एकोषिद बनता है जो बहुत जहरीला होता है। बन्द कमरों में लकड़ी का कोयला जलाने पर बहुतसी प्राणनाशक दुर्घटनाएँ हो जाती हैं। धुआँ नाक, गले तथा आँखों के लिए हानिकारक है। दूसरी गैसें, गंधक, पेट्रोल तथा दूसरे पदार्थों के जलने से बनती हैं।

पदार्थों के विच्छेदन से प्राप्त हवा के अपद्रव्य—उन सब कार्बनिक पदार्थों में जो विभिन्न गन्दी जगहों में खुले पड़े हैं तथा सड़ रहे हैं खमीरण (fermentation) तथा विच्छेदन क्रियाएँ होती रहती हैं। जानवरों के शव या फेंके हुए फलों, तरकारियों तथा पत्तियों के टुकड़े भी बहुत जल्दी विच्छेदित होते हैं और कार्बन द्विओषिद तथा अन्य खराब और जहरीली गैसें

विशेषतः उद्‌जन गन्धिद (hydrogen sulphide) पैदा होती है। मोरियों, नालियों तथा कुँडियों से भी गैसें हवा में मिल जाती हैं।

दूषित वायु के बुरे प्रभाव—आदमियों से भरे हुए भवनों तथा उन कमरों में जिनकी वायु ग्रहण प्रणाली ठीक न हो, गन्दी वायु में साँस लेने के कुछ बुरे प्रभाव यह हैं:—सिरमें दर्द, निद्रा न आना, भूख न लगना तथा जुकाम हो जाना। वह वायु जिसमें जहरीली गैसें, कीटाणु और मिट्टी के टुकड़े होते हैं वह कई रोग उत्पन्न करती है। जैसे (क) धुएँ से दम घुटना (ख) रोग के कीटाणु रोग उत्पन्न करते हैं जैसेः-क्षय, शीतला।

(ग) धूल, मिट्टी आदि के टुकड़ो से रोग उत्पन्न हो सकते हैं।

(घ) धूल से आँखें दुखने आती हैं।

(ङ) कार्बन एक ओषिद जहरीली होती है। बन्द कमरों में कोयला जलाने से बहुधा इसके कारण मृत्यु हो जाती है।

हवा को साफ करनेवाले प्राकृतिक प्रतिकार—१-पौधेः-सूर्य के प्रकाश में हरे पौधे वायुमण्डल में कार्बन द्विओषिद लेकर कार्बन रख लेते हैं और ओषजन को वायुमण्डल को दे देते हैं। श्वासोच्छ्वास, दहन तथा विच्छेदन में वायु मण्डल को निरन्तर प्राप्त होनेवाला कार्बन द्विओषिद दिन के समय पौधों द्वारा हटा लिया जाता है।

२—व्यापन (diffusion)-गैसें व्याप्त होना चाहती हैं अर्थात् वे सारी जगह को जो मिल सकती है, भर देना चाहती हैं। इस तरह गैसो का मिलने की तरफ झुकाव होता है और इसमे हवा का सङ्गठन एक सा हो जाता है।

३—*हवायें*—ये अपद्रव्यों को उड़ा ले जाती हैं और उन्हें अपने कार्य के घेरे में फैला देती हैं।

४—वर्षा—यह हवा को धोकर आलम्बित अपद्रव्यों तथा कुछ गैसों को दूर कर देती है।

५—सूर्य का प्रकाश :—धूप से हवा में तैरने वाले बहुत से कीटाणु मर जाते हैं।

६—ओषजन :—यह कार्बनिक पदार्थ को जला देता है। उन का ओषदीकरण हो जाता है और उसे हानि रहित बना देता है।

व्यजन (Ventilation)

हमारे घरों में जलने तथा श्वासोच्छ्वास से हवा में मिले हुए अपद्रव्यों के धीरे-धीरे दरवाजों, खिड़कियों तथा व्यजन को वायुदानों (ventilators) में से हमारे घरों में आई हुई ताजा हवा से हलके होना तथा हटाये जाने का नाम व्यजन (ventilation) है। हमारे घरों में हवा को शुद्ध करने के लिए व्यजन एक बहुत महत्वपूर्ण तरीका है और घरों तथा दूसरे मकानों में उचित व्यजन की व्यवस्था करने के लिए पूरा ध्यान देना चाहिए। यदि हम अपने घरों में खूब ताजा हवा आने का प्रबन्ध कर सकें तो हम अधिक स्वस्थ हो सकते हैं।

हमने ऊपर देखा है कि कार्बन द्विओषिद, कार्बन एकोषिद, अन्य गैसें, भाप तथा कई और आलम्बित अपद्रव्य हवा में मिलते रहते हैं। उनको हटाने तथा उनकी मात्रा कम करने के लिये कमरों में ताजा वायु लानी जरूरी है।

ताजा हवा के आने तथा दूषित हवा को बाहर निकालने के लिए घरों में विभिन्न उपाय-प्राकृतिक एवं कृत्रिम-काम में लाये जाते हैं।

व्यजन की प्राकृतिक विधियाँ—निम्नलिखित तीन प्राकृतिक शक्तियाँ व्यजनक का काम करती हैं :—

१—गैसों का व्यापन
२—हवायें
३—वाहन धाराएँ

१. गैसों में मिलने की प्रवृत्ति का एक प्राकृतिक गुण होता है। कमरे के अन्दर की हवा का बाहर की हवा से विभिन्न छिद्रों में से कुछ मिश्रण होता है।

कमरे के अन्दर की हवा कमरे की बाहर की हवा से अधिक गर्म तथा हलकी होती है। गर्म हवा बहुत शीघ्र बाहर व्याप्त हो जाती है और उसकी जगह घेरने के लिए बाहर से हवा कमरे में आती है।

यदि बाहर और भीतर एक सा ही तापक्रम हो जैसा कि गर्मी से मौसम में होता है, तो यह अदला-बदली घट जाती है।

अतः हवा के परिवर्त्तन में व्यापन बड़ा महत्वपूर्ण भाग नहीं लेता। इसके अलावा व्यापन ठोस कणों को दूर करने में समर्थ नहीं होता और ये ठोस कण कमरो में ही रह जाते हैं।

२. हवायें बहुत शक्तिशाली व्यजनक हैं।

हवायें आसक्त तथा गैसीय अपद्रव्यो को घरो तथा नालियों में से अपने साथ उड़ा ले जाती हैं। यदि कमरे की आमने-सामने की दीवारो में दरवाजे तथा खिड़कियाँ हो तथा वे हवा की दिशा में हो तो कमरे की हवा ताजा हवा द्वारा बाहर निकाल दी जाती है और उसका स्थान वह ले लेती है।

मगर इससे बाहर से ठंडी हवा का झोका आने से सरदी लग सकती है। हवा अप्रत्यक्ष रूप से भी व्यजनक का कार्य करती है। ज्यो ही हवा किसी छिद्र से जैसे घर की चिमनियों के ऊपर से निकलती है वहाँ पर दबाव घट जाता है और इस तरह हवा चिमनी में खींच ली जाती है। नीचे से हवा बाहर
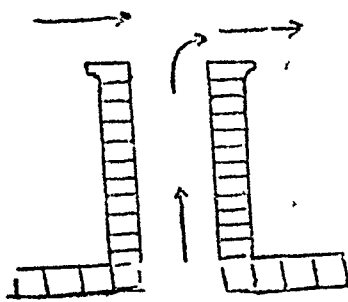
चित्र संख्या ७०—चिमनी के ऊपर बहती हुई हवा ऊपर की त फ खिंचाव उत्पन्न कर देती है।

खींची गई हवा का स्थान लेने के लिए आती है और इस तरह हवा की लहर कमरे से चिमनी के ऊपर उठती है और ताज़ा हवा उसका स्थान लेने के लिए अन्दर जाती है।

इस तरह चिमनियाँ अन्दर और बाहर की हवा की आपस की अदला-बदली में सहायक होती हैं।

३. वाहन धाराएं—

हवा की कुछ गतियाँ उसके तापक्रम में अन्तर पड़ने से उसके घनत्व में परिवर्तन होने के कारण होती हैं। गरम हवा ठंडी हवा की अपेक्षा अधिक हल्की होती है। जब हवा गर्म होती है तो वह फैल कर अधिक हल्की हो जाती है तथा ऊपर को उठती है। यदि कमरे में छत के पास निकासद्वार (outlets) होते हैं तो वह बाहर चली जाती है और बाहर से ताज़ा हवा फर्श के नज़दीक प्रवेश द्वारों से अन्दर आती है।

जब कमरे में आग जल रही है और उसमें बहुत से आदमी रहते हैं तो कमरे की हवा गर्म हो जाती है, वह ऊपर उठती है और ठंडी हवा दरवाजों तथा खिड़कियों में से उसका स्थान लेने के लिए कमरे में अन्दर आती है।

वाहन धाराएँ—गर्म हवा का ऊपर जाना तथा ठंडी हवा का नीचे आना—घरों में कमरों की हवा को साफ करने के लिये बड़ी महत्त्वपूर्ण है। हवा के अन्दर आने तथा बाहर जाने के लिये यथोचित प्रवेश तथा निकास द्वार होने चाहिये।

प्रवेश तथा निकास द्वारों की स्थिति—ठीक तरह से हवादार

घर में ताज़ी हवा के लिए प्रवेश द्वार तथा दूषित वायु के लिए निकास द्वार होने चाहिए। यही नहीं वे उचित स्थानो पर होने चाहिए।

दूषित वायु ताज़ा हवा से अपने उच्चतर तापक्रम के कारण अधिक हल्की होती है। यह ऊपर उठना चाहती है। इसलिए निकास द्वार छत के पास होना चाहिये। व्यजनकों तथा धुंआलों (Sky lights) से ये काम बन जाता है। से ये खुले रखे जाने चाहिये।

कमरे की हवा की अपेक्षा ताज़ी हवा अधिक भारी होती है। इसलिए प्रवेश द्वार फर्श के निकट होने चाहिये। दरवाज़े तथा खिड़कियाँ ताज़ा हवा के आने देने के लिए अत्यन्त कार्यक्षम हैं क्योंकि वे वर्ष के अधिकाँश भाग में खुले रखे जा सकते हैं। वे आमने सामने होने चाहिये तथा उनको खुला रखना चाहिये।

प्रचंड जाड़े के मौसम में जब बहुत से लोग दरवाज़ो तथा खिड़कियों को बन्द रखना पसन्द करते हैं, प्रवेशद्वार का प्रयोग करना आवश्यक हो जायगा। ये फर्श के तल से लगभग ६ फीट ऊँचे रखे जाने चाहिये।

बड़े सार्वजनिक स्थानो में जहाँ व्यजन की प्राकृतिक विधियाँ काफी नहीं हैं कृत्रिम व्यजन के तरीको को काम में लाया जाता है। कमरे से दूषित हवा को बाहर खींचने या कमरे में ताज़ा हवा को जबरदस्ती ढकेलने के लिए या दोनो के वास्ते विशिष्ट यांत्रिक साधनों का उपयोग किया जाता है। जब चिमनी में आग जल रही हो तो बहुत सारी हवा चिमनी से होकर बाहर निकल जाती है।

कभी कभी खींच निकालने वाले पंखों (Exhaust fans) का उपयोग कमरे से हवा को बाहर निकालने के लिये किया जाता है। तब ताज़ा हवा उसका स्थान घेरने के लिए भीतर आती है।

लंदन के पार्लियामेन्ट के भवनों में हवा फ़र्श तथा कमरे की

बैठकों के नीचे छिद्रों में से बलपूर्वक भेजी जाती है। इस तरह से अन्दर धकेली गई हवा को आर्द्र किरमिच (canvas) में से जाने देकर उसे साफ करने तथा उसका तापक्रम तथा आर्द्रता को ठीक करने का प्रबन्ध है।

आधुनिक इमारतें इस तरह से बनाई जाती हैं कि व्यजन के प्राकृतिक साधनों का पूर्णतः उपयोग किया जा सकता है। ठीक तरह व्यजन का प्रबन्ध करने में निम्न लिखित को ध्यान में रखना चाहिए :—

१—ताजा हवा का सीधा तथा बराबर आते रहना तथा दूषित वायु का बाहर निकलना।

२—ताजा हवा शुद्ध स्थान से प्राप्त की जानी चाहिए।

३—हवा के तेज झोंकों को टालना चाहिए।

खराब व्यजन के परिणाम—

खचाखच भरे हुए तथा ऐसे मकानों में जिनमें हवा के आने जाने का अच्छा प्रबन्ध नहीं है, बराबर देर तक रहने से मनुष्य का स्वास्थ्य खराब हो जाता है। उसका शरीर पीला पड़ जाता है और बहुधा उसकी भूख मारी जाती है, अपच तथा उन्निद्र रोग हो जाते हैं। उसकी जीवनी शक्ति नष्ट हो जाती है तथा हानिकारक रोगों का जैसे जुकाम, खाँसी, क्षय, हैजा आदि का आसानी से शिकार बन जाता है।

खराब व्यजन वाले कमरों तथा अधिक भीड़ वाले स्थानों में कुछ ही देर तक रहने से सिरदर्द, चक्कर आना, बेहोशी और कभी-कभी कै हो जाती है।

साराश

वायु, जीवन की एक आवश्यक वस्तु है। ओषजन पर जीवन निर्भर है। यह फेफड़ों में रक्त से मिलती है। और शरीर के हर एक अंग को पहुँचाई जाती है। वायु के अपद्रव्य लटके हुये या

गैसीय होते हैं। वह श्वासोच्छ्वास दहन, तथा विच्छेदन के द्वारा वायु में मिलते हैं। गन्दी वायु स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है। पौधे लगातार वायु को शुद्ध करते रहते हैं। हवायें, वर्षा, ओषजन, सूर्य का प्रकाश भी वायु को शुद्ध करते हैं। प्राकृतिक तथा कृत्रिम वायु, ग्रहण प्रणाली से हमारे घरों तथा भवनों की वायु शुद्ध की जाती है।

प्रश्न

१—मानव प्राणियों के लिए हवा के क्या उपयोग हैं?

२—हवा का संगठन तथा गुणों का वर्णन कीजिए।

३—ओषजन तथा कार्बन द्विओषिद के गुणों का वर्णन कीजिए।

४—हवा में साधारणतः कौन से अपद्रव्य होते हैं?

५—हवा में अपद्रव्य कहाँ से मिलते हैं?

६—हवा को साफ करने वाली प्राकृतिक शक्तियाँ क्या हैं? उनमें हर एक वायु को कैसे शुद्ध करती है?

७—व्यजन से क्या तात्पर्य है? हमारे घरों में यथोचित व्यजन का होना क्यों आवश्यक है?

८—व्यजन की प्राकृतिक विधियों का वर्णन कीजिए।

९—इमारत में प्रकाश तथा निकास द्वार क्यों आवश्यक हैं? कमरे में वे कहाँ होने चाहिए?

१०—कृत्रिम व्यजन की विधियों पर एक छोटी टिप्पणी लिखिये।

अध्याय १७

जल और उसकी प्राप्ति

पानी का उपयोग—संसार में सामान्यतम पदार्थ पानी है। यह जीवन की प्रमुख आवश्यकता है। सारे मनुष्यों, प्राणियो

तथा पेड़ पौधों के निर्वाह तथा वृद्धि के लिए इसकी जरूरत होती है। जल हमारे शरीर के संगठन में भाग लेता है। हमारे शरीर का लगभग ७५% भाग पानी से बना है. हम इसे जल तथा दूसरे ताजगी देने वाले पेय पदार्थों के रूप में लेते हैं। हम जो भोजन करते हैं उन सब में पानी अंशतः मौजूद रहता है।

जो खाना हम खाते हैं उसे घोलने तथा पचे हुए भोजन के शोषण के लिए पानी की जरूरत होती है। यह रक्त को तरल बनाये रखता है और इस तरह खून के बहाव में सहायता करता है। पानी में घुले हुए फालतू पदार्थ मूत्र तथा पसीने के रूप में शरीर से बाहर निकाल दिये जाते हैं। यह शरीर के तापक्रम को ठीक रखता है। यह गर्मी के मौसम में हमारे शरीर को ठंडा रखता है।

घरों में धोने, सफाई करने तथा खाना पकाने के लिए पानी की आवश्यकता होती है। स्नान करने के लिए इसका उपयोग करने पर यह धूल तथा चिकनाई को दूर कर देता है और शरीर के बन्द हो गये छिद्रों को खोल देता है। नालियों तथा गलियों की सफाई के लिए इसकी आवश्यकता होती है। बाग व फसल को सींचने तथा विभिन्न कारीगरी के कामों में इसकी जरूरत पड़ती है।

पानी का संगठन—जल उदजन (hydrogen) तथा ओषजन (oxygen) का एक रासायनिक यौगिक है। बिजली से इसका विच्छेदन किया जा सकता है। ऐसा करने से हमें मालूम होता है कि उदजन के दो और ओषजन का एक आयतन भाग मिलकर पानी बनाते हैं।

पानी गैस, द्रव या ठोस रूप धारण कर सकता है। भाप, बादल, कुहरा, ओस, वर्षा, हिम, ओले तथा बर्फ ये सब पानी के ही रूप हैं।

पानी एक बड़ा भारी विलायक (solvent) है। इसलिए प्रकृति में यह कभी बिल्कुल स्वच्छ अवस्था में नहीं मिलता। बादलों में भाप से द्रवीभूत होने वाला पानी स्वच्छ होता है। वर्षा के रूप में जब यह जमीन की सतह पर पहुचता है तब भी यह काफी साफ होता है। वर्षा के आरंभ की बौछारों में हवा से प्राप्त कुछ गैसे और धूल इसमे मिली होती है।

व्यवहार के लिए यह आवश्यक नही है कि पानी रासायनिक स्वच्छ रूप में हो अर्थात् भाप से द्रवीभूत या स्रवित जल (distilled water) हो। पीने के लिए जल मे साधारणतः थोड़े परिमाण मे घुले हुए कुछ हानिरहित पदार्थ होते हैं।

पीने के लिए अच्छे पानी में निम्न लिखित विशेषताऐं होनी चाहिए:—

१—वह गंध रहित तथा स्वाद रहित हो।

२—वह ताजा, साफ निर्मल तथा चमकीला होना चाहिए। थोड़े परिमाण में देखने पर इसमें किसी तरह का रंग नहीं होना चाहिए। पानी की काफी गहराई से देखने पर उसमें हरापन लिए हुए नीली आभा दिखाई दे सकती है।

३—इसमें कार्बनिक अपद्रव्य तथा चूने के लवण नही होने चाहिए। यह बहुत कठोर नहीं होना चाहिए।

४—इसमें रोगों के कीटाणु नही होने चाहिए।

पानी की प्राप्ति के साधनः—

विभिन्न उद्गम स्थानो से हमें मिलने वाला पानी असल में वर्षा से प्राप्त होता है। जमीन पर गिरने वाला पानी इस तरह बँट जाता है—

१—इसका कुछ भाग जमीन की सतह पर बह कर नदियो, समुद्रो तथा भीलो में चला जाता है।

२—कुछ भाग फिर भाप बन जाता है।

३—कुछ भाग जमीन में चला जाता है और झरनो के रूप में बाहर आता है तथा कुओं को भरता है। इसका कुछ भाग पेड़ पौधों की वृद्धि के लिये काम में लिया जाता है।

जल की प्राप्ति के मुख्य साधन ये हैं:—

१	२	३	४	५	६
वर्षा का पानी	ऊँची सतह का पानी	झरने	कुंए	नदियाँ	झील

१—*वर्षा का पानी*—भाप द्रवीभूत होने से बनता है। अतः प्राकृतिक जलों में यह स्वच्छतम पानी है पर यह उस वायुमंडल म से जिसमें से होकर यह बरसता है कुछ गैसे अपने में मिला लेता है। कस्बो में जहां इतना अधिक धुँआ, गर्द और दूसरे गैसीय एवं ठोस अशुद्धियाँ है जो हवा में घरो तथा औद्योगिक क्षेत्रो से मिलती रहती हैं। अशुद्धियाँ विशेषतः अधिक होती हैं। वर्षा के आरम्भ का पानी अच्छा नहीं होता। कुछ देर बाद पानी स्वच्छ, सुस्वादु तथा वायु मिश्रित होता है। उसे सीमेंट को बनी हुई बंद कुण्डियो या टकियो में इकट्ठा कर ले सकते हैं और पीने के काम में ला सकते हैं।

वर्षा का पानी जल मिलने का नियमित साधन नहीं है क्योंकि भारतवर्ष में मैदानो में वर्षा बहुत कम बार और अनिश्चित होती है।

२—*ऊँची सतह का पानी*—भारतवर्ष के कई भागों में वर्षा का पानी हौज में इकट्ठा किया जाता है और सावधानी से उसको दूषित होने से बचाया जाता है। वह पहाड़ियो या दूसरी ऊँची सतहो से जहाँ वह छोटे नालो में बहता है, प्राकृतिक या कृत्रिम झीलों में एकत्रित किया जाता है।

राजपूताने के कई भागो तथा भारत के दूसरे भागो में पानी इस तरह प्राकृतिक या कृत्रिम जलाशयों में एकत्रित किया जाता है।

PLATE No. 4
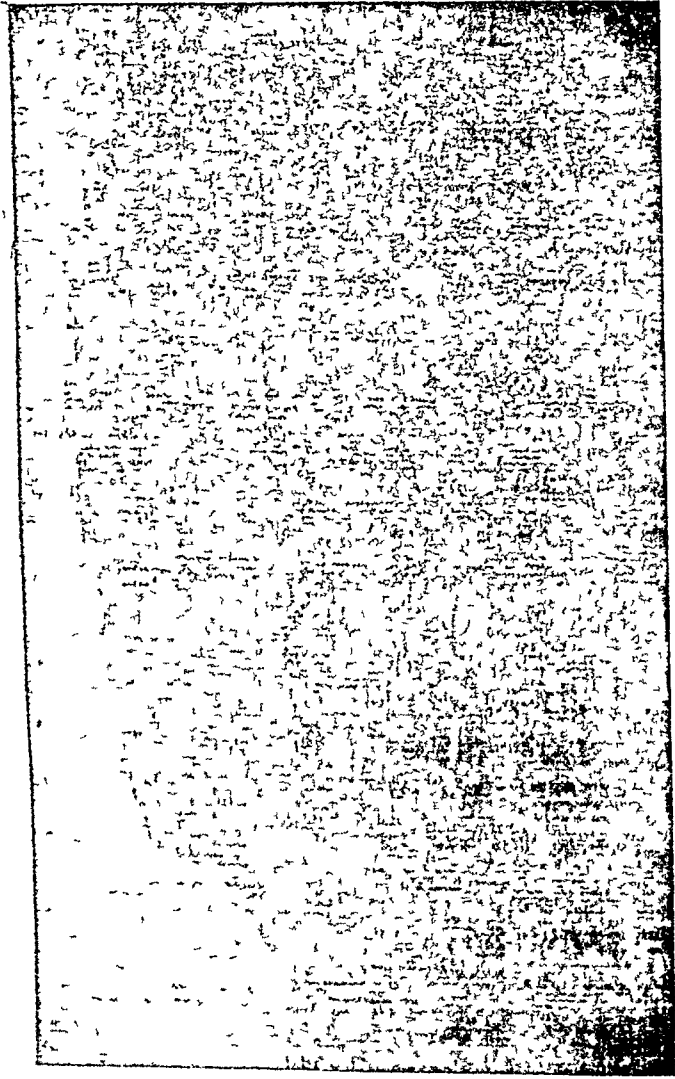
उन स्थानों से यह पानी और लम्बे नलों द्वारा शहरों में लाया जाता है। जलाशयों तथा झीलों की गंदगी से सावधानी से रक्षा की जानी चाहिए। पानी में कुछ काई, दूसरे पौधे और रोग कारक पदार्थ यथा अंडे या कीड़े हो सकते हैं।

३—झरने—वर्षा का पानी जमीन की सूपिर (Porous) सतहों अर्थात् बालू और कंकड़ में से छनने के बाद एक अभेद्य (impervious) सतह अर्थात् चिकनी मिट्टी और चट्टान पर ठहर जाता है। ऐसी सतह के भीतर पानी नहीं जा सकता। वह इस सतह पर बहता है और कुछ स्थानों में मिट्टी (जमीन) की सतह पर आजाता है जहाँ से वह झरने के रूप में बाहर गिरता है। गर्मी की ऋतु में बहुत से झरने सूख जाते हैं।

झरने का पानी अधिकतर अच्छा होता है। बालू और कंकड़ के स्तर से निकलने वाले झरने का पानी उत्तम होता है। चाक या चूने के पत्थर के स्तर के झरने के पानी में चूना मिला होता है और वह पानी कठोर होता है पर उसका स्वाद बढ़िया होता है।

४—कुएँ—सतह के अन्दर पानी मिट्टी की अभेद्य परत द्वारा रुका रहता है। इस पानी को कृत्रिम झरनो के रूप में अक्सर बाहर निकाला जाता है। अभेद्य परत के पानी तक पहुँचने के लिए जमीन में गड्ढा खोदा जाता है, इसे कुआँ कहते हैं। कुएँ उथले या गहरे होते हैं।

उथले कुएँ से पहली अभेद्य परत पर टिका हुआ पानी मिलता है। कुएँ के चारों ओर मिट्टी की सतह में से छनकर गया है। इस तरह के कुएँ के पानी के आस पास की गंदे पानी की कुंडियों से दूषित हो जाने की संभावना रहती है।

यदि भारी वर्षा के बाद जमीन का तल ऊंचा उठ जाता है तो कुन्डियों से मल-मूत्र सीधे कुएँ में पहुंच जाते हैं।
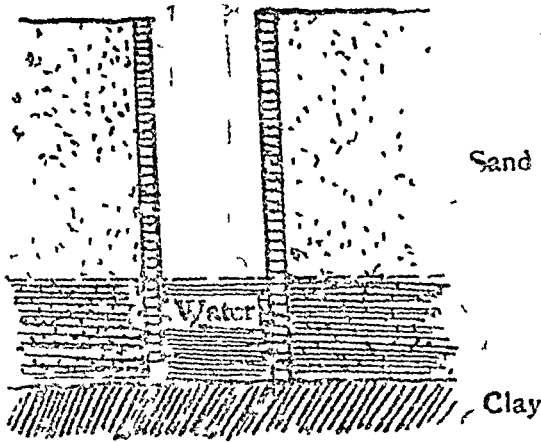
चित्र संख्या ७१—एक उथला कुँआ

सतह या आस-पास की गंदे पानी की कुन्डियों के इस पानी के दूषित होने का यदि कोई अवसर न हो और उसे बराबर निकालते रहे तो यह पानी अच्छा हो सकता है। इस खतरे को
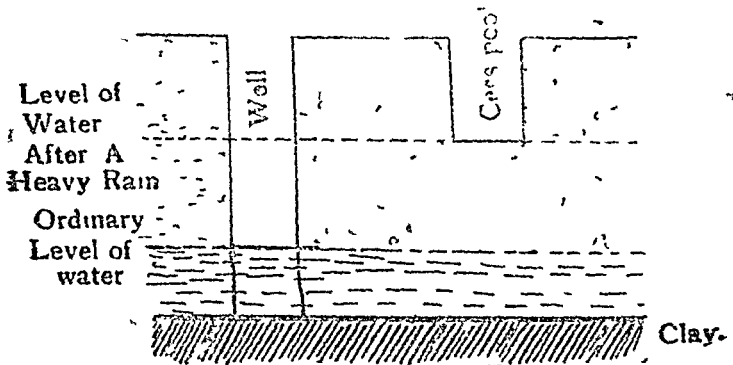
चित्र संख्या ७२ उथले कुएँ के पानी में गंदगी का पहुँचना।

दूर करने के लिये निम्नलिखित उपाय काम में लिए जाने चाहिए:—

१–कुएँ के जल की सतह से ईंटों या पत्थरों से जुड़ाई करना और सीमेंट का सारा पलस्तर या टीप (pointing) करना।

२–सतह से पानी को दूषित होने से रोकने के लिए जमीन की सतह से कम से कम पाँच फुट ऊंची दीवार एवं उठा हुआ चबूतरा होना चाहिये।

३–कुएँ के चारों ओर की जमीन का पटाव कर देना चाहिए।

४–आस पास में गंदे पानी की कोई कुन्डी नहीं होनी चाहिए।

गहरे कुओं में पानी दूसरी अभेद्य परत से निकाला जाता है। कुएँ को पहली अभेद्य परत के आर पार दूसरी अभेद्य परत पर के पानी तक पहुँचने के लिए खोदा जाता है। निम्न लिखित बातों में गहरा कुआँ उथले कुएँ से अधिक अच्छा होता है:—

१–आस पास की नालियों तथा कुन्डियों से इसके गंदे होने की संभावना नहीं रहती।

चित्र संख्या ७३—एक गहरा कुआँ
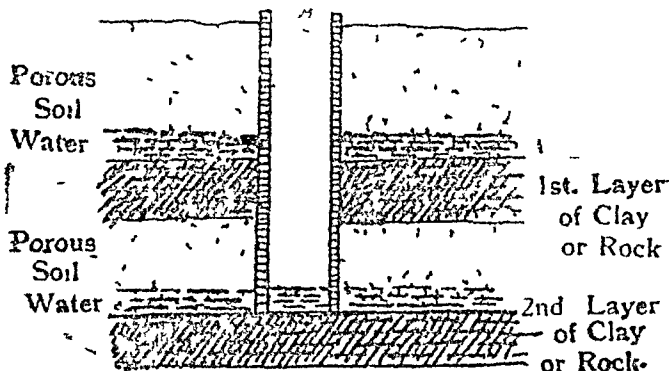
२–उथले कुएँ के पानी से इसका पानी अधिक निर्मल होता है।

३–इससे बड़े परिमाण में जल मिलता है।

४-यह जल्दी नहीं सूखता।

गहरे कुओं का पानी साधारणतः कठोर पर विश्वसनीय और पीने तथा दूसरे घरेलू कामों के लिए अच्छा होता है।

एक खास तरह के गहरे कुएँ में जिसे पाताल तोड़ कुआँ कहते हैं, पानी ज़मीन के तल पर फव्वारे की तरह झपटता हुआ पहुँचता है। इसमें पानी ऐसी अभेद्य परत के ऊपर से निकाला जाता है जिससे पानी का तल जमीन के तल से जहाँ पर कुआँ खोदा गया है, उतना या उससे अधिक ऊँचा होता है।
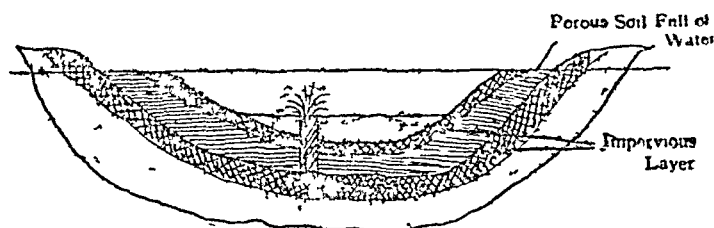
चित्र संख्या ७४—पाताल तोड़ कुँआ

कभी कभी जमीन में पानी तक पहुँचने के लिए गहरे नल गाड़े जाते हैं। पानी पंप द्वारा ऊपर खींचा जाता है। इस तरह का कुँआ ट्यूब-वेल (Tube-well) कहलाता है। इनमें साधारणतः बहुत अच्छा पानी मिलता है।

इस देश के बहुत से भागों में पानी के मिलने के लिए कुएँ ही मुख्य साधन हैं। कुएँ की स्थिति निश्चित करने तथा उसके बनाने में नीचे लिखी बातों को ध्यान में रखना चाहियेः—

(१) कुएँ की दीवारों पर टीप या सीमेंट का पलस्तर किया जाना चाहिये. ज़मीन की सतह से कुएँ कम से कम पाँच फुट ऊँचे होने चाहिये और उन पर मुंडेर का होना ज़रूरी है। बहने वाले पानी को ले जाने के लिये एक वृत्ताकार पक्की नाली कुएँ के चारों ओर होनी चाहिये।

(२) कुएँ के शिखर को एक ढकन से आवृत्त करना चाहिये जिससे धूल, सूखी पत्तियाँ वगैरह न गिरने पाएँ। हाथ के दो पम्पों से पानी को निकालना अधिक अच्छा है। एक पम्प से निकाले हुए पानी को पीने के काम में लेना चाहिये तथा दूसरे पम्प से निकाले हुए पानी को नहाने, कपड़े धोने आदि के काम में लाना चाहिये।

(३) कुएँ से सौ फुट की दूरी तक कोई सूत्रनली या कुंडी या और कोई गंदगी की जगह नहीं होनी चाहिये। रहने के घरों से कुँआ ३० गज की दूरी पर होना चाहिये।

(४) कुएँ के पास कोई पेड़ न होना चाहिये।

(५) कबरिस्तान के पास कुँआ नहीं होना चाहिये।

(६) समय समय पर कुएँ को साफ करने के लिए उसकी दीवारों में चढ़ने वाले हुक लगाये जाने चाहिये।

कुओं के उपयोग के बारे में ध्यान देने योग्य बातें—

१—कुओं को साफ करना चाहिये और समय समय पर लाल बुकनी (पोटेशियम परमैंगनेट) और चूने से उनका निःसंक्रमण (disinfection) करना आवश्यक है।

२—बर्तन तथा कपड़े कुएँ पर न धोये जाने चाहिये। पानी खींचने की रस्सी साफ होनी चाहिये। घिरकी के साथ साँकल और बालटियों का उपयोग करना अच्छा होता है।

नदी का पानी—इसमें आस्रत अपद्रव्य अधिक होते हैं। आदमियों तथा जानवरों द्वारा इसके दूषित होनेकी आशंका रहती है। नदी का पानी काफी हवा मिला हुआ होता है और साधारणतः कुएँ या झरने के पानी की तरह उतना कठोर नहीं होता। बहुत से अपद्रव्य तो तले में बैठ जाते हैं। यह कुछ अंशों तक सूर्य तथा दूसरे प्राकृतिक साधनों द्वारा—बैक्टीरिया, मछली, गोंछी

वगैरह-साफ होजाता है। नदी का पानी साधारणतः मैला तथा अविश्वसनीय होता है और उसे बिना निःस्यन्दको (filters) में स्वच्छ किये हुये काम में नहीं लेना चाहिए।

बहुत से शहरों में पानी नदियों से प्राप्त किया जाता है,यथा लखनऊ में गोमती नदी से, दिल्ली और आगरा में यमुना नदी से और कलकत्ता में हुगली नदी से पानी लिया जाता है। यह पानी उपयोग से पहिले निःस्यन्दकों से अच्छी तरह साफ कर लिया जाता है।

६-*झीलें*—ऊंची सतह के प्राकृतिक जलाशय है। ये झीलें साधारणतः शहरो से दूर पहाड़ो में होती है। यदि इन झीलों के पास कोई सड़ता हुआ जानवर या पेड़ पौधे न हों तो इनका पानी अच्छा होगा।

बहुत से शहरो में झीलो से पानी आता है। बम्बई तथा मद्रास में पहाड़ियों की झीलो से पानी लिया जाता है।

झीलों का पानी सामान्यतः स्वच्छ तथा पीने के लिए उपयुक्त होता है।

शहरों में पानी का वितरण—शहरो में जल का वितरण बड़ी झीलो तथा कृत्रिम हौजो में समहीत ऊँची सतह के जल से किया जाता है। कई शहरों में पानी कई कुँओ से या नलकूपो (Tube-wells) से जो शहर से काफी दूर खोदे जाते है, लिया जाता है। पप द्वारा पानी ऊपर खीचा जाता है और बड़े बड़े हौजो में इकट्ठा किया जाता है।

इन हौजो को जानवरो, आदमियो या प्रकृति द्वारा दूषित होने से बचाया जाता है। नलो द्वारा पानी निःस्यंदकों (Filter beds) को ले जाया जाता है जहां पर यह अच्छी तरह छनता है और थोड़े परिमाण मे क्लोरीन या ब्लीचिंग पाउडर (Bleaching powder) डाल कर उसको कीटाणु रहित बना

देते हैं। इसके बाद नलों द्वारा वह शहर में भेजा जाता है और प्रत्येक घर या गलियों में लगे नलों में उसका वितरण किया जाता है।

हौजो में पानी लाने और उसे इकट्ठा करने, पानी के गुणों को सुधारने और निःस्यंदन एवं निःसंक्रमण द्वारा उसे पीने के योग्य बनाने तथा नलों व टोंटियो द्वारा उसका वितरण करने की इस विधि को 'जल वितरण विधि' कहते हैं। इस सारे काम में बहुत रुपया खर्च होता है पर पानी के इस तरह वितरण होने से बहुत बड़े लाभ हैं। बड़े शहरों में जल वितरण योजना के जारी करने से हैजे, और दूसरी महामारियो का प्रचलन बहुत कुछ रोका जा चुका है। नगर निवासियों के स्वास्थ्य में भी उससे काफी सुधार हुआ है। जल वितरण का प्रबंध शिक्षित और जिम्मेदार व्यक्तियो के नियंत्रण में है और साधारणतः यह दूसरी वितरण विधियो से जिन पर आदमी भरोसा कर सकता है अच्छा है।

जल वितरण की अच्छी विधि में यह जरूरी है कि गिरे हुए जल को नालियो द्वारा वहा ले जाने का उचित प्रबन्ध होना चाहिए जिससे यह वहाँ गढैया न बनाले जिसमें मच्छर पलें और शहर में मलेरिया रोग फैल जाय।

जल की अशुद्धियाँ—जल में पाई जाने वाली वस्तुएँ 'अशुद्धियाँ' कहलाती है। वे आस्रव (नहीं घुली हुई) या घुली हुई होती हैं।

जब पानी रक्खा रहता है तो आस्रत अशुद्धियाँ नीचे जम जाती हैं। उनको छान कर भी दूर किया जा सकता है।

आस्रत अशुद्धियों में निम्न लिखित चीजें होती हैं:—

(क) बालू, लकड़ी आदि के महीन टुकड़े। ये हानिकारक होते हैं इनसे पेट व अन्तड़ियों में रगड़ पैदा होने से अतिसार रोग हो सकता है।

(ख) हैजा, मोतीभरा जैसे रोगों के कीटाणु। ऐसा पानी बड़ा हानिकारक होता है।

(ग) राउण्डवर्म व गिनी वर्म (वाला) जैसे कृमियों के अंडे। ये अण्डे शरीर में प्रविष्ट होकर कृमियों में विकसित होते हैं। ये कृमि अत्यन्त खतरनाक हैं।

निम्न प्रकार की घुली हुई अशुद्धियाँ पानी में हो सकती हैं :—

(क) अकार्बनिक—विभिन्न तहों से जिसमें से होकर पानी बहता है खनिज लवण पानी में घुल जाते हैं। ये लवण निम्नलिखित हैं :—

(१) केलसियम कार्बनेत (calcium carbonate)—यह कार्बन द्विओषिद गैस की मौजूदगी में पानी में घुल जाता है। इससे पानी में अस्थायी कठोरता आ जाती है और उबालने से वह दूर हो जाती है। कार्बन द्विओषिद निकल जाता है और केलसियम कार्बनेत नीचे बैठ जाता है।

(२) केल्सियम व मगनेसियम के दूसरे लवण गंधेत (sulphates), क्लोराइड या नत्रेत (Nitrates)—इनसे पानी में स्थायी कठोरता आ जाती है जो उबालने पर भी दूर नहीं होती पर चूना या कपड़ा धोने का सोडा डालने से पानी मृदु बन जाता है।

कठोर पानी में ये अवगुण होते हैं :—

(अ) यदि ये अशुद्धियाँ अधिक परिमाण में होती हैं तो अतिसार तथा पाचन संस्थान में दूसरे बखेड़े करती हैं।

(आ) साबुन व्यर्थ खर्च होता है। यह लवण के साथ मिल जाता है।

(इ) खाना पकाने के लिए कठोर पानी अच्छा नहीं होता।

(ई) केतलियों, हाथ-मुँह धोने के वर्तनों में और चमड़ी तथा वस्त्रों पर पपड़ी रह जाती है। इसके कारण केतली गर्मी की कुचालक बन जाती है और वह फूट जा सकती है।

(३) मलमूत्र से या गदे पानी की कुँडी से दूषित होने से या नमकीन या समुद्री झीलों से प्राप्त नमक।

(४) सीसे के लवण। ये ज़हरीले होते हैं।

(ख) *कार्बनिक पदार्थ*—इनसे अतिसार या पेचिश रोग हो सकते हैं।

(ग) *घुली हुई गैसें*—कार्बन द्विओषिद और उदजन गधिद (hydrogen sulphide)।

मलमूत्र से उत्पन्न गैसों से गले का नासूर, अतिसार, डिप्थीरिया, मोतीझरा, हैजा आदि रोग हो सकते हैं।

मैले पानी को पीने के बुरे परिणामों का जिक्र पहले किया जा चुका है। पानी में कार्बनिक पदार्थों की मौजूदगी बड़ी खतरनाक है। यदि पानी में किसी रोग के कीटाणु मौजूद हैं तो उससे रोग के फैलने की आशङ्का होती है। पीने के जल में संक्रमण होने से विशूचिका (Cholera) तथा मोतीझरा रोग हो सकते हैं।

पीने के लिए विश्वसनीय स्थान से प्राप्त अच्छे पानी को ही पीना चाहिये।

पानी की शुद्धि

पीने के पानी को शुद्ध करने की आवश्यकता भारतवर्ष में

बहुत प्राचीन काल से मानी गई है क्योंकि साफ़, रंगविहीन पानी और इन गुणों से रहित पानी को पहिचानने में ऊँचे दर्जे की बुद्धि की जरूरत नहीं होती। पानी को यहाँ किसी न किसी रूप में छाना जाता रहा है। पानी को कपड़े द्वारा छानने का व्यवहार सारे देश में प्रचलित है। कुछ जातियों द्वारा पानी को बालू तथा कंकड़ में से भी छाना जाता है। इन विधियों से कहीं अच्छा शहरों का जल-वितरण क्रम है। उसका उद्देश्य निःसंक्रमण, वायुसम्मिलन, निःस्यंदन तथा नागरिकों को स्वच्छ पानी का वितरण करना है।

कुछ अंश तक पानी प्राकृतिक विधियों द्वारा साफ किया जाता है। स्थिर जल में तलछट के नीचे बैठ जाने से पानी स्वच्छ हो जाता है। सूर्य के प्रकाश से कुछ कार्बनिक पदार्थ स्वच्छ हो जाते हैं। यह क्रिया ऐसी होती है कि कार्बनिक पदार्थों का ओषदी-करण हो जाता है। पानी को स्वच्छ करने की प्राकृतिक विधियाँ अबाध गति से चल रही हैं पर इन शक्तियों को अपना कार्य करने के लिए समय तथा अवसर अपेक्षित हैं। नदियों तथा नालों का पानी कुछ अंश में इस तरह शुद्ध हो जाता है।

व्यवहार में अधिक कार्यक्षम और तेज़ विधियाँ पानी की घुली हुई और आसक्त अशुद्धियों को दूर करने के लिए काम में लाई जाती हैं। उन्हें तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है— भौतिक, रासायनिक तथा यांत्रिक।

भौतिक विधियाँ

उबालने से रोगों के कीटाणु मर जाते हैं और घुली हुई कार्बनिक अशुद्धियाँ हानिरहित करदी जाती हैं। बार बार उबालने से पानी पीने के लिए पूरी तरह से ठीक हो जाता है। पानी को विश्वसनीय बनाने के लिए उसे कम से कम १५ मिनट

तक उबालना चाहिए। ढके हुए साफ़ बर्त्तनों में उसे संग्रह करना चाहिए।

उबालने पर उसमें घुली हुई हवा निकल जाती है। उबाला हुआ पानी फीका तथा कुछ अरुचिकर होता है। पर यह विश्वसनीय है। एक बर्तन से दूसरे बर्तन में बार बार डालने से इसमें कुछ हवा मिलाई जा सकती है। यदि पानी के दूषित होने का कुछ भी ख़तरा हो विशेषतः यदि महामारी फैल रही हो तो उपयोग से पहले पानी को उबाल लेना चाहिए।

स्रावण (Distillation)—पानी को उबाल कर भाप बनाने तथा उस भाप को शीतकों में ठण्डा करके द्रवीभूत करने की विधि का नाम स्रावण है। सब तरह की अशुद्धियाँ पीछे रह जाती है और पानी सब प्रकार से हानिरहित हो जाता है। स्रवित जल स्वच्छतम पानी होता है।

इसमें लगने वाले खर्च तथा श्रम के कारण यह विधि घरेलू कामों के लिए शायद ही काम में ली जाती है।

आकस्मिक आवश्यकताओं में जैसे जहाज पर पीने का पानी समाप्त हो जाने पर समुद्र के पानी को स्रावण द्वारा शुद्ध किया जाता है। अदन में पीने के पानी का मुख्य साधन स्रावण है।

रासायनिक तरीके

स्कन्धन या अवक्षेपण (Coagulation or Precipitation) विधि का उपयोग गँदले पानी को साफ करने में किया जाता है। मिट्टी तथा कीचड़ वाले पानी को स्वच्छ करने तथा रङ्ग हटाने के लिए फिटकरी बड़ी उपयोगी चीज है।। आस्रस्त अशुद्धियाँ नीचे बैठ जाती हैं। फिटकरी बेक्टीरिया को भी दूर कर देती है। पानी साफ करने के लिये फिटकरी का प्रमाण पानी के तथा दूसरी बातों पर निर्भर है। साधारणतः ०·१ से ६ ग्रेन प्रति

गैलन तक फिटकरी काफी होती है।

इन तरीकों का प्रयोग घरेलू तथा सामाजिक कामों के लिये होता है। आसक्त अशुद्धियाँ अवच्छिन्न हो जाती हैं और तले पर उनका ढेर का ढेर बैठ जाता है।

स्कंधन के पश्चात् पानी को निःस्यन्दक स्तरों (filterbeds) पर डाला जाता है। छोटे परिमाण में उपयोग से पहले इसे घरेलू निःस्यन्दकों (जिनका वर्णन आगे किया जायगा) में छान लेना चाहिये।

निःसंक्रमण—पानी में एक कीटाणु नाशक पदार्थ डाला जाता है ताकि बैक्टीरिया या रोग के कीटाणुओं का पूर्ण नाश हो जाय। कीटाणु नाशक पदार्थ जो इस काम के लिए साधारणतः प्रयुक्त होते हैं ये हैं:—

१—लाल बुकनी (पोटेशियम परमैंगनेट)

२—ब्लीचिंग पाउडर

३—क्लोरीन

४—नीला थोथा (Copper sulphate)

५—चूना

६—सोडियम द्विगंधित (Sodium bisulphite)

७—नील लोहित्तोत्तर या पराकासनी किरणें (Ultra violet rays)

१—लाल बुकनी का प्रयोग कुओं का पानी साफ करने के लिये अक्सर किया जाता है। पानी के रोगाणुओं को मारने के लिए रासायनिक पदार्थों में यह सर्वोत्तम है। यह हानिरहित है तथा पानी को शुद्ध करने का अत्यन्त सफल साधन है। इसका उपयोग खास तौर से हैजे के कीटाणुओं को मारने के लिये किया जाता है। लगभग १-६ आउन्स लाल बुकनी पानी भरी बालटियों में घोली जाती है और उसे कुओं में उड़ेल दिया जाता है

और कुँए के पानी को खूब हिलाया जाता है। यह कीटाणुओं तथा कीटाणुओ को पालने वाले कार्बनिक पदार्थ को नष्ट कर देता है। यदि पानी बहुत ख़राब हो तो लाल बुकनी अधिक परिमाण में होनी चाहिये। लाल बुकनी को यथेष्ट परिमाण में डालना चाहिये जिससे कुँए में डालने के बाद कम से कम एक घंटे तक रंग घना रहे।

लाल बुकनी दिन में देर में या रात के समय जब पानी निकाला नहीं जाता डालना चाहिये ताकि पानी शांत रहे। दूसरे दिन प्रातः काल पानी पीने योग्य हो जाता है। यदि वह थोड़ा गुलाबी रंग का भी हो तो भी पीने में कुछ हर्ज नहीं।

लाल बुकनी का उपयोग घर पर या पिकनिक में थोड़े लोगो के प्रयोग के लिये पानी को साफ करने के लिये किया जा सकता है।

२—ब्लीचिंग पाउडर—चूने के क्लोराईड का उपयोग पानी को निर्मल बनानेके लिये बहुधा किया जाता है। इससे क्लोरीन निकलती है जो कीटाणुओ को नष्ट कर देती है। दस लाख गैलन पानीके लिये साधारणत. ५ पाउंड ताजा ब्लीचिंग पाउडर काफी है। प्रतिक्रियाके लिये अपेक्षित समय निश्चित नहीं है पर साधारण अवस्थाओ में आधे घंटे में पानी हानि रहित हो जाता है।

३—क्लोरीन गैस—बड़े जल स्वच्छ करने वाले यन्त्रो में अब बहुतायत से प्रयुक्त होती है। यह पेचिश, हैजे तथा मोतीझरा के कीटाणुओ को मार देती है।

विभिन्न तरह के बने यंत्रो से छन कर आये हुये पानी में क्लोरीन मिलाई जाती है। ब्लीचिंग पाउडर की अपेक्षा अधिक सुगमता से पानी में मिलाई जा सकने के कारण इसका उपयोग अधिकाधिक बढ़ता जारहा है। यह एक गैस है और इसी काम के लिये विभिन्न व्यवसाइयो द्वारा तैयार की जाती है

और फौलाद के बने बड़े घड़े गोल पीपो में द्रव रूप में भर कर बेची जाती है।

४—*नीलाथोथा*—तालावों में काई तथा जल के दूसरे पौधों (डायेटम) की पढ़ती का नाश करने के काम में आता है।

५—*चूना*—भी कीटाणुओं को नष्ट करने के लिये प्रयुक्त होता है। यह कमजोर कीटाणुनाशक पदार्थ है, १००० घन फुट पानी की शुद्धि के लिए ४ पाउन्ड चूने की जरूरत पड़ती है।

६—*सोडियम द्विगंधित*—इसके १५ ग्रेन प्रति पाइंट जल आध घंटे में कीटाणुओ को नष्ट करने के लिए काफी है। यह जल में थोड़ा सा अम्लीय स्वाद पैदा करता है।

७—साफ़ पानी में वर्तमान कीटाणु पारद वाष्प लैंप (Mercury Vapour Lamp) से आने वाली पराकासनी किरणो से नष्ट किये जा सकते हैं।

यान्त्रिक विधियाँ

रासायनिक तरीके से साफ किये हुए पानी को बालू तथा कङ्कड़ की विभिन्न परतो में जो एक बड़े बर्तन या तालाब में क्रम से रखी होती हैं, डालने की विधि को निःस्यन्दन कहते हैं। इन परतो से हो होकर निकलने के बाद पानी निर्मल हो जाता है, और उसकी अशुद्धियाँ निकल जाती हैं।

गृहोपयोगी निःस्यंदक (Domestic filters)—घरों के कामो के वास्ते थोड़े परिमाण में पानी का निःस्यंदन विभिन्न तरह के निःस्यन्दकों से किया जाता है इनमें सबसे अच्छा पास्त्यूर चैंबरलेन निःस्यदक (Pasteur Chamberlain Filter) है। इसमें एक बाहरी चिकना बर्तन होता है जिसमें एक भीतरी नली रहती है जो ऊपर को बंद तथा उम्दा खुरदरी चीनी मिट्टी की बनी हुई होती है। इस नली में बड़े महीन छिद्र होते हैं। इन छिद्रो में से होकर सूक्ष्मतम कीटाणु भी नहीं आ जा सकता।

पानी बाहरी नली में डाला जाता है। वह छिद्रों में से होकर भीतरी नली में चला जाता है और नीचे के सिरे से बाहर निकाला जा सकता है। कीटाणु तथा दूसरी अशुद्धियाँ पीछे रह जाती हैं।

निःस्यंदक नली (भीतरी नली) हटाई जा सकती है उसे खौलते हुए पानी में रख कर प्रति सप्ताह अच्छी तरह साफ व निःसंक्रमित करना चाहिये।

यह निःस्यंदक बड़ा अच्छा काम करने वाला है और "यह जल से होने वाली बीमारियों को रोकता है"। निःस्यंदक नली के छिद्र बहुत छोटे होने के कारण पानी धीरे-धीरे छनता है।

Porous Filter Tube
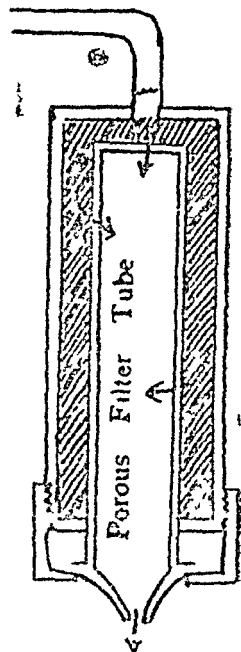
चित्र संख्या ७५—पास्त्यूर-चैम्बरलेन निःस्यंदक

भारतीय निःस्यंदक में तीन मिट्टी के घड़े होते हैं जो एक लकड़ी की बनी घन्हेड़ी (Stand) पर एक दूसरे के ऊपर रखे होते हैं। ऊपरके दो घड़ों के तले में छोटे छोटे छेद होते है जिनमें रूई या सूखे घास की डाट लगा दीजाती है। ऊपरके घड़े में बालू तथा बीच के घड़े में पत्थर के टुकड़ों की तह पर लकड़ी का कोयला रखा होता है।

पानी ऊपर के घड़े में डाला जाता है। इस घड़ेमें यह बालूमें से तथा दूसरे घड़े में कोयले और पत्थर में से छनकर तीसरे घड़े में जाता है।
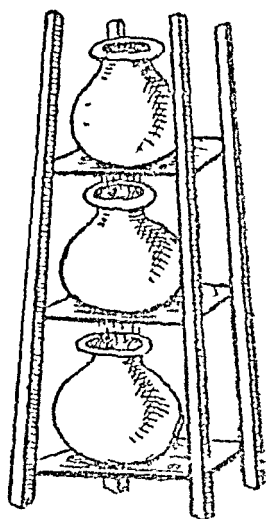
चित्र संख्या ७६—भारतीय निःस्यंदक

इस विधि से पानी का निःसंक्रमण नहीं होता, केवल आस्त्रस्त अशुद्धियाँ दूर होती हैं। इस पानी को प्रयोग में लाने से पहले कीटाणुओं को मारने के लिए उबालना आवश्यक है।

सार्वजनिक जल वितरण प्रबंध में प्रयुक्त निःस्यदक स्तर—इसमें एक दूसरे पर क्रमानुसार रखी हुई बालू तथा कंकड़ की तहें होती हैं। बालू और कंकड़ की तहें विभिन्न गहराई में होती हैं। सब से ऊपर की महीन बालू की परत लगभग ३० इंच गहरी होती है। यह तह कंकड़ की विभिन्न मोटाई में रखी हुई चार तहों पर होती है। नीचे की तह मोटे कंकड़ों की होती है। इन का क्रम कुछ-कुछ नीचे दिये गये हिसाब जैसा है :—

महीन बालू		३० इंच
बटिये (Pebbles)	$\frac{१}{८}'' + १\frac{१}{८}''$	३ इंच
,,	$\frac{१}{४}'' + \frac{१}{८}''$	३ ,,
,,	$\frac{३}{४}' + \frac{१}{२}''$	३ ,,
,,	$१\frac{१}{४}'' — १''$	६ इंच

टोंटियों से धार के रूप में पानी को निकाल कर उसमें पहले हवा मिलाई जाती है। वायु मिश्रित पानी में बहुत सी अशुद्धियों को अवक्षिप्त करने के लिए फिटकरी डाली जाती है। तब इसे तल-छट वाले तालाबों (Sedimentation tanks) में डाला जाता है जहाँ आस्त्रस्त अशुद्धियों का अधिकांश नीचे बैठ जाता है। साफ पानी को साइफन (Siphon) द्वारा निःस्यंदक स्तरों में ले जाते हैं जहाँ सारी अशुद्धियाँ और कीटाणु लगभग पूरी तरह दूर कर दिये जाते हैं।

पानी में कीटाणुओं को मारने के लिए क्लोरीन भी डाली जाती है।

निःस्यंदक न केवल छनने की ही विधि है। यह सतह अप-शोषण विधि भी है। दूर किये जाने वाले कण निःस्यंदक के कणों

के बीच के छिद्रों से कहीं अधिक छोटे होते हैं। वे छानने के माध्यम (बालू तथा कंकड़) की सतह पर चिपक जाते हैं और छानने वाले माध्यम के रास्ते के मोड़ तथा कोनों में पकड़ लिए जाते हैं।

बारह घंटे से अधिक काम कर लेने के बाद निःस्यंदक की सतह पर बेक्टीरिया से उत्पन्न लसदार जिलेटीन का एक पटल (film) बन जाता है। इस पटल में रंग का शोषण हो जाता है। बेक्टीरिया के पथ में रुकावट पड़ जाती है और आसस्त्व एवं कलोदीय (colloidal) पदार्थ को पानी के साथ नहीं जाने दिया जाता।

पानी का दूषित होना

जल में अशुद्धियाँ (१) उसके आदिस्थान पर, (२) आदि स्थान से संग्रह स्थान तक आने में तथा (३) संग्रह स्थान से मिल सकती है।

(क) पानी का आदिस्थान पर गंदा होना

पानी आदिस्थान पर कुँए, तालाब या हौज में सड़ी गली पत्तियों और दूसरे कार्बनिक पदार्थों के पड़ने से दूषित हो सकता है। कार्बनिक पदार्थ या तो कुएँ या तालाब में हवा के झोंके से पड़ सकता है या आसपास की कुंडियों या मलमूत्र की नालियों में से सोख लिया जाकर उसमें पहुँच सकता है।

कुओं के चबूतरों तथा तालाबों पर लोगों के कपड़े धोने से वहाँ का पानी गंदा हो जाता है। कुँओं पर पशुओं को पानी पिलाना तथा उन्हें नहलाना बहुत ही बुरी आदत है।

धोबी तालाबों के पानी को गंदा कर देते हैं।

लोग कुँओं पर नहाते हैं। वे पानी निकालने के लिए गंदे बर्तन तथा मैली रस्सी का प्रयोग करते हैं।

कुएँ ढके हुए होने चाहिये। यदि तालावों से पीने का पानी लिया जाय तो उनको केवल इसी काम के लिये रख छोड़ना चाहिये।

मल मूत्र तथा मिलों और कारखानों के पानी को नदियों में वहा दिया जाता है। इन्हें शहरों से दूरी पर नदी में डालना चाहिये। जानवरों के शव और सब तरह की वस्तुओं का विनाश उन्हें नदियों में डाल कर किया जाता है।

(ख) आदिस्थान से संग्रहस्थान के बीचमें पानी का गंदा होना

खाल की बालटियाँ और मशकें जो सामान्यतः पानी को निकालने तथा उसका वितरण करने के लिये प्रयुक्त होती हैं गंदी हो सकती हैं और उनसे विभिन्न रोगों के कीटाणु पानी में मिल सकते हैं।

पानी को लाने ले जाने के लिये प्रयुक्त दूसरे बर्तन भी पूरी तरह साफ होने चाहिये। उन्हें सूखी जगह पर रखना चाहिये जहाँ किसी रोग के कीटाणु के पैदा होने का खतरा न हो।

(ग) संग्रह स्थान में पानी का गंदा होना

भारतवर्ष में पानी को रखने के लिये जो मिट्टी के घड़े काम आते हैं उन्हें अक्सर साफ कर लेना चाहिये और यथासंभव जल्दी बदल भी देना चाहिये। उनके छिद्रों में से होकर कार्बनिक पदार्थ तथा धूल जल्दी अन्दर चले जाते हैं और पानी ठंडा नहीं होता। वे कीटाणुओं के पैदा होने और पलने के बड़े अच्छे स्थान हो जाते हैं।

ताँबे या पीतल या लुक फेरे हुये (glazed) मिट्टी के बर्तनों में पानी रखना चाहिये। इस काम के लिये जस्तेदार लोहा सर्वोत्तम है। बड़े हौज भी जस्तेदार लोहेके बने हुए होने चाहिये। उनको समय समय पर सारा पानी निकाल कर साफ करना जरूरी है। पीने के पानी को ठंडा करने के लिये उसे मिट्टी के बर्तनों में रखना चाहिये। इस काम के लिए लकड़ी के बर्तन अनुपयुक्त हैं।
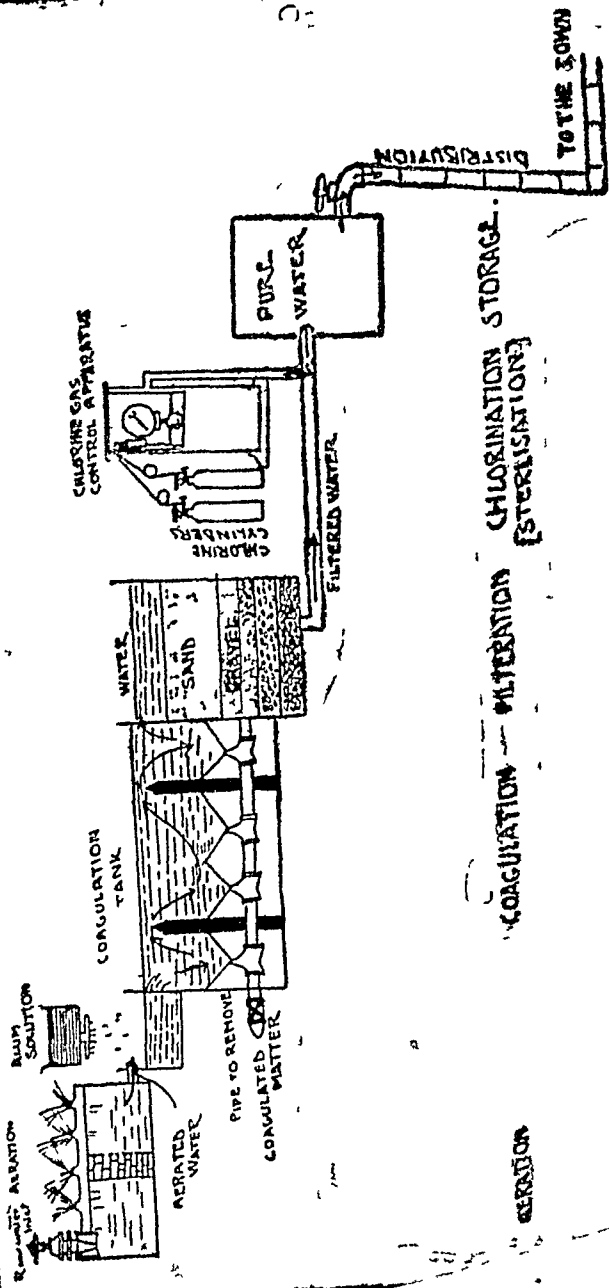
चित्र संख्या ७७–एक आधुनिक निःस्यंदन यंत्र

पानी को इकट्ठा करने के लिये प्रयुक्त बर्तनों को एक सूखे स्थान पर लकड़ी की या धातु की बनी तिपाई या खास तौर पर बनाये गये चबूतरों पर रखना चाहिये। उनको ज़मीन पर न रखने देना चाहिए। यहाँ पानी आसानी से ख़राब हो सकता है। उनको हमेशा ढके रखना चाहिये।

सारांश

जल पीने के लिये चाहिए। जल हमारे शरीर के कई कामों में आता है। खाने को पचाने, तथा घोलने, रक्त को तरल बनाने, फालतू पदार्थों को निकालने, शरीर को ठण्डा रखने इत्यादि खाना पकाने, धोने, सफाई करने, खेती बाड़ी तथा विभिन्न कारखानों के काम में इसकी जरूरत पड़ती है। पीने वाला पानी गन्ध रहित, स्वाद रहित, साफ, निर्मल तथा चमकीला होना चाहिए। इसमें अपद्रव्य नहीं होने चाहिये और यह कीटाणु रहित होना चाहिए।

पानी की प्राप्ति के साधन निम्नलिखित हैं:—

वर्षा, ऊँची सतह का पानी, झरने, कुँए, नदियाँ तथा झीलें। तालाबों और जलाशयों का पानी बिलकुल स्वच्छ नहीं होता। कुँए उथले, गहरे तथा पाताल तोड़ होते हैं। कुँए सावधानी से बनाने चाहिए ताकि पानी के दूषित होने का भय न रहे।

पानी, आदि स्थान पर, आदि स्थान से संग्रह स्थान तक आने में तथा संग्रह स्थान पर दूषित हो सकता है। जल की अशुद्धियाँ घुली हुई या बिना घुली हुई हो सकती हैं। जल कई तरह शुद्ध किया जा सकता है। स्रावण तथा उबालना कभी २ काम में लाया जाता है। कई दवाइयाँ जैसे:—फिटकरी, लाल दवाई, क्लोरीन पानी को शुद्ध करने के काम में ली जाती हैं। घरों के कामों के लिये पानी का निःस्यंदन विभिन्न तरह के निःस्यंदकों से किया जाता है। ठीक निःस्यंदक सार्वजनिक जल

वितरण में किया जाता है। इस जल में फिल्टर करने के पश्चात् कीटाणु मारने के लिये क्लोरीन भी डाली जाती है। पानी अच्छी जगह पर रखना चाहिये ताकि इसमें अशुद्धियाँ न मिल सकें।

प्रश्न

१—अच्छे पीने योग्य पानी के विशिष्ट गुण क्या हैं ?

२—अशुद्ध पानी के पीने से क्या परिणाम होते हैं ?

३—पानी की प्राप्ति के मुख्य साधनों का वर्णन कीजिये।

४—पानी में विभिन्न अशुद्धियाँ क्या होती हैं ?

५—पानी को साफ़ करने के लिये प्रयुक्त विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिये।

६—"पानी किस तरह गन्दा किया जा सकता है ?" इस पर एक छोटी टिप्पणी लिखिये।

७—शहरों में जल वितरण के प्रबंध पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

८—स्वास्थ्य विज्ञान के मुताबिक साफ़ पानी में और रासायनिक स्वच्छ जल में क्या अन्तर है ?

९—छुट्टी पर यात्रा में जा रही एक छोटी मण्डली के लिये पानी को साफ करने के लिये सब से अधिक उपयुक्त विधि संक्षेप में वर्णन कीजिये।

१०—यदि आपके शहर में हैजे का एक रोगी हो तो आप पीने के पानी का क्या करेंगे ?

अध्याय १८

भोजन

भोजन की विभिन्न किस्मों का सङ्गठन अलग-अलग है। भोज्य पदार्थ जो हमें मिलते हैं, अनेक हैं। उनका सङ्गठन तथा गुण जानना आवश्यक है ताकि हम अपने शरीर की आवश्यकताओं के मुताबिक अपने भोजन के लिये उपयुक्त पदार्थों को चुन सकें।

शरीर प्रोटीनों, कर्बोदेतों, वसाओं, लवण और पानी से बना है। यह प्रत्यक्ष है कि ये पदार्थ हमारे भोजन में होने चाहिए। शरीर के उन भागों को जो अभी बढ़ रहे हैं, नये तन्तुओं को बनाने तथा काम में आने से टूटे व घिसे हुए शरीर के सारे भागों की मरम्मत करने के लिये प्रोटीनों की जरूरत पड़ती है।

गर्मी एवं शक्ति पैदा करने के लिये कर्बोदेतों तथा वसाओं की आवश्यकता पड़ती है। शरीर का तापक्रम ९८·४° फा० रहना चाहिए। ओषजन कर्बोदेतों तथा वसाओं के साथ मिलता है और उनमें होनी वाली रासायनिक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप गर्मी पैदा होती है। शरीर में किये जाने वाले कार्यों तथा उन सारे बाहरी कामों के लिए जो हम करेंगे शक्ति की जरूरत पड़ती है। पाचन, खून को पंप करने, सोचने तथा सब तरह की गतियों के लिये शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। जब कोई काम किया जाता है शक्ति का उपयोग होता है तथा कर्बोदेतों एवं वसाओं की शक्ति के उत्पन्न करने और उसकी हानि को पूरा करने के लिये जरूरत पड़ती है।

हड्डियों तथा खून के लिए लवणों की जरूरत होती है। पाचन रसों के बनाने में उनकी आवश्यकता पड़ती है। वे भोजन को सुस्वादु बना देते हैं।

पृष्ठ २८ पर बतलाये गये इतने सारे कामों के लिये पानी की ज़रूरत पड़ती है। विटेमिन भोज्य पदार्थों में मिलते हैं और पाचन, पोषण तथा शरीर को स्वस्थ रखने एवं रोगों से लड़ने के लिये जरूरी है (इस सम्बन्ध में पृष्ठ २८ देखिये)।

अन्तड़ियों को साफ रखने के लिए भोजन का कुछ भाग ऐसा मोटा पदार्थ होना चाहिए जो न पचे और मल को अन्तड़ियों में चिपकने न दे।

अब हमें साधारण खाद्य पदार्थों की जाँच करनी चाहिये और उनके सङ्गठन तथा गुणों को जानना चाहिए।

खाना प्राणिज या वानस्पतिक हो सकता है।

प्राणिज भोजन

दूध—एक पूर्ण खाद्य पदार्थ है क्योंकि इसमें प्रोटीन, वसाएँ, कर्बोदित, खनिज लवण और विटेमिन तथा पानी भी है—वास्तव में शरीर के पोषण के लिए आवश्यक प्रत्येक वस्तु इसमें होती है।

माँ के दूध में गाय के दूध की अपेक्षा अधिक शर्करा होती है पर प्रोटीन तथा लवण कम होते हैं शिशुओं के लिए माँ का दूध और लड़कों तथा बालिग आदमियों के लिए गाय का दूध सर्वोत्तम है। काढ़ा हुआ दूध (skimmed milk) वह दूध है जिसमें से मलाई (अधिकांश वसा) निकाल ली गई है। यह भी बच्चों की बढ़ती तथा स्वास्थ्य के लिए अच्छा है। इसमें प्रोटीन, शर्करा, लवण और विटैमिन होते हैं।
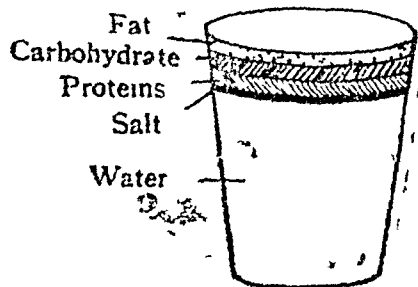
चित्र संख्या ७८—दूध का सङ्गठन

दूध को कभी-कभी वाष्पीभूत करके उसका महीन सूखा चूर्ण बना लिया जाता है और वह 'सूखे दूध' के रूप में बेचा जाता है। इसमें दूध के सारे ठोस पदार्थ होते हैं। इसे गर्म पानी में मिलाकर दूध की तरह काम में लाया जा सकता है। यह बहुत बढ़िया खाद्य है।

दूध का गंदा होना—दूध बहुधा छूत का कारण होता है। गाय के दूध से रोग फैल सकते हैं। बहुत सी गायें क्षय और दूसरे रोगों से पीड़ित होती हैं। दूध दूसरे व्यक्तियों या संक्रमित जल से मिली छूत का वाहक हो सकता है। दूध के बर्तन भी गंदे हो सकते हैं। दूध को दूषित करने का काम बहुधा मक्खियाँ करती हैं। इसे हमेशा ढका हुआ रखना चाहिए। जीवाणु (microbes) दूध में पलते हैं और उसे खट्टा बना देते हैं। खट्टे दूध से बीमारी और अतिसार हो जाता है।

दूध से होने वाले छूत के खतरे से बचने के लिए उसे काममें लाने से पहले उबाल लेना चाहिए। इससे न केवल रोगाणु ही नष्ट हो जायेंगे बल्कि दूध अधिक स्वादिष्ट तथा सुपाच्य बन जाता है।

पेस्त्यूरीकृत (Pasteurized) दूध १५८° फा० पर कम से कम आध घंटे तक गर्म और तब जल्दी से ५५° फा० तक ठंडा करके ठंडी जगह में रखा हुआ दूध होता है। यह पूर्णतः विश्वसनीय होता है। या तो दूध को प्रयोग से पहले उबाल लेना चाहिए या पेस्त्युरीकृत दूध ही का उपयोग करना चाहिए।

दूध में मिलावट—दूध में पानी डाल दिया जाता है या मलाई निकाल कर के श्वेतसार (starch) मिला दिया जाता है।

दूध में पानी की मिलावट का पता कभी-कभी दुग्ध परीक्षक यंत्र (Lactometer) से लग सकता है। यह एक ऐसा यन्त्र है जिसमें दूध का आपेक्षिक घनत्व जाँचने के लिए अंशांकन (graduations) होते हैं।

इसमें एक डंडी और दो बल्ब होते हैं। नीचे के बल्ब में उसे सीधा रखने के लिए सीसे के टुकड़े भरे रहते हैं। ऊपर के बल्ब
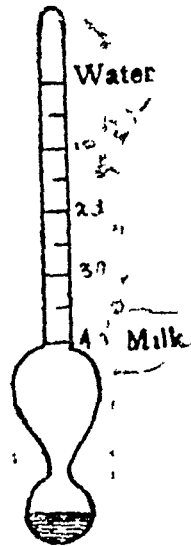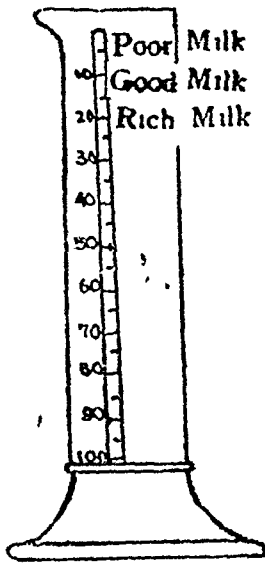
चित्र संख्या ७९—मलाई परीक्षक व दुग्ध परीक्षक

के कारण वह तैरता है। इसमें w, १, २, ३, एवं ४ m अंश अंकित रहते हैं जिनका मतलब क्रमशः पानी, दूध का १ भाग, दूध के दो भाग, दूध के तीन भाग और शुद्ध दूध होता है।

दूध को एक कम चौड़े बर्तन में डालते हैं और उसमें दुग्ध परीक्षक यंत्र को रखते हैं। दूध के विशिष्ट नमूने में पानी का अनुपात मालूम हो जाता है।

यह विधि हमेशा विश्वसनीय नहीं होती क्योंकि ग्वाला थोड़ी मलाई निकाल कर और उतना पानी डाल कर जिससे आपेक्षिक घनत्व नियमित (normal) हो जाय, उसे ठीक गढ़ सकता है।

दूध में लगभग १० दस प्रतिशत मलाई होनी चाहिए। मलाई परीक्षक (Creamometer) में उसे कुछ घंटों तक रखकर

इसकी जाँच की जा सकती है। यह केवल एक बेलनाकार बर्तन होता है जिसमें १०० अंश अङ्कित रहते हैं। यदि रखने पर सारे का १० या २० प्रतिशत मलाई बनती है तो वह दूध अच्छा होता है।

श्वेतसार का मैदा तथा सिंघाड़े का आटा कभी-कभी उबलते हुए दूध में डाला जाता है। इसमें कुछ आइडीन का घोल डाल कर सुगमता से इसकी जाँच की जा सकती है। श्वेतसार आयडीन से गहरा नीला हो जाता है।

दही—यह बहुमूल्य खाद्य पदार्थ है। इसमें दूध के सारे अवयव होते हैं।

मक्खन—लगभग सारा का सारा मक्खन वसा होती है। मठे में वसा (मक्खन) को छोड़कर दूध में पाई जाने वाली प्रत्येक चीज होती है। यह अच्छा खाद्य पदार्थ है और तरोताजा करने वाला है। यह अच्छी बात है कि इस देश के कुछ भागों में मट्ठे का पान इतना अधिक किया जाता है।

घी—शुद्ध किया हुआ मक्खन होता है। जल तथा नत्रजनीय पदार्थ मक्खन को गर्म करके निकाल दिये जाते हैं। यह मक्खन से अधिक टिकाऊ होता है।

घी में बहुधा वानस्पतिक वसाएँ या जानवरों की चर्बी मिला दी जाती हैं।

चीज (cheese)—यह दही या लस्सी (whey) को निचोड़ कर बनाई जाती है। अतः इसमें वसा अधिक होती है या नहीं भी होती। इसे नमकीन बना कर काट लिया जाता है।

इसमें प्रोटीन तथा वसा बहुत अधिक होती है और यह एक बहुत पोषक खाद्य पदार्थ है। कुछ लोगों को यह दुष्पाच्य मालूम होती है।

अंडा—अंडे में शरीर के पोषण के लिए प्रत्येक आवश्यक चीज होती है क्योंकि अंडे से बाहर निकलने तक मुर्गी का बच्चा उसी पर निर्भर रहता है। यह दूध के समान पूर्ण खाद्य पदार्थ नहीं है क्योंकि इसमें लवण बहुत कम होते हैं और श्वेतसार या शर्करा बिलकुल नहीं होती। कई लवण बाहरी आवरण (shell) से घुल जाते हैं। शर्करा या श्वेतसार की कमी अंडे के सेने से पूरी हो जाती है।
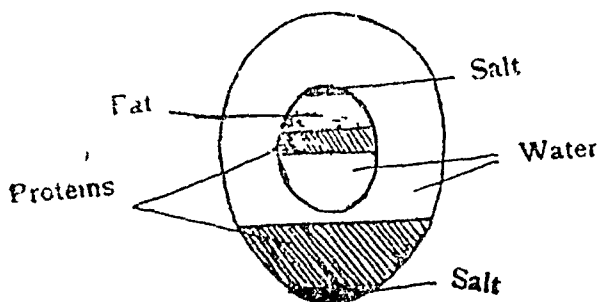
चित्र संख्या ८०—मुर्गी के अंडे का संगठन

अंडे बहुमूल्य खाद्य पदार्थ हैं क्योंकि उनमें प्रोटीन, वसाएँ तथा विटेमिन बहुत अधिक होते हैं। उनको बहुत से नमक के साथ या फिर दूध में डाल कर खाना ठीक है। मुर्गी के अंडे का प्रतिशत संगठन निम्न लिखित है:—

जल	७०
प्रोटीन	१४
वसाये	११
लवण	५
	१००

अंडे आसानी से पच जाते हैं और इसलिये बीमारों तथा बच्चों के लिये खास करके अच्छे होते हैं। उबालने से वे अपाच्य (indigestible) हो जाते हैं।

यह मालूम करने के लिये कि अंडा ताजा है या नहीं हमें पाव भर पानी में आधी छटांक नमक घोल लेना चाहिए और अंडा उस में छोड़ देना चाहिये।

अच्छा अण्डा डूब जायगा और जो बिलकुल ताजा नहीं होगा वह उतराने लगेगा और खराब अंडा पानी पर तैरता रहेगा।

अंडे के आवरण के छिद्रों को तैल, मोम या गोंद से बंद कर के उसे सुरक्षित रखा जा सकता है। चूने और पानी के मिश्रण में अंडे कुछ समय तक रखे रहते हैं।

माँस—सब तरह के माँस नत्रजनीय खाद्य हैं जिनमें वसाएँ, लवण, विटैमिन और जल अलग अलग परिमाण में होते हैं। भेड़ों, बकरों, शिकार के और घरेलू पक्षियों (poultry) के माँस का उपयोग इस देश में अधिकता से होता है। इन भागों में शिकार में जंगली पक्षी, तीतर, महोका और दूसरे ऐसे जानवर यथा खरगोश, हिरन आदि होते हैं।

घरेलू पक्षियों में मुर्गी, पेरू (turkey) हंस, बतख आदि होते हैं। घरेलू पक्षियों और शिकार का माँस आसानी से पच जाता है। इन प्राणियों के गुर्दे, मस्तिष्क और दूसरे अवयव बड़े अच्छे खाद्य पदार्थ हैं। उनमें प्रोटीन तथा विटैमिन बहुत होते हैं। मस्तिष्क में दो दुष्प्राप्य खनिज तांबा तथा जस्ता होते है।

यकृत में बहुत से खाद्य पदार्थ काफी अधिक मात्रा में होते हैं। इसमें मैंगनीज और लोहा भी होता है। मैंगनीज वृद्धि को उत्तेजना प्रदान करता है। खून में लोहे की आवश्यकता होती है। यकृत के प्रोटीन मानव प्राणियों के उपयोग के लिये बड़े उपयुक्त हैं।

माँस की तरह मछली में प्रोटीन बहुत अधिक होते हैं और कर्बोदेत नहीं के बराबर होते हैं। मछली के प्रोटीन मानव

प्राणियों के उपयोग के लिये अत्यधिक उपयुक्त होते हैं। मांस की अपेक्षा मछली अधिक सुगमता से पचती है। मछली में लोहा और तांबा होता है। इसमें सी को छोड़कर सारे विटैमिन विशेषतः ए और डी विटैमिन बहुत अधिक परिमाण में होते हैं।

शाकाहार

अनाज—अनाज में—गेहूँ, चावल, बाजरा, जई (Oat), मकई इत्यादि से—हमें अपने भोजन का अधिकांश भाग मिल जाता है। उनमें कर्बोदेत बहुत परिमाण में (लगभग ७०%) होते हैं। उनमें थोड़े परिमाण में प्रोटीन (लगभग १०%) होते हैं जो सुगमता से नहीं पचते। उनमें लवणों और विटैमिन E को छोड़कर सारे विटैमिनों का अभाव होता है। गेहूँ और चावल में वसाएँ कम होती हैं पर जई में वसाएँ अधिक होती हैं।

गेहूँ—गेहूँ आटे के रूप में रोटी, बिस्कुट वगैरह बनाने के काम में आता है। गेहूँ के आटे में श्वेतसार बहुत ज्यादा और कुछ प्रोटीन होते हैं। चोकर को निकाल देने पर इसमें लवणों, वसाओं और प्रोटीनों की कमी हो जाती है। समूचे आटे में चोकर रहता है। यह ज्यादा पोषक है। इसमें कुछ अपाच्य रेशे होते हैं जो अंतड़ियों में उत्तेजना उत्पन्न करते हैं। उस सफेद आटे की अपेक्षा जिससे रोटी बनाई जाती है दलिया अधिक पोषक पदार्थ है।

आटा तो ईंधन जैसा भोजन है। इसका उपयोग गर्मी तथा शक्ति पैदा करने के लिये किया जाता है। यह कर्बोदेतो की प्राप्ति का सब से सस्ता साधन है। इसे दूध या दूध की चीजों, दाल या हरी तरकारियों के साथ खाना चाहिए।

बाजरा—गेहूँ के बाद अनाजो में सब से पोषक बाजरा है। इसमें प्रोटीन बहुत कम होती है पर विटैमिन ए काफी अधिक होता है।

बाजरे को दूध, दूध की चीजों या मॉस तथा तरकारियों के साथ खाना चाहिए। इनके साथ मिलकर गेहूँ और बाजरा बड़े अच्छे खाद्य पदार्थ बन जाते हैं।

चावल—लगभग शुद्ध श्वेतसार है। मकई को छोड़ कर बाकी सब अनाजों से इसमें कम प्रोटीन होती है। इसमें वसाएँ, लवण और विटैमिन भी बहुत कम होते हैं। भारतवर्ष के बहुत से भागों में यह बहुत सामान्य खाद्य पदार्थ है। दूसरे अनाजों की अपेक्षा चावल घटिया भोज्य पदार्थ होने के कारण भारत की चावल खाने वाली जातियों का शरीर इतना अच्छी तरह विकसित नहीं होता। उनके खाने में दूध, दाल या मॉस, मछली और तरकारियाँ भी होनी चाहिए। उन लोगों के भोजन में कुछ गेहूँ की बनी चीजे भी होनी जरूरी हैं।

जई—में वसाएँ बहुत अधिक गेहूँ की अपेक्षा लगभग पाँच गुनी होती है। जई का उपयोग भारत में रहने वाले यूरोपियन लोग अधिकतर करते हैं और वसा काफी अधिक परिमाण में होने के कारण यह समशीतोष्ण (Temperate) प्रदेशों के लिए उपयुक्त है। यह पुष्टिकारक अनाज है।

मकई—में प्रोटीन बहुत कम होती है। इसलिए अच्छे भोज्य पदार्थ के रूप में काम में नहीं ली जा सकती। इसे दूसरे भोज्य पदार्थों के साथ मिला लेना चाहिए। पीली मकई में विटैमिन ए बहुत होता है साग या दूध के साथ इसका बड़ा अच्छा मेल बनता है।

दाल—दाले शाकाहार का नत्रजनीय वर्ग है। उनमें लेग्यूमिन नाम की प्रोटीन बड़े परिमाण में होती है। वे चीज को छोड़कर सबसे अधिक समाहृत प्रोटीन मय भोजन हैं और इस लिए जब तक पूरी तरह पकाई न जायँ, कठिनाई से पचती हैं। उनमें विटैमिन बहुत होते हैं।

इस वर्ग में मटर, सेम और विभिन्न तरह की दाले होती हैं।

उनको दाल की तरह काम में लिया जाता है। दालों को दलकर या सोधकर विभिन्न तरह की अच्छी अच्छी खाने की चीजें तैयार की जाती हैं।

उनको अनाजों के साथ तथा उनमें घी मिला कर खाना चाहिए। वे जूस (Soup) बनाने के लिए अच्छी हैं। मसूर की दाल खास कर पुष्टिकारक होती है और इसके लिए अच्छी है। इसमें काफी लोहा होता है। कड़े छिलके वाले फलों में (सुपारी वगैरह) और बीजों में प्रोटीन तथा वसाएँ काफी अधिक मात्रा में होती हैं।

जड़ें और कन्द (Tubers)

ये श्वेतसार की प्राप्ति के लिए अतिरिक्त साधन हैं और उन्‍ में अधिकतर केवल श्वेतसार ही होता है। उदाहरणतः—आलू, गाजर, शकरकन्द, शलजम, मूली।

कचालू तथा हाथीचक (Artichoke) भी इसी वर्ग में शामिल हैं।

आलू में श्वेतसार अत्यधिक तथा प्रोटीन कम होती है। ये प्रोटीन अत्यन्त उपयोगी हैं। उनमें ए, बी और सी विटैमिन भी होते है। चुकन्दर, गाजर तथा शकरकन्द में गन्ने की शर्करा (cane sugar) होती है।

अरारूट तथा टेपियोका (Tapioca) में कन्द का शुद्ध श्वेतसार होता है।

सागूदाना में थोड़ा प्रोटीन भी होता है।

प्याज तथा लहसुन पुष्टिकारक खाद्य पदार्थ हैं। उनमें प्रोटीन, थोड़ी सी शक्कर और एक प्रतिविष तैल होता है। इस तैल में गन्धक होता है।

हरी तरकारियाँ तथा फल

निम्न लिखित कारणों से हरी तरकारियाँ भोजन का बहुत महत्वपूर्ण वर्ग निर्माण करती हैं :—

(१) उनसे बहुत से खनिज लवण मिलते हैं। कुछ अवस्थाओं में वे केलसियम, सोडियम और क्लोरीन की प्राप्ति के एक मात्र साधन हैं। वे रक्त को ठीक रखने के लिए जरूरी हैं।

(२) इन में लोहा होता है जो कि रक्त बनाने के लिये जरूरी है।

(३) उनमें ए, बी और सी विटैमिन बहुत होते हैं।

(४) उनमें शाक के रेशे होते हैं जो अपाच्य होने के कारण अंतड़ियों के काम में सहायक होते हैं।

(५) वे माँस और अनाजों की अम्ल उत्पन्न करने की प्रवृत्ति का निराकरण करते हैं।

(६) उनमें से बहुतों में पुष्टिकारक पदार्थ होते हैं।

हमारे भोजन का बहुत महत्वपूर्ण तथा आवश्यक भाग पत्तीदार तरकारियों का होना चाहिए। विभिन्न ऋतुओं में तरह-तरह की तरकारियाँ मिलती हैं और उनका भोजन में बराबर उपयोग करते रहना चाहिए। गोभी, फूलगोभी, टमाटर, हरीमिर्च, सलाद हेलन (Cress) और सरसों जाड़े में मिल जाती हैं। बैंगन, पालक, भिंडी और कई तरह के कुम्हड़े गर्मी की ऋतु में मिलते हैं।

फलों में क्षारीय लवण (Alkaline salts) खूब होते हैं जो खून को आम्लीय (acidic) नहीं होने देते।

उन में सी विटैमिन प्रचुर मात्रा में होता है और वे शरीर को तन्दुरुस्त रखते हैं।

वे अन्तड़ियों के काम को ठीक तरह करने में मदद पहुँचाते।

हैं क्योंकि उनमें पानी और कुछ दस्तावर लवण प्रचुर परिमाण में होते हैं। वे शरीर को ठंडा व ताजा रखते हैं।

केला, खजूर और अञ्जीर बहुत पुष्टिकारक होते हैं क्योंकि उनमें शक्कर और श्वेतसार होते हैं। अंगूर, आम और तरबूज में शर्करा (sugar) होती है। अंजीर हलका दस्तावर होता है।

नीबू में अम्ल होते हैं जो कई चर्म रोगों को रोकते हैं। उनसे बहुत से श्रमहारी पेय पदार्थ बनते हैं।

पके तथा ताजे फल प्रचुर मात्रा में खाने चाहिए।

कड़े छिलके वाले फल (Nuts) सर्दी में काम में लाये जाते हैं। इनमें वसा और प्रोटीन होती हैं।

रोग से बचाने वाले खाने

१—दूध, मक्खन, चीज़, दही, लस्सी तथा घी
२—मछली
३—पत्तीदार तरकारियाँ
४—ताज़े फल

खाने योग्य फंगस

कुछ खाये जा सकने वाले फंगस पौधों से जैसे कुकुरमुत्ता से देश के कुछ भागों में बहुमूल्य खाना तैयार किया जाता है।

उनमें लगभग ९०% पानी और कुछ नत्रजनीय भोजन होता है। वे दुष्पाच्य हैं और इसलिए भोजन के रूप में उनका मूल्य बहुत कम है।

मसाले

मसाले ऐसे पदार्थ हैं जो भोजन में उसकी गंध और स्वाद बढ़ाने के लिये विभिन्न रूपों में डाले जाते हैं। और कभी-कभी वे सहायक भोज्य पदार्थ कहलाते हैं। वे थूक (लाला) और दूसरे पाचक रसों को बढ़ाकर पाचन को बढ़ाते हैं।

इस शीर्षक के अन्तर्गत आने वाले पदार्थ विभिन्न मसाले

तथा काली मिर्च, अदरख, जायफल, लौंग, लालमिर्च आदि हैं। मसालों में पोदीना तथा अजवाइन भी शामिल हैं। उनमें कुछ विटैमिन तथा वाष्पशील तैल होते हैं।

इन पदार्थों में भोजन तत्व कुछ भी नहीं होता पर वे विभिन्न पाचन ग्रन्थियों को उत्तेजित करते हैं और भोजन को सोंधा बना देते हैं।

मसालों को भोजन में थोड़े परिमाण में ही डालना चाहिए। जवान लड़कों तथा कन्याओं को इन पदार्थों की जरूरत नहीं और जहाँ तक हो सके उन्हें इनका उपयोग करने से बचाना चाहिए।

यदि ये पदार्थ अधिक मात्रा में लिए जायेंगे तो वे अन्नमार्ग की नाजुक परत में रगड़ पैदा करेंगे और उसे बिगाड़ देंगे, इसलिए वे हानिकारक हैं।

सारांश

भोजन, प्राणिज या वानस्पतिक होता है। दूध तथा अंडा पूर्ण खाद्य पदार्थ हैं। और बहुत पोष्यय होते हैं। माँस नत्रजनीय खाद्य है। वानस्पतिक खाने में कार्बोदेत बहुत होता है। वानस्पतिक खाद्य पदार्थ यह हैं:—अनाज, दालें, जड़ें और कन्द तरकारियाँ तथा फल। अनाज से कार्बोदेत मिलते हैं। दालों में नत्रजन खूब होती है। कन्दों में श्वेतसार तथा शक्कर होती है। फल ज़रूरी खाद्य पदार्थ हैं। उनमें लवण, विटैमिन तथा पौष्णव पदार्थ होते हैं। मसाले सहायक भोज्य पदार्थ हैं। वह बहुत थोड़ी मात्रा में लेने चाहिए।

प्रश्न

१—दूध और दूध की चीज़ों के भोज्य पदार्थ के रूप में गुण बतलाइये।

२—दूध के बिगड़ने के कारण तथा खतरे, क्या हैं।

३—दूध में मिलावट करने के साधारण तरीक़े क्या हैं। इनका पता कैसे लग सकता है?

४—भोज्य पदार्थ के रूप में अंडे, माँस तथा मछली के क्या गुण हैं ?

५—भारत में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार के अनाजों के खाद्य गुण बतलाइये।

६—दालें भोजन के किस वर्ग में शामिल हैं ? संतुलित भोजन होने के लिए उन्हें किन दूसरी चीजों के साथ खाना चाहिए ?

७. (क) प्रोटीनों के प्राप्ति के सबसे महत्व पूर्ण साधन क्या है ?

(ख) कर्बोदेतों " " " " " " " ?

(ग) विटैमिनों " " " " " " " " ?

८—हमें यथेष्ट ताजी तरकारियाँ और फल क्यों खाने चाहिए ?

६—(क) आलू (ख) प्याज (ग) अंगुर (घ) खजूर (ङ) नारंगी (च) चीज (छ) भिंडी (ज) कुकुरमुत्ता के खाद्य गुण क्या हैं ?

१०—मसालों के उपयोग पर एक छोटी टिप्पणी लिखिये।

अध्याय १९

भोजन करने के सिद्धान्त

बहुत समय तक जीवित रहने के लिए साधारण भोज्य पदार्थों में से कोई भी अकेला काफी नहीं है। इसलिए मेलदार भोजन किया जाता है। मेलदार भोजन में सारे जरूरी पदार्थ प्रोटीन, वसाएँ, कर्बोदित, विटैमिन और लवण—आवश्यक अनुपात में मिल जाते हैं।

ठीक भोजन में प्रोटीन, वसाएँ, कर्बोदित, विटैमिन और लवण ये सब होने चाहिये। इस तरह का खाना 'पूर्ण संतुलित भोजन' कहलाता है। यदि कोई व्यक्ति केवल माँस खाता है तो उसको प्रोटीन और वसाएँ बहुत ज्यादा मिलेगी पर कर्बोदित बिलकुल नहीं मिल सकेंगे; यदि वह केवल रोटी ही खाता है तो उसे कर्बोदित बहुत ज्यादा मिल जायेंगे, प्रोटीन बहुत कम और वसा बिलकुल नहीं मिलेगी।

उचित प्रकार के खाने या संतुलित भोजन में नीचे लिखी वस्तुएँ होनी चाहिए:—

१—एक या अधिक तरह के अनाज।

२—यथेष्ट मात्रा में दूध और दूध की बनी वस्तुएँ।

३—दाल और मांस यदि धर्म की आपत्ति न हो।

४—तरकारियाँ विशेषतः प्रचुर मात्रा में हरी पत्तीदार तरकारियाँ।

५—फल।

जिस खाने में ये चीजें होगी उससे भोजन के आवश्यक अवयवों की जरूरी मात्रा मिल जायगी।

शरीर द्वारा अपेक्षित विभिन्न चीजों के परिमाण मालूम कर लिये गये हैं। ये भोजन द्वारा उत्पन्न शक्ति के परिमाण से भोजन के गुण को नाप कर मालूम किये गए है। प्रोटीन, कर्बोदेत तथा वसाएँ सभी दहनशील हैं। उनके ओषदीकरण से उत्पन्न गर्मी इन खाद्य पदार्थों की शक्ति का मान है। यह केलोरियों में व्यक्त की जाती है। केलोरी गर्मी की इकाई है। यह मोटे तौर पर गर्मी का वह परिमाण है जो १ ग्राम पानी के तापक्रम को एक अंश बढ़ाने के लिए अपेक्षित होती है।

१ ग्राम प्रोटीन का ओषदीकरण होने पर ४·१ केलोरी गर्मी प्राप्त होती हैं।

एक ग्राम कर्बोदेतों का ओषदीकरण होने पर ४·१ कलोरी गर्मी प्राप्ति होती है।

१ ग्राम वसा का ओषधीकरण होने पर ६·३ केलेरी गर्मी मिलती है।

विभिन्न खाद्य पदार्थों के शक्ति मान मालूम कर लिये गये है।

१ पाउंड मक्खन	=३५०२ केलोरी
१ " चीज (दही)	=२०११ "

१ पौंड	चावल	= १६४९	केलोरी
१ "	मसूर की दाल	= १५७९	"
१ "	मटर	= १४६६	"
१ "	चीज़ (ह्वे)	= १२६०	"
१ "	रोटी	= १०३६	"
१ "	मछली (हेरिंग)	= ६८६	"
१ "	आलू	= ४१५	"
१ "	दूध	= ३०३	"

यह मालूम किया गया है कि प्रामाणिक भोजन या औसत वज़न और गठन के एक बालिग मनुष्य के जो ठीक-ठीक काम करता है भोजन द्वारा ३०००–३४०० केलोरी गर्मी पैदा होनी चाहिये।

यह परिमाण निम्न वस्तुओं में मिल सकता है:—

१०० ग्राम (लगभग २ छटाँक) प्रोटीन	—४१०	केलोरी
१०० ग्राम (" " ") वसाएँ	—९३०	"
३६० ग्राम (लगभग ७ छटांक) कर्बोदित	—१६००	"
कुल	२९४०	केलोरी

पूर्ण संतुलित भोजन की रचना

(पोषण समिति की ओर से)

अनाज	= ७	छटाँक	कुल केलोरी परिमाण २८०० केलोरी स्वास्थ्य ठीक रखने के लिये यथेष्ट हैं।
दाल	= १½	"	
हरी तरकारियाँ	= २	"	
कन्द	= १½	"	
फल	= १½	"	
दूध	= ५	"	
शक्कर	= १	"	
घी या वनस्पति	= १	"	
मछली, माँस, अण्डा	= १½	"	

जो लोग अन्डा, मॉस मछली नहीं खाते उनको मॉस के बदले २ छटॉक और दूध पीना चाहिये।

हलका काम करने वाले आदमी को लगभग ४०० कैलोरी कम चाहिए। दिमागी काम करने वाले व्यक्तियों को शारीरिक काम करने वाले लोगों के बराबर खाने की आवश्यकता नहीं। मानसिक काम करने वालों को कर्बोदितों की अपेक्षा प्रोटीन अधिक चाहिए। पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियों को २०० कैलोरी कम की आवश्यकता होती है। बढ़ते हुए लड़को को आदमियों के बराबर और बढ़ती हुई लड़कियों को बालिग औरत के बराबर भोजन की जरूरत होती है।

काम और जलवायु पर भी खाने की जरूरतें निर्भर होती हैं। ठंडे देशो और जाड़े के मौसम में वसा की जरूरत ज्यादा पड़ती है। भारी काम करने वालों को कुछ ज्यादा खाना चाहिए। बड़े आदमियो को छोटे आदमियो की अपेक्षा अधिक भोजन की आवश्यकता होती है।

भोजन—नियमित समय पर भोजन करना चाहिए। दो भोजन के बीच का समयांतर इतना होना चाहिए जिससे इस समय में आमाशय भोजन को पचा सके (लगभग ४ घंटे) और उसे कुछ आराम मिल जाय (एक घंटा)। दो भोजन का समयान्तर पॉच या छः घंटे होना अत्यन्त वांछनीय है। पॉच घंटो के अंतर से दिन में तीन बार खाना ठीक होता है। कठोर काम करने वाले व्यक्ति को चार बार खाना खाने की जरूरत पड़ेगी। बच्चों के लिए सम्भवतः चार या पॉच बार थोड़ा-थोड़ा हलका खाना खाने की जरूरत होती है। इससे उनकी स्वाभाविक बढ़ती होती रहेगी और कार्यशील बने रहेंगे। दिमागी काम करने वालो को भी थोड़ा-थोड़ा भोजन दिन में चार या पॉंच बार करना चाहिए। उनका खाना ऐसा होना चाहिए कि आसानी से पच जाय।

विद्यार्थियो के लिए सबसे अच्छा प्रोग्राम यह है—प्रातःकाल नाश्ता, दुपहर में खाना, तीसरे पहर टिफिन या जलपान और शाम को व्यालू। समय मौसम के मुताबिक बदलते रहेंगे। स्कूल में सब विद्यार्थियो के लिये जाड़े में तीसरे पहर और गर्मी में सुबह जलपान का सामान्य प्रबन्ध रहना चाहिए।

खाने की *विधि*—भोजन को खूब चबा चबा कर खाना चाहिए। यदि भोजन टुकडे-टुकड़े हो जायगा तो उस पर पाचक रसों की क्रिया आसानी से हो सकेगी। भोजन को धीरे-धीरे चबाना चाहिए जिससे उसमें रस मिल सके और मुँह में श्वेत-सारों पर वह अपना काम कर सके।

खाना खाते समय क्रोध, चिन्ता और उत्तेजना को रोकना चाहिए। ऐसी अवस्था में रसों का बनना मन्द हो जाता है। खाने के समय प्रसन्नता तथा पूर्ण स्वातन्त्र्य का समय होना चाहिए।

खाना खाते समय बहुत पानी न पीना चाहिए। इससे आमाशय के पाचक रस पतले हो जाते हैं और उनका काम मन्द हो जाता है।

मद पोषण—भारतवर्ष में कम खाना बहुत साधारण है। बहुत से लोगो को भर पेट भोजन नहीं मिल पाता। दूसरे लोग अपने भोजन का ठीक तरह से अनुमान नहीं करते। शरीर को कम खाना मिलने से बहुत सी बुराइयाँ पैदा होती हैं। यह चाहे खाने के अभाव से हों चाहे भोजन के आवश्यक अवयवों में से एक या अधिक की कमी के कारण हों, बहुत ही हानिप्रद हैं। जन्म से पहले और शिशु अवस्था में कम खाने से हड्डियों, मस्तिष्क और मॉसपेशियो के विकास में कमी आ जाती है। कम भोजन मिलने वाले बच्चों में दृढ़ता और शक्ति कम होती है और उस

व्यक्ति की अपेक्षा जिसका पालन-पोषण ठीक तरह से हुआ है उसे रोगों के घेरने की अधिक सम्भावना है।

यह बहुत जरूरी है कि बच्चों के भोजन में किसी अत्यावश्यक जीवनी (vital) अवयव की कमी न हो अन्यथा बच्चे का पूर्ण मानसिक व शारीरिक विकाश होना असम्भव है।

सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों में दूध या जलपान का वितरण एक बहुत ही प्रशंसनीय काम है जिसे प्रोत्साहन मिलना चाहिए। वास्तव में ऐसा वितरण सर्वत्र व्यवहार में आना चाहिए ताकि बच्चे भविष्य के स्वस्थ नागरिक बन सकें।

दूध पिलाने वाली तथा गर्भवती माता को भी उचित भोजन मिलना चाहिये। गरीब श्रेणी की अधिकांश माताओं को एनिमियां रोग हो जाता है। इससे उनका स्वास्थ्य खराब हो जाता है और उन्हें राजयक्ष्मा रोग आ घेरता है।

साधारण अवस्थाओं में बराबर संयमित कम भोजन से रोगों से बचने की शरीर की शक्ति घट जाती है। लम्बे समय तक कम भोजन करने से तंतु नष्ट होने लगते हैं। मानसिक तथा शारीरिक कमजोरी आने लगती है। अन्तिम अवस्थाओं में मृत्यु हो जाती है। भारत के कुछ प्रान्तों के लोगों के भोजन में जहाँ लोगों का मुख्य खाद्य पदार्थ चावल है, बहुत कम सत्व होता है। उसके साथ दूध, वसाएँ, आटा, दाल और हरी तरकारियाँ खानी चाहिए।

शक्ति और संक्रमण का प्रतिरोध करने में कमी, पोषण में कमी की तरफ निर्देश करती है। भोजन को ठीक करने की तरफ तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता के प्रथम चिन्ह हैं।

अधिक भोजन—ठूंस-ठूंस कर ज्यादा खा लेना बालिग व्यक्तिओं के लिए बहुत साधारण बात है। हमें यह बात याद रखनी चाहिए कि हम जीने के लिए खाते हैं न कि खाने के

लिए जीते हैं। हमें अपने को खाने की मशीन बना लेने का कोई अधिकार नहीं है। भोजन करना आनन्दप्रद है पर इस आनन्द को बनाये रखने के लिए खाने में संयम रखना जरूरी है।

ज्यादा खा लेने के परिणाम यह होते हैं :—

(१) चर्बी का इकट्ठा होना अर्थात् स्थूलता।

(२) अंतडियों में भोजन का पड़े रहना जिससे उसका खमीरण हो जाता है और अन्न मार्ग के कई रोग पैदा हो जाते हैं। ये रोग हैं :—अपच, कब्ज, अतिसार, जीभ पर मैल जमना, दुर्गन्धमय श्वास तथा पाण्डु रोग।

(३) अन्तड़ियों में मैल के रुके रहने से .खून संबन्धी रोग।

(४) कुछ विशेष खराब अवस्थाओं में गुर्दों के रोग और वात रोग (Gout) अगर आदमी अपने को बीमार महसूस करे या बहुधा सर दर्द करे या वह थकान मालूम करे तो बहुत सम्भवतः उसे यथोचित खाना न मिलना ही कारण होगा।

बहुत ज्यादा खा लेने के बुरे परिणामों को कसरत तथा भविष्य में अधिक संगत भोजन करने से रोका जा सकता है।

पकाने से ये मतलब हल होते हैं :—

(१) रोगाणु तथा परिश्रमी जीव नष्ट हो जाते हैं।

(२) पकाने से भोजन जल्दी नहीं सड़ता तथा खराब नहीं होता।

(३) अनाजों के श्वेतसार के दाने खंडित हो जाते हैं और माँस के रेशे ढीले पड़ जाते हैं। इससे इन पदार्थों के पाचन में सहायता मिलती है।

(४) इससे अच्छा सौंधापन आ जाता है जिससे भूख बढ़ती है और पाचन रस अधिक परिमाण में बनते हैं।

(५) पकाने से तरह तरह का खाना तैयार किया जा सकता है।

कुछ प्रोटीन पकाने से कुछ कम पाच्य हो जाते हैं। कुछ विटैमिन भी कम हो जाते हैं। अंडा, दूध और मांस को अधिक नहीं पकाना चाहिए। कुछ खाद्य पदार्थ यथा गेहूँ, दाल आदि बिना पकाए नहीं पच सकते।

भोजन नष्ट न करो

१—जिस पानी में तरकारियाँ पकाई गई हों उस पानी को न फेंको।

२—भोजन को अधिक न पकाओ तथा खुले बर्त्तनों में मत पकाओ।

३—चावल व अनाज को चिकनी गर्म चक्की में पिसाने से कुछ आवश्यक पोषणीय पदार्थ नष्ट हो जाते हैं।

४—खाने योग्य छिलके को फेंकना नहीं चाहिए।

५—चूहे, कीड़े मकोड़ों से भोजन को सुरक्षित रखिये।

खाने को अच्छी तरह पकाना एक कला है और प्रत्येक लड़की को पाक विद्या की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए. भारत में बहुत-सी महिलाओं को खाना पकाना पड़ता है। जिन्हें खाना नहीं पकाना पड़ता उनमें भी इसका निश्चय करने, निर्देश करने तथा निरीक्षण करने की योग्यता का होना आवश्यक है। पकाने की बहुत-सी विधियाँ काम में लाई जाती हैं पर जरूरत है अच्छा खाना पकाने की।

पकाने की *विधियाँ*—पाचन की प्रचलित विधियों में अत्यन्त भिन्नता तथा विविधता के कारण यहाँ पर पकाने के तरीकों को सविस्तार समझाकर लिखना सम्भव नहीं है। इसके अलावा पाकविद्या एक व्यावहारिक विषय है और जितना फायदा इस कला में व्यावहारिक शिक्षण से होगा उतना लिखित वृत्तांत से नहीं, चाहे वह कितना ही बढ़ाकर लिखा जाय। यहाँ पर केवल पाचन की निम्न लिखित विधियों का ही वर्णन किया जायगा—

उबालना, भूनना, धीमी आँच में पकाना (Stewing), सेंकना,
तलना और झुलसाना (Grilling)।

उबालना:—

(क) भोजन से पोषक पदार्थों का सत निकालने (ख)
खाने में सारा पुष्टिकारक पदार्थ और गंध रहने देने और खाली
पकाने के लिये खाद्य पदार्थ उबाले जाते हैं।

शोरबा या झोल या दलिया तैयार करने के लिये मांस या
अनाज को महीन महीन काटा जाता है, और उसे पानी में
डाल कर धीरे २ गर्म किया जाता है (उबाला नहीं जाता)। इस
तरीके से भोजन के पोषक पदार्थ का सत निकल कर पानी के
साथ मिल जाता है।

यदि मांस में पोषक वस्तु को खाना हो तो उसे एकाएक
उबलते पानी में डाल देते हैं और उसमें कुछ मिनट तक रखे
रहते हैं। मांस पर स्कंधित अल्बुमनमय पदार्थ की परत सी बन
जाती है जो रस और पोषक वस्तु को बाहर नहीं आने देती।
उसके बाद पानी को धीरे धीरे उसीजने देते हैं।

इसी तरह आलुओं को भी बिना छिलका उतारे खौलते हुए
पानी में डाल देना चाहिए। इससे आलुओं में मौजूदा लवण
उन्हीं में बने रहेंगे।

चावलों के दानों को नरम करने के लिए उन्हें धीरे-धीरे
पकाना चाहिए। इससे दाने फूल उठते हैं। तब उनको केवल
भाप से पकाया जाता है। कुछ देर बाद दाने सूख जाते हैं और
एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। दूसरे पदार्थों को नरम तथा
स्वादिष्ट बनाने के लिए पानी में उबाला जाता है।

भूनना (Roasting)—भूनने में मांस खुली आग पर पहले
बहुत गर्म किया जाता है। इससे उस पर स्कन्धित अल्बुमनमय
पदार्थ की पपड़ी जम जाती है जो मांस के पोषक पदार्थ को

निकलने से रोकती है। इसलिए भुनने का सिद्धान्त जल्दी उबालने जैसा ही है। कुछ देर बाद भुना हुआ मॉस आग से कुछ दूर रखा जाता है और धीरे-धीरे भूना जाता है। झुलसने से बचाने के लिए बहुत बार वसा डाली जाती है।

उबाले हुए मॉस से भुना हुआ मॉस अधिक स्वादिष्ट होता है पर उतनी सुगमता से पच नहीं पाता।

धीमी आँच में पकाना (Stewing)—यह विधि बड़ी कम खर्चीली है। मांस के महीन महीन टुकड़े कर लिये जाते हैं और उन्हें एक बरतन में रख देते हैं। पानी इतना डाला जाता है जिससे वे ठीक ढक जायें और फिर धीरे धीरे गर्म करते हैं।

कोर्मा (Stew) आसानी से पच जाता है और नरम ढीला खाना है।

सेंकना (Baking)—सेंकना काफी देर तक भूनना है। यह कार्य बन्द बर्तनों में किया जाता है। खमीरी रोटी और बिस्कुट सेंक कर बनाये जाते हैं। श्वेतसार खंडित हो जाता है और उसे अधिक आसानी से पचाया जा सकता है। श्वेतसार पर लगे वसा के कारण पकवान को पचाना कठिन होता है। थूक का काम इसलिए अटक जाता है।

तलना (Frying)—यह खाने को पानी के बजाय घी या तेल में पकाने का तरीका है। खाद्य पदार्थ के कण वसा से आवृत हो जाते है जिससे वे अपाच्य हो जाते हैं। बहुत से बहुमूल्य और स्वादिष्ट भारतीय भोजन इसी तरह बनाये जाते हैं। उनको पचाना कठिन होता है।

तरकारियाँ भी इसी तरह बनाई जाती हैं—

मछली को भी अक्सर तलते है पर उबाली हुई मछली अधिक सुपाच्य होती है।

झुलसाना (Grilling)—इसमें मांस एक तरह से खुली
आग पर भूना जाता है। कटा हुआ पदार्थ लोहे के तवे पर रखा
जाता है और उसे आग में रख देते हैं। उसे कई बार उलटते
भी हैं। कबाब इसी तरह बनाया जाता है।

भोज्य पदार्थों का संग्रह

यदि दूध को कुछ देर तक पड़े रहने दिया जाय तो वह
खट्टा हो जाता है। भोजन भी कुछ समय के पश्चात् बिगड़
जाता है। सूक्ष्म जीवाणुओं (Bacteria) द्वारा कई रासायनिक
प्रतिक्रियाएँ होती हैं। भोज्य पदार्थों के संग्रह की समस्या तिगुनी
है—(१) उनमें जो रोगाणु पहले से मौजूद हैं वे मार दिये
जायँ (२) रोगाणु उनमें प्रवेश न पा सकें (३) उन्हें बढ़ने का
अवसर न मिले।

जीवाणु उपयुक्त तापक्रम पर आर्द्रता तथा हवा की उपस्थिति
में फैलते हैं। घर में आने से पहले ही भोज्य पदार्थों में छूत
लगी हो सकती है। फल और तरकारियों को स्वच्छ पानी में
धोकर उन्हें एक साफ जगह में रखना चाहिए। घर में लाते ही
दूध को तत्काल उबाल लेना चाहिये और तब ठंडा करके एक
साफ बर्तन में ठंडी जगह रख देना चाहिये। घर के बर्तनों में
भी छूत लग सकती है। उन्हें हमेशा साफ तथा उन्हें
ढक कर रखना चाहिये और मक्खियों को वहाँ न आने देना
चाहिये। यदि भोज्य पदार्थों को ठंडा और सूखा रखा जाय
तो रोगाणु उनमें जल्दी नहीं पनप सकेंगे।

यह तथ्य कि रोगाणु निम्न तापक्रम पर अकर्मण्य होजाते हैं
भोज्य पदार्थों के संग्रह में बहुत काम का है और इसका बड़ा
उपयोग किया जाता है। घर में ठंडी जगहों में भोज्य पदार्थ रखे
जाते हैं। धनाढ्य परिवारों में खाद्य पदार्थों को रखने के लिये
हिमकारकों (Refrigerators) का उपयोग किया जाता है।

ताजे खाद्य पदार्थ और फल अब हिमकृत (Refrigerated) डब्बों में जहाँ कम तापक्रम रखा जाता है ले जाये जाते हैं। बंदरगाहों तथा बड़े-बड़े शहरों में जहाँ फल, मछली और माँस के संग्रह के लिये शीत संग्रह भंडार (Cold storage depot) होते हैं, सब तरह के खाद्य पदार्थ अनिश्चित काल के लिये कम तापक्रम पर रखे जा सकते हैं। इसलिए बड़े शहरों में बिना मौसम के फल भी मिल सकते हैं। अस्पताल और थोक बिक्री की दूकानों के गोदामों में खाद्य पदार्थ, दवाएँ, वगैरह तब तक रखी जाती है जब तक उनके उपयोग या बिक्री के लिए जरूरत नहीं पड़ती।

खाद्य पदार्थों को ठंडे तथा हवादार स्थानों में रखना चाहिए। उनको धूल तथा मक्खियों से बचाना चाहिये। भोजन को रखने के लिए खिड़की के पास एक अल्मारी का होना ठीक रहेगा बशर्ते कि मक्खियों को न आने देने का उचित प्रबंध हो। लकड़ी का संदूक जिसमें जस्ते या जाली के दरवाजे तथा बाजू हों इस काम के लिये बड़ा अच्छा होता है। यह हवादार होता है और ठंडी जगहों में ले जाया जा सकता है।

सूखे खाद्य पदार्थ इतनी सुगमता से नहीं बिगड़ते। बहुत-सी तरह के खाद्यपदार्थों को यदि वे सूखे हों और स्वच्छ सूखे स्थान में रखे गये हों तो कुछ समय तक रखा जा सकता है।

कुछ तरह के भोज्य पदार्थों को यथा मछली और माँस को उनके धुएँ में गरम करके रखा जाता है। इससे इन भोज्य पदार्थों के ऊपर एक सूखी बचाने वाली परत चढ़ जाती है। कारण यह है कि जीवाणु आर्द्रता की उपस्थिति में ही पलते हैं।

खाने की चीजों को बन्द डिब्बों या बोतलों में डिब्बा बंदी विधि (Canning) से रखते हैं। और इसका उपयोग पाश्चात्य

देशों में बहुत अधिक होता है। भारतवर्ष में डिब्बाबंदी के कई कारखाने खुल रहे है और कई शिक्षणालय भोजन संरक्षण में व्यावहारिक शिक्षा प्रदान कर घर में डिब्बा बन्दी करने को प्रचलित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। डिब्बाबन्दी विधि में खाने की चीजोंको जीवाणुओंको नष्ट करने के लिये गर्म करते हैं या उबाल लेते हैं और तब उनके गर्म रहते उन्हे डिब्बों में द्रवण मुद्रित (Hermetically seal) कर देते हैं। इस विधि को बड़ी अच्छी तरह से करना चाहिये। खाने को स्वच्छ रीति से छूना, पूरी तरह कीटाणुओं का नाश कर देना, हवा को बर्तनों में बिलकुल न रहने देना और डिब्बे या बोतल को ठीक तरह से बंद करना पड़ता है। इस तरह डिब्बों में बंद फल, तरकारियों और खाद्य पदार्थों को अनिश्चित् काल तक रखा जा सकता है।

खाने की चीजों को सुरक्षित रखने के लिए कुछ रासायनिक पदार्थों का भी प्रयोग किया जाता है। मुरब्बों में शक्कर उन्हें न बिगड़ने देने का काम करती है। अचारों में यह काम नमक करता है।

कभी-कभी दूसरे रासायनिक पदार्थ भी डाले जाते हैं। रासायनिक संरक्षक कीटाणुओ के लिये हानिकारक होते हैं और वे आदमियों के लिये भी हानिप्रद हो सकते हैं। खाने को सुरक्षित रखने के लिये घरों में उनका पयोग नहीं करना चाहिये।

खाने को सुरक्षित रखने का सबसे अच्छा ढंग उसको हिमीकृत स्थानों में रखना है। वहाँ तापक्रम इतना कम होता है कि कीटाणु जीवित नहीं रह सकते। फल इत्यादि एक जगह से दूसरी जगह को ले जाने के लिए भी ऐसे हिमीकृत डिब्बे काम में लिये जाते हैं। बड़े-बड़े शहरों में शीत भंडार होते हैं।

सारांश

अच्छे भोजन में प्रोटीन, वसाएँ, कर्बोदेत, विटैमिन और लवण, यह सब होने चाहिए। पूर्ण संतुलित भोजन की रचना ध्यानपूर्वक देखिये। भोजन की रचना, दो भोजन के समयान्तर खाना खाने की विधि की ओर पूरा ध्यान देना चाहिए। मन्द पोषण, व अधिक भोजन से बुरे परिणाम होते हैं।

पकाने से भोजन नर्म हो जाता है। पाच्य तथा स्वादिष्ट बन जाता है। पकाने से रोगाणु नष्ट हो जाते हैं। पकाने की कई विधियें हैं जैसे :—उबालना, भूनना, धीमी आँच पर पकाना, सेकना, तलना और झुलसाना। भोज्य पदार्थ ठीक तरह रखने चाहिए। जिससे उनमें रोगाणु प्रवेश न कर सके तथा उन्हें पढ़ने का अवसर न मिल सके। खाद्य पदार्थ बिगड़ने न पावें। भोज्य पदार्थों को मक्खियों व धूल से भी बचाना चाहिए। खाने को सुरक्षित रखने के लिये, खाने को सुखाकर तथा ठण्डे और हवादार स्थानो में रक्खा जाता है। कुछ पदार्थों को उनके धुएँ से गर्म करके रखा जाता है। कुछ चीजों को शक्कर व नमक से सुरक्षित रखा जाता है। खाने की चीजो को बन्द डिब्बो व बोतलों में, रखने का प्रयोग प्रचलित हो रहा है। खाना सुरक्षित रखने का सबसे अच्छा ढंग उसको हिमीकृत स्थानो, डब्बों व अलमारियो में रखना है।

प्रश्न

१—(क) संतुलित भोजन क्या है ?

(ख) संतुलित भोजन के आवश्यक अङ्ग क्या क्या होने चाहिए ?

२—एक औसत विद्यार्थी के लिये अपेक्षित भोजन के विभिन्न किस्मों के अन्दाजन परिमाण क्या हैं ? इनको कैसे मालूम किया जाता है ?

३—विद्यार्थी को अपने खाने में क्या प्रोग्राम पालन करना चाहिए?

४—इन पर छोटी टिप्पणियां लिखिए :—

(१) मन्द पोषण

(२) अधिक भोजन

(३) खाने की विधि

५—भोजन पकाया क्यों जाता है ?

६—साधारणतः प्रयोग में आने वाले भोजन पकाने के तरीकों को तथा उनसे हासिल होने वाले मतलब का उल्लेख कीजिए।

७—भोजन-संग्रह के विभिन्न प्रचलित तरीकों का उल्लेख कीजिए।

८—घर में खाद्य पदार्थों को किस तरह संग्रह किया जाना चाहिए?

अध्याय २०

पेय पदार्थ

पेय पदार्थ वे हैं जो पीने के काम में आते हैं। स्वभावतः पानी पेय के रूप में अधिक प्रयुक्त होता है। इसके उपयोग प्राप्ति के साधन, सफाई और संग्रह के संबन्ध में १७ वे अध्याय में वर्णन किया जा चुका है। पानी दूसरे बहुत से पेय पदार्थों के बनाने में प्रयुक्त होता है। ये पेय पदार्थ वायु मिश्रित पानी (सोडावाटर, लेमनेड आदि), शर्बत तथा चाय, काफी, कहवा, और कोको हैं।

दूसरी तरह के पेय पदार्थ वे है जो शराब से बनते हैं। इनमें बरांडी, व्हिस्की, रम, जिन, शेरी, शेपेन क्लेरेट, बीयर, ताड़ी वगैरह शामिल हैं।

सोडावाटर लैमनेड आदि पानी में थोड़ी चीनी या कोई दूसरी स्वादिष्ट चीज़ मिलाकर तथा दबाव से कार्बन द्विओषिद उसमें मिलाकर तैयार किये जाते हैं।

वे दिमाग को तरो ताजा बनाते हैं और आमाशय में पकी चीजों को हिलाकर पाचन को उत्तेजित करते हैं।

रंगीन पेय कृत्रिम रंग और स्वाद पैदा करने वाले पदार्थों को डालकर बनाये जाते हैं और उनमें कुछ जहरीला पदार्थ होने की सम्भावना होती है। शरबतों तथा रंगीन पेय पदार्थों के उपयोग के बदले नारंगी के रस तथा शिकंजी का पानी ताजे नीबुओं का रस निचोड़ कर बनाये गये शर्बत को पीना चाहिए। उनमें विटैमिनों, लवणों और अम्लों के होने की वजह से वे अधिक उपयोगी हैं। वे चित्त को बहुत हरा करने वाले भी हैं।

दूध और दही को पतला बनाकर तैयार किये गये पेय पदार्थों में भोजन के निश्चित गुण होते हैं और देश के कुछ भागों में बहुधा प्रयुक्त होते हैं।

चाय, काफी, कोको—ये सब कुछ अंशों में उत्तेजक पदार्थ हैं। इन तीनों में से प्रत्येक में एक पदार्थ होता है जो उत्तेजक का काम करता है। चाय में उत्तेजक पदार्थ थीन (Theine), काफी में केफीन (Caffeine) होता है। थीन और केफीन का संगठन करीब-करीब एक जैसा है। कोको में उसी तरह का उत्तेजक पदार्थ होता है जिसको थियोब्रोमीन (Theobromine) कहते हैं। थोड़े परिमाण में चाय, काफी और कोको का उपयोग वात संस्थान को उत्तेजन प्रदान करता है। थकान और नींद की इच्छा कम हो जाती है। इस कारण से मानसिक कार्य करने वालों में उनका उपयोग बढ़ रहा है।

चाय का आजकल इस देश में खूब प्रचार है। यह चाय के पेड़ की सूखी पत्तियाँ होती हैं। भारतवर्ष के पहाड़ी इलाकों में चाय बहुत अधिक परिमाण में उगाई जाती है। यह लंका (Ceylon), चीन और जापान में भी होती है। जब पत्तियाँ मुड़ने लगती हैं तो वे सुखाई जाती हैं। चाय की ताजी पत्ती की विशिष्ट अण्डाकार (चित्र) आकृति होती है और उसके किनारे दंतोले होते हैं।
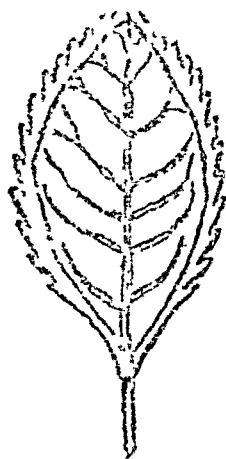
चित्र संख्या ८१
चाय की पत्ती

उत्तेजक पदार्थ थीन के अतिरिक्त चाय की पत्ती में एक दूसरी चीज टैनिन और एक वाष्पशील तैल होता है।

थीन मस्तिष्क, माँसपेशियों, दिल और फेफड़ों को उत्तेजना देता है। उत्तेजना के पश्चात् बुरा असर या उदासी नहीं आती।

टैनिन एक कड़वा पदार्थ है जो हानिकारक है क्यों कि वह आमाशय की भीतरी सतह को घायल करता है और इस तरह आमाशयिक रस के बहाव को रोक देता है। यह प्रोटीन को कड़ा करके उसे अपाच्य बना देता है।

चाय को कभी उबालना न चाहिए और न उसे रखे रहने देना चाहिए क्योंकि उबालने और रखे रहने से टैनिन घुल जाता है।

चाय को बना कर तत्काल ही पीना चाहिए।

वाष्पशील तैल इसे अपना विशिष्ट स्वाद प्रदान करता है।

चाय बनाना—चाय को केवल सिझाना चाहिए उबालना नहीं। चाय के बर्तन में खौलते पानी में चाय को डाल देना चाहिए। बर्तन में कुछ गर्म पानी डाल कर गर्म करना चाहिये।

ज्यों ही चाय का खास रंग आ जाय उसे पी लेना चाहिए। चार मिनट से अधिक उसको नहीं रखना चाहिए।

मॉस या चीज़ का भोजन करने के बाद शीघ्र चाय न पीना चाहिए। दूध तथा चीनी के साथ चाय पीना अच्छा है। ऐसे चाय के प्याले से ताज़गी के साथ-साथ पोषण भी मिलता है।

काफी—काफी का सक्रिय पदार्थ काफी के पौधे के बीज में होता है पत्ती में नहीं। काफी का पौधा ब्रेज़ील, सीलोन (लंका) व मध्य अफ्रीका और वेस्ट इन्डीज में होता है। बीजों को भून कर उनका चूर्ण तैयार किया जाता है।

काफी की क्रिया चाय की क्रिया के समान है। इसके अलावा यह गुर्दों को उत्तेजित करती है जिससे मूत्र अधिक बनता है। कई लोगों को काफी थोड़ी हल्की दस्तावर होती है।

काफी में टैनिन का परिमाण चाय से कम है अतः इससे अपच नहीं होता। इस कारण से इसे १०-१५ मिनट रखा जा सकता है। काफी चाय की ही तरह तैयार की जाती है। एक वाष्पशील तैल के कारण इसका स्वाद निराला ही है। इसमें कुछ पोषण तत्व भी होते हैं।

कोको—यह कोको वृक्ष के बीजों से बनाया जाता है। यह पेड़ विशेषतः वेस्ट इंडीज में होता है।

नाना प्रकार से तय्यार किया गया कोको वेचा जाता है। बीज में साधारणतः कुछ समय तक खमीरण होने देते हैं क्योंकि इस तरीके से कोको में विशिष्ट स्वाद आता है। उसके बाद बीजों को भूना जाता है और पीस कर चूरा बना लिया जाता है।

कोको में थियोब्रोमीन होता है जिसका संगठन और गुण थीन और केफीन जैसे होते हैं। इनमें प्रोटीन, वसा, श्वेतसार, चीनी और लवण भी होते हैं। इसलिये यह उत्तेजक के साथ-साथ पुष्टिकारक पदार्थ भी है।

कोको दूध में या पानी में या दोनो में तैयार किया जाता है और तब सारा का सारा पी लिया जाता है। कोको से चाकलेट भी बनती है।

शराब से बने पेय पदार्थ

शराब से बने पेय पदार्थ खमीरण विधि से तैयार किये जाते हैं। चीनी के विभिन्न घोलों में खमीरण होने से मद्य बनता है। इन सारे पेय पदार्थों में मद्य होता है पर उसका परिमाण अलग अलग होता है यह बरांडी, (५०% से ऊपर) ह्विस्की और रस में सबसे अधिक और बियर में सब से कम ३% होता है।

इन मद्य वाले पेय पदार्थों को पीने से वे शरीर में बहुत जल्दी फैल जाते है। थोड़ी मात्रा में मद्य वातसंस्थान को उत्तेजना प्रदान करता है, आमाशयिक रस को बढ़ाता है और भूख बढ़ाता है। इस लिये यह माना जाता है कि मद्य शरीर को गर्म करता है। शराब से उत्तेजना के बाद शिथिलता आ जाती है और ज्ञानेन्द्रियों की तीव्रता इसके उपयोग से घट जाती है। शराब पीने से सर्दी और रोगो के प्रतिरोध की शक्ति कम हो जाती है।

बड़े परिमाण में शराब का लगातार लम्बे काल तक उपयोग वातसंस्थान को शिथिल और निकम्मा बना देता है। शराब के पियक्कड़ों में ये असर बहुधा देखे गये हैं—असंबद्ध बातें, लड़खड़ाती चाल, बेहोशी या गहरी नींद।

शराब के अमित उपयोग से आमाशय, यकृत, वृक्क और मस्तिष्क के बहुत से रोग हो जाते हैं। यह उमर को घटाता है। शराब के पियक्कड़ों की मृत्युसख्या उसी आयु में शराब से दूर रहने वाले लोगो की मृत्यु संख्या की अपेक्षा पचगुनी अधिक है।

चिकित्सा शास्त्र के प्रसिद्ध विद्वानो ने शराब के उपयोग को बार-बार बुरा बतलाया है। प्रोफेसर क्रीपेलिन ने घोषित किया है कि भोजन के रूप में शराब हानिकारक है, उपयोगी नहीं।

शराब से बने पेय पदार्थों के दुरुपयोग के कारण ही संसार में अधिकांश अपराध, दरिद्रता, कष्ट और बीमारियाँ होती हैं।

थोड़ी मात्रा में भी शराब के उपयोग को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिये। नवयुवकों के लिये सुरक्षित मार्ग शराब से बने सब तरह के पेय पदार्थों से बचना है।

सारांश

पेय पदार्थ वे हैं जो पीने के काम आते हैं। वायु मिश्रित पानी, शरबत, शिकंजी दिल को ताज़ा करने वाले तथा शरीर को ठंडक पहुँचाने वाले होते हैं। दूध के पेय पदार्थ पोषणीय भी होते हैं। चाय, काफी व कोको वात संस्थान को उत्तेजित करते हैं। शराब काम में नहीं लानी चाहिये। वह स्वास्थ्य तथा चालचलन को खराब करती है।

प्रश्न

१—पेय पदार्थ क्या हैं? उदाहरण दीजिये।

२—सोडावाटर आदि पदार्थ क्या हैं? उनके पेय पदार्थों के रूप में उपयोग पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

३—बतलाइये सिझाने से क्या तात्पर्य है? भारत में प्रयुक्त सिझाये हुये विभिन्न पेय पदार्थों का वर्णन कीजिये।

४—चाय का संगठन क्या है? इसके उपयोग एवं दुरुपयोग क्या हैं?

५—चाय किस तरह तैयार की जानी चाहिये?

६—कोको और काफ़ी का चाय की अपेक्षा पेय पदार्थ के रूप में क्यों अधिक महत्व है? उनके उपयोग और दुरुपयोग क्या हैं?

७—शरीर पर शराब का क्या असर होता है?

८—हमें शराब के उपयोग से क्यों दूर रहना चाहिये?

———

अध्याय २१

वस्त्र

शरीर की स्वाभाविक गर्मी उसका तापक्रम लगभग ९८'४° फ० बनाये रखती है। ठंडी आवहवा में या जाड़े के मौसम में यह तापक्रम हवा के तापक्रम से ऊँचा होता है। इसलिए शरीर की गर्मी का हवा में जाने की ओर झुकाव रहता है। शरीर की गर्मी की हानि को रोकने के लिये वस्त्रों की जरूरत पड़ती है। गर्मी के दिनों में और गर्म देशों में गर्मी तथा धूप से शरीर की रक्षा करने के लिए कपड़ों की आवश्यकता होती है। जब शरीरमें पसीना आता है तो कपड़े वाष्पीभाव से गर्मी की तेजी से हानि होने को रोकते हैं। यदि बहुत अधिक गर्मी बड़ी तेजी से शरीरसे निकलती है तो कँप-कँपी आने लगती है। कपड़ों से कुछ गर्मी विशेषतः गर्मियों में बाहर निकलनी चाहिये। कपड़ों का काम शरीर को एकाएक धूप में पड़ने से बचाना है। वस्त्र का परिमाण स्थान की आवहवा पर निर्भर है पर प्रचलित फैशन के मुताबिक उसमें सुधार कर लिया जाता है।

वस्त्रों से प्राप्त मुख्य फायदे ये हैं—

१—गर्मी को बाहर निकलने से रोकना या उसके निकलने में सुगमता पैदा करना।

२—शरीर को ठंड, गर्मी, धूप, धूल और चोट लगने से बचाना।

३—सभ्यता के लिये अपने नंगेपन को ढकने और फुर्तीला दिखलाई पड़ने के लिये। केवल मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो अपने शरीर को वस्त्र से सुरक्षित रखता है।

४—कुछ लोग उसे अलंकार की तरह पहनते हैं और बाकी

के लोग उसे जातीयता, व्यवसाय या धर्म के चिह्न की तरह उपयोग करते हैं।

विशिष्ट वस्त्र का मूल्य उसमें लगे माल पर निर्भर है। पोशाक बनाने के लिए प्रयुक्त विभिन्न वस्त्रों का गुण विचारणीय है।

बहुत बार वस्त्र विशेष तथा पोशाक की बनावट का निर्णय फैशन पर निर्भर करता है। हमें कपड़े तथा पोशाक की बनावट की उपयोगिता और हलकेपन से पसन्द करना चाहिये।

वस्त्रों के बनाने के लिये पदार्थ

पहनने के कपड़े रुई, सन (linen), कृत्रिम रेशम, रबड़, ऊन, समूर, रेशम और चमड़े के बनाये जाते हैं।

वे पेड़ पौधों से या जानवरों से प्राप्त होते हैं।

पेड़-पौधों से प्राप्त पदार्थ

कपास के पौधे से रुई मिलती है। कपास की खेती हिंदुस्तान, मिश्र और अमेरिका में की जाती है।

रुई से बना कपड़ा गर्मी का सुचालक है और फलस्वरूप यह शरीर की गर्मी बाहर निकलने देता है।

वस्त्रो का प्रमुख कार्य यह है कि वे शरीर से गर्मी को न निकलने दें। इसलिए रुई के कपड़े ठंडी आवहवा या जाड़े में पहनने के लिये उपयुक्त नहीं हैं।

यह सस्ती, हलकी और टिकाऊ चीज है। इसको ठीक तरह से धोया जा सकता है और पहनने में ठीक होती है। यह सिकुड़ती नहीं। इसलिए सामान्यतः गर्मी में इसका उपयोग किया जाता है। पर यह आर्द्रता को जल्दी ग्रहण कर लेती है और पसीने से गीली हो जाती है। इसे अन्दर के वस्त्र के ऊपर पहनना चाहिए।

अन्दर का यह कपड़ा सूषिर (Porous) या जाली के वस्त्र का बना होना चाहिए।

सन—यह पटसन (Flax) की भीतरी छाल से बनता है। पौधे के तने को पानी में डाला जाता है जिससे जोड़ने वाले तन्तुओं से रेशे अलग हो जाते हैं। इसके बाद रेशों को साफ कर लिया जाता है तथा उनका रङ्ग भी कभी २ उड़ा दिया जाता है।

यह गर्मी का रुई से अधिक सुचालक है और आर्द्रता का शोषण अधिक जल्दी करता है। यह गर्मी को शरीर के बाहर निकलने से नहीं रोकता और इसलिये इसके बने वस्त्र शरीर को ठंड से बहुत कम बचा सकते हैं। यह ठंडा और नरम होता है। इसलिए गर्मी में पहनने के लिए अच्छा है। यह रुई से अधिक मजबूत और ज्यादा टिकाऊ होता है और इसी कारण अधिक मँहगा भी है।

यह बढ़िया और नरम होता है और इसे अच्छी तरह धोया जा सकता है। माँड़ चढ़ी सतह बहुत चिकनी और चमकीली होती है। इसलिए इसका उपयोग कालर, कफ वगैरह बनाने में बहुतायत से किया जाता है।

रुई और लिनेन (सन) जाली के कपड़े तैयार करने के लिए बहुधा मिलाकर बुने जाते है। यह कपड़ा पहनने में अच्छा होता है क्योंकि यह पसीने को सोख लेता है तथा गीला भी नहीं होता है।

कृत्रिम रेशम—यह रेशम नहीं है। यह रुई या लकड़ी के गूदे से तैयार किया जाता है। सेल्यूलोज को नत्रो सेल्यूलोज (Nitro cellulose) में परिणित करते है और ईथर या मद्यमें घोलते हैं। तब एक लेईदार पदार्थ बन जाता है। इसे छोटे छिद्रोंमें से निकाला जाता है। ईथर और मद्य भाप बन कर उड़ जाते हैं और पीछे नत्रो सेल्यूलोज के रेशे रह जाते हैं। इन रेशों से नत्रजन उन्

को सोडियम या अमोनियम गंधिद (Sodium or Ammonium sulphide) के घोल में डालकर अलग कर दिया जाता है। कृत्रिम रेशम को तैयार करने में दूसरी विधियों का भी उपयोग किया जाता है।

कृत्रिम रेशम नरम होता है और रेशम से सस्ता है। इसलिए औरतो तथा बच्चों के अन्दर के वस्त्रों तथा मोजों के लिए इसका बहुतायत से उपयोग होता है।

इसमें से होकर सूर्य की किरणें चमड़ी तक पहुँच सकती हैं और उन्हें यह चमड़ी पर लाभप्रद क्रिया करने में सहायता करता है। इस तरह चमड़ी को स्वयं अपना ही विटैमिन बनाने में सहायता करता है।

रबड़—यह रबड़ के पौधे के रस से बनाया जाता है। यह रुई तथा दूसरी चीजों को जलदुर्भेद्य बनाने के काम में आता है।

इसका उपयोग जूतो के तले बनाने में भी किया जाता है।

बरसाती कपड़ों को केवल वर्षा से बचाने के लिये ही काम में लाना चाहिए क्योंकि ये हवा के आवागमन को रोकते हैं। इससे पसीना सूखता नहीं और अन्दर के कपड़े भी गीले हो जाते हैं।

रबड़ के तले का जूता केवल वर्षा में ही पहनना चाहिए। गर्मियो में साधारणतः रबड़ के तले के जूते का उपयोग अवांछनीय है क्योंकि इससे पैर पसीने से तर हो जाते हैं और सर्दी पैर को लगती है।

अच्छे जूतों में रबड़ के तले और पैर के बीच में एक तह छिद्रवाले पदार्थ की होनी चाहिए।

जनवरों से प्राप्त पदार्थ

ऊन—अधिकतर भेड़ के बालों से मिलती है। कई तरह के बकरों तथा ऊँट से भी ऊन प्राप्त होती है।

कपड़ों के लिये ऊन सब से अच्छी चीज है। यह गर्मी की बड़ी कुचालक है और शरीर को गर्म रखने के लिये यह सर्वोत्तम चीज है। इसका उपयोग जाड़े तथा ठंडे देशों में किया जाता है। यह बिना भीगे तत्काल आर्द्रता को सोख लेती है। कसरत के बाद भाप बनकर उड़ने से नष्ट हुई गर्मी की तीव्र गति से होने वाली हानि को रोकना जरूरी है। ऊन की बनियाइन इस काम के लिये बड़ी अच्छी होती है। ऊन के तन्तु खुरदरे और चमड़ी को रगड़ने वाले होते हैं।

धोये जाने के पश्चात् ऊन के तन्तु सिकुड़ जाते हैं। ऊनी कपड़ों को साबुन पड़े हुये गुन-गुने पानी में धोना चाहिए। कपड़े धोने के सोडे से ऊन सिकुड़ जाती है। ऊनी कपड़ों में मिट्टी लग जाती है। इसलिये उन्हे ब्रुश से साफ करके ठीक तरह से रखना चाहिये।

समूर—ठंडी आबहवा वाले देशो में रहने वाले बहुत सारे जानवरों का प्राकृतिक आवरण है। समूर बहुत गर्म होता है और बहुत सुन्दर दिखाई पड़ता है। इससे पोशाक की बनावट अच्छी और सुडौल हो जाती है। समूर बहुत कीमती होता है।

समूर के बने कालर और कफ़ का उपयोग जाड़े के लिए ओढ़ने के वस्त्रो में किया जाता है। ठंडी आबहवा वाले देशों में रहने वाले लोग समूर की वास्कट तथा दूसरे कपड़े तैयार करते है। समूर की बनी उमदा टोपियाँ कभी-कभी तैयार की जाती हैं।

कीड़ो से समूर के वस्त्रों को बचाने के लिये उन्हे सावधानी से रखना चाहिए।

रेशम—रेशम के कीड़े के रेशे से बुना जाता है।

रेशम गर्मी का कुचालक है। इसलिए यह शरीर से गर्मी को बाहर नही निकलने देता। यह हलका, नरम तथा चिकना होता है। रेशम बहुत टिकाऊ होता है तथा उसकी एक विशेष चमक

होती है। यह सिकुड़ता नहीं और आर्द्रता को सोख लेता है तथा गीला हो जाता है। यह बहुत महँगा होता है। रेशम के कपड़ों को धोने में चतुराई तथा अनुभव की आवश्यकता है और इसमें काफी खर्च बैठता है।

खाल—आर्कटिक प्रदेशों में रहनेवाले लोग तथा हवाई जहाजों के आदमी जिन्हें बहुत ऊँचाई पर जहां बहुत ठंढ होती है, उड़ना पड़ता है, खाल के कपड़े बनाते हैं। नित्य प्रति पहनने और व्यवहार की अनेक वस्तुएँ यथा जूते, कमरबन्द, बटुए, महिलाओं की थैलियाँ बनाने में खाल का उपयोग किया जाता है।

स्वास्थ्य के लिये उपयोगी वस्त्र—ठंडे देशों और जाड़े के मौसम में पोशाक का मुख्य काम शरीर की सतह से गर्मी को बाहर न निकलने देने का है। इसलिए लोगों को ऊनी कपड़ों की जरूरत पड़ती है जो अधिक गर्म हों। कपड़े गर्म नहीं होते। वे केवल शरीर की गर्मी को बाहर जाने से रोकते हैं। शरीर वस्त्रों को जितना गरम कर देता है वास्तव में वे उतने से अधिक गर्म नहीं होते। वास्तव में जरूरत है गर्मी के कुचालक की ताकि वह शरीर से गर्मी को बाहर न जाने दे। इस काम के लिये ऊन सर्वोत्तम है। ऊन के तन्तुओं से कोषों के बीच की जगहों में बहुत सी हवा भरी रहती है और उसके धागे स्वयं थोड़ी थोड़ी हवा से भरे रहते हैं। वायु गर्मी का कुचालक है। ऊन हवा से भरी होने के कारण गर्मी का कुचालक है।

ऊन नहीं बल्कि ऊन में उपस्थित वायु वास्तव में हमारे शरीर से गर्मी को निकल जाने से रोकती है।

गर्मियों में तथा गर्म देशों में साल के अधिकांश भाग में गर्मी की हानि गम्भीर विचारणीय विषय नहीं होता। इसके विपरीत चर्म को ठंडा रखने तथा उसे गर्मी से बचाने की आवश्यकता होती है।

इस काम के लिये वस्त्र रंग तथा बनावट दोनों में हलके होने चाहिए। गर्मी से बचने के लिए सर्वोत्तम रंग सफेद होता है। और उसके बाद खाकी का नम्बर आता है। इस काम के लिये पीले और गुलाबी रंग उपयुक्त नहीं हैं। नीले और काले रंग से गर्मी से कोई त्राण नही मिलता। वे उल्टे गर्मी का शोषण करते हैं और उनके पहनने से आराम नही मिल सकता।

ग्रीष्म के लिए सोखने वाले वस्त्र होने चाहिए क्योकि पसीने को सोखना और फिर उसे धीरे-धीरे वाष्पीभूत होने देना आवश्यक है। इसमे चमड़ी से गर्मी धीरे धीरे वाहर निकलेगी। ऐसे वस्त्र गीले न हो जाने चाहिए क्योंकि इस तरह गीले होने पर कपड़े खाल से चिपक जाते हैं। ढीला बुना हुआ कपड़ा (सुपिर या जालीदार वस्त्र) इस काम के लिये सब से अच्छा होता हैं। ढीले बुने हुये कपड़ो की जाली में हवा होती है और इसलिए ऐसे कपड़े शरीर की गर्मी को जल्दी निकल जाने से रोकते हैं। वे बाहरी गर्मी को भी शरीर तक नही पहुँचने देते।

गर्मियों के लिए—

(१) हलके,
(२) फीके रंग के,
(३) पानी को अच्छी तरह सोखने वाले, एवं
(४) गीले न होने वाले,
वस्त्र होने चाहिए।

वे जालीदार या ढीले बुने हुए कपड़ो के बने हुए होने चाहिए और शरीर में पहनने में ढीले होने चाहिए। ढीले कपड़ो से शरीर के चारो ओर हवा आवृत्त हो जाती है और इससे शरीर की गर्मी के जल्दी जल्दी वाहर निकलने से तथा शरीर को बाहरी गर्मी लगने से और अधिक सुरक्षा प्राप्त हो जाती है।

अच्छे, हलके और सोखने वाले कपड़े का बना नीचे पहनने के वसन का उपयोग करना एक अच्छी बात है। यह गर्मी की ऋतु के लिये बहुत पतला तथा बुनाव में जालीदार और जाड़ों के लिए मोटा तथा ऊनी होना चाहिए।

पहनने के लिये प्रयुक्त वस्त्रों का बुनाव चर्म को रगड़ने वाला न होना चाहिए और न चर्म के लिए हानिकारक रङ्ग से रङ्गा हुआ ही हो। वस्त्रों को रङ्गने के लिए प्रयुक्त रङ्गों से चर्म रोगों के होने के बहुत उदाहरण मालूम हुए हैं पहनने के लिए हलके रङ्ग के वस्त्र सर्वोत्तम हैं।

जिस ऋतु में हम कपड़े पहनते हैं उस पर कपड़ों का परिमाण निर्भर होगा।

जाड़ों में कपड़े ठीक इतने होने चाहिए जो शरीर की गर्मी को सुरक्षित रखने और ठंड न मालूम होने देने के लिए यथेष्ट हों।

कपड़े न्यूनतम होने चाहिए। कई लोग वर्ष के ठंडे भाग में बहुत ज्यादा कपड़े पहन लेते हैं। वे अपनी गर्दन के चारों ओर कपड़ा लपेट लेते हैं। बच्चों के बहुत अधिक कपड़े लपेट दिए जाते हैं। उनको पहनना कष्टप्रद होता है।

चमड़ी गर्मी के निकलने का कुछ प्रतिरोध करती है, इसे कुछ ठंड में रहने देना अच्छा होता है क्योंकि जब कपड़े उतारे जाते हैं तो ठंड लगनेकी विशेषतः उन लोगों को जिन्होंने कुछ देर तक अत्यधिक वस्त्र धारण किया है—अधिक संभावना होती है।

बहुत ज्यादा कपड़े पहनना कम खर्चीला भी नहीं है। कपड़े केवल उतने ही होने चाहिये जिससे शरीर को ठंड लग जाने से बचाया जा सके।

गर्मी की ऋतु में केवल थोड़े से कपड़ों की जरूरत पड़ती है। नीचे के कपड़े के पहनने को प्रोत्साहन देना चाहिये। बच्चों के पास गर्मी में रुई की तथा जाड़ों में ऊनी बंडी जरूर होनी चाहिये।

तंग वस्त्रों से बचना चाहिये । वे ढीले कपड़ों की अपेक्षा अधिक गर्म नहीं होते । ढीले और रोएँदार वस्त्रों से शरीर और वस्त्रों के बीच तथा चुन्नट में (pleats) में हवा घिरी रहती है । हम जानते हैं कि हवा गर्मी का कुचालक है और इसलिये ढीले वस्त्र शरीर को गर्म रखने में अधिक समर्थ हैं ।

ढीले वस्त्र आरामदायक होते हैं, लेकिन तंग वस्त्र दुःख देने वाले होते हैं और उनसे शरीर के विभिन्न भागों के चोट पहुंचने की सम्भावना होती है ।

तंग जूतों से पैर में गट्टे पड़ जाते हैं और वह बदसूरत हो जाता है । इससे एक उंगली दूसरी उंगली को दबाकर उस पर आ जाती है । तंग जूतों से अंगूठा अन्दर की तरफ मुड़ जाता है। ठीक तरह से बने जूतों से न पैर की आकृति बिगड़नी चाहिये और न पैर को तकलीफ होनी चाहिये ।

चित्र संख्या ८२

बिगड़ा हुआ पैर स्वाभाविक पैर

महिलाओं में कमर को कसकर बाँधने और इस तरह उसे तंग करने की प्रवृति थी । यद्यपि फैशन बदल गया है फिर भी लड़कियाँ और महिलाएँ कमर में साड़ी को अत्यन्त कस कर बाँधती हैं । इससे भीतर के नाजुक अवयव दब जाते हैं । वे स्थानच्युत

हो जाते हैं तथा उन्हें चोट भी पहुँचती है। तंग फीतों से पसलियाँ अन्दर दब जाती हैं। छाती का गह्वर आयतन धीरे धीरे घट जाता है और श्वास प्रक्रिया में बाधा पहुंचती है।

तंग कपड़े रक्त वाहिनियों को दबा देते हैं और इस तरह रक्त के उचित बहाव में रुकावट होती है। तंग पहने जा सकने वाले हैट, तंग कालर, अंगिया, कमरबन्द और गार्टरों से सम्बद्ध अङ्ग पर असर पड़ता है और बहुत सी गंभीर अवस्थाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। तंग हैट से सिर में गंजापन हो जाता है, तंग कालरों से सिरदर्द होता है, अंगिया तथा कमरबन्द से अंदरूनी अवयवों पर असर पड़ता है और रक्त के बहाव तथा स्वाभाविक श्वासोच्छ्वास क्रिया में बाधा पहुँचती है। तंग कपड़ों से शरीर के विभिन्न अङ्गों की स्वच्छन्द गति में रुकावट होती है।
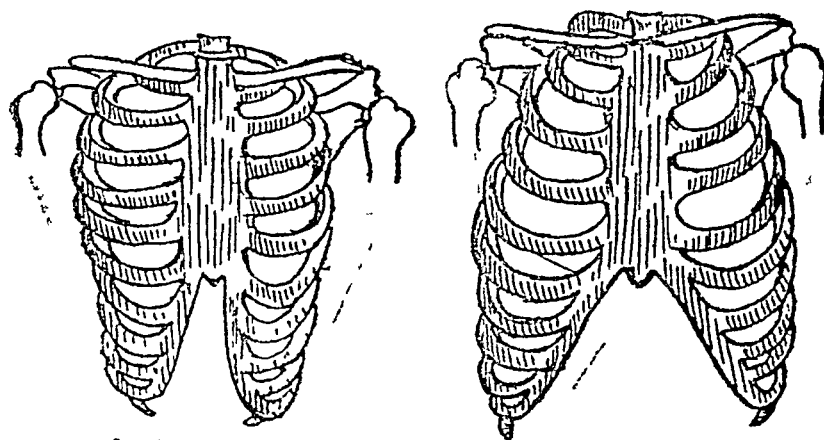
दबी हुई छाती चित्र संख्या ८२ स्वाभाविक छाती

कपड़ों का भार मुख्यतः कंधों पर रहना चाहिए कमर पर नहीं। कमर पर केवल थोड़ा ही भार पड़ना चाहिए। उदर के निम्न भाग के अवयव न दबने चाहिए।

जब सब कुछ कहा जा चुका है, स्वास्थ्य विज्ञान की शिक्षाओं

पर फैशन की आज्ञाओं की विजय हो सकती है। स्वास्थ्य संबंधी विचारों की अपेक्षा लोगों के मस्तिष्क में कभी-कभी फैशन की शक्ति अधिक होती है। स्वास्थ्य विज्ञान की बातों के सर्वप्रिय होने पर हमें यह आशा करनी चाहिए कि इसकी शिक्षाओं पर उचित ध्यान दिया जायगा। जब बुरी तरह के वस्त्रों या पहनने की खराब विधि के सम्बन्ध में फैशन की मॉग होती है तो हमें उस तरफ न बढ़कना चाहिए।

छोटी गर्दन के कपड़े, आधी बाहे और निकर तथा संदल व चप्पल का प्रयोग यह सब अच्छे हैं।

सारांश

वस्त्र, शरीर को, सर्दी, गर्मी धूल तथा चोट से सुरक्षित रखते हैं। वस्त्र पहिनना सभ्यता की निशानी है। वस्त्र बनाने के पदार्थ यह हैं, रुई, सन, कृत्रिम रेशम, रबड़, ऊन समूर, रेशम और खाल। हर एक में अच्छे तथा बुरे गुण होते हैं। और ये ऋतु के अनुसार पहिने जाते हैं। वस्त्र गरम तथा सूखे होने चाहिए। सुपिर या जालीदार हलके तथा थोड़े होने चाहिये उन वस्त्रों को साफ रखना चाहिये। तंग वस्त्र नहीं पहनने चाहिए। जूते आराम दायक तथा चौड़े पंजे वाले और ऊँची ऐड़ी वाले न होने चाहिये।

प्रश्न

१—वस्त्रों के मुख्य काम क्या हैं?

२—साधारण उपयोग में आने वाली विभिन्न प्रकार की पोशाक के गुण बतलाइये।

३—साफ तौर पर बतलाइये कि कपड़ों द्वारा गर्मी को बाहर निकलने से कैसे रोका जाता है।

इस काम के लिये कुछ कपड़े क्यों उपयुक्त और दूसरे क्यों अनुपयुक्त हैं?

४—आप गर्मी व जाड़े में किस तरह के कपड़े पहनेंगे?

५—तंग कपड़े क्यों खराब कहे जाते हैं?

अध्याय २२
वैयक्तिक स्वास्थ्य तथा स्वच्छता

वैयक्तिक स्वास्थ्य विज्ञान में वे सारी बातें शामिल हैं जो हमें अपने स्वस्थ रखने तथा अपने स्वास्थ्य को सुधारने के लिए करनी चाहिए। हमारे लिये यह जानना और समझना अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि स्वास्थ्य को बनाये रखने और उसे सुधारने के लिए सफाई, कसरत, आराम और नींद कितनी जरूरी हैं। प्रत्येक व्यक्ति के ज्ञान का अनिवार्य अङ्ग अपने आपको दुरुस्त और स्वस्थ रखने के साधारण सिद्धान्तों को जानना है। इन सिद्धान्तों को समझना आसान भी बहुत है।

यद्यपि ये नियम सीखने और पालन करने के लिये आसान हैं, बहुधा व्यवहार में उन पर ध्यान नहीं दिया जाता। इन नियमों के सीखने का मुख्य उद्देश्य स्वस्थ आदतों का निर्माण है। ये नियम हमारे दैनिक जीवन के अङ्ग बन जाने चाहिए। उचित स्वस्थ आदतें यथासंभव शीघ्र बन जानी चाहिए। बच्चों को भी अपने बड़ों से अनजाने इन आदतों को ग्रहण कर लेना चाहिए। यदि अभी तक ऐसा हो नहीं पाया है तो अब ऐसा करने का समय आ गया है।

हमारा स्वास्थ्य हमारी स्वास्थ्य सम्बन्धी आदतों पर निर्भर है। यदि हमारी आदतें स्वस्थ और ठीक हैं तो हमारा स्वास्थ्य गहरी नींव पर स्थित है और हम दीर्घ स्वास्थ्य और आनन्दमय जीवन, जो जीवन का उद्देश्य है, व्यतीत कर सकते हैं।

वैयक्तिक स्वास्थ्य विज्ञान में इन बातों का वर्णन होता है—

(१) सामान्य स्वच्छता।
(२) चमड़ी की सफ़ाई तथा उसकी रक्षा।
(३) बाल और नाखून की सफाई तथा उनकी रक्षा।
(४) मुँह, दाँत, और आँतों की सफ़ाई तथा उनकी रक्षा।
(५) आँख, नाक, और कान की सफाई तथा उनकी रक्षा।
(६) व्यायाम, आराम और निद्रा।
(७) वस्त्र।

१. *स्वच्छता*—स्वास्थ्य को बनाये रखने की मुख्य बातों में से स्वच्छता एक है। स्वच्छता का पद ईश्वरता के बाद ही है। वे व्यक्ति जो स्वच्छ रहते हैं प्रसन्नता अनुभव करते हैं और ठीक काम करने और भला बनने का प्रयत्न करते हैं। वे आदमी जिनका शरीर हमेशा गन्दा रहता है, उदास एवं हताश रहते हैं। उनके विचारों के भी गन्दे होने की सम्भावना है। स्वच्छता से आत्माभिमान पैदा होता है। स्वच्छ व्यक्ति कार्यशील, मजबूत और स्वस्थ होता है। सफाई महँगी नहीं होती। यह हमारी असावधानी है कि हम अपने को साफ नहीं रखते। हमें अपने तथा समाज के स्वास्थ्य के लिए आलस्य से भिड़ जाना चाहिए।

स्वच्छता वैयक्तिक, सामाजिक एवं जातीय गुण है और प्रत्येक बच्चे को साफ रहने की आदत ग्रहण करने की शिक्षा देनी चाहिए। अपने बच्चों को साफ रखने और उन्हे अच्छी आदतें सिखाने का बहुत कुछ उत्तरदायित्व माता-पिताओं पर है।

यदि शरीर को साफ नहीं किया जाता तो चमड़ी पर धूल और पसीना जम जाता है, यह चमड़ी के छिद्रों को ढक देता है और इस तरह चमड़ी के कामों में हस्तक्षेप करता है। यह कीटाणुओं के लिए अच्छा स्थान बन जाता है। गंदगी से बहुत से रोग

हो जाते हैं। इस तरह फोड़े, फुंसियाँ, दाद और दूसरे चर्मरोग होते हैं।

इसलिए शरीर के प्रत्येक भाग को साफ रखना आवश्यक है। हमें अपने शरीर को प्रतिदिन धोना चाहिये। खाना खाने से पहले और बाद में मुँह, दाँतों और हाथों को धोना चाहिए। बालों, चेहरे, हाथों और पैरों को हमेशा साफ रखना चाहिए और बढ़े हुए नाखूनों को काट देना चाहिए। नियमित समय पर टट्टी जाना, बालों में कंघी करना, दाँतों को साफ करना और ऊपर कही गई दूसरी बातें हमारी प्रतिदिन की आदतें बन जानी चाहिएं।

पसीना चिकटा होता है और संभवतः पानी से दूर न हो सके। यह साबुन द्वारा आसानी से हटाया जा सकता है। इसके अलावा रोगों के कीटाणु भी मर जाते हैं। लगे हुए साबुन को प्रचुर साफ जल से धोकर दूर कर देना चाहिए। शरीर के वे भाग जहाँ सब से अधिक पसीना निकलता है। खास कर साफ किये जाने चाहिए।

गर्मी में ठंडे पानी का प्रयोग करना चाहिए। यह शरीर को तरो ताजा बना देता है। जाड़े में बंद स्नानघर में नहाना चाहिये। बहुत ही प्रचण्ड सर्दी की ऋतु में गर्म पानी से नहाया जा सकता है।

स्नान करने के बाद शरीर को भलीभाँति सुखा लेना चाहि[ए] और एक खुरदरे तौलिये से उसे थोड़ा रगड़ना चाहिये। इस[से] उन भागों में रक्त के बहाव को उत्तेजना प्राप्त होती है और सा[रे] शरीर में गर्मी आजाती है (स्नान करने से नाड़ियों को शान्[ति] और शरीर को ताजगी मिलती है)।

२. चमड़ी की रक्षा—चमड़ी कई काम करती है। इस[से] चिकटा पदार्थ निकलता है। यह पसीने को बाहर निकालती है[।] यह स्पर्शेन्द्रिय का काम करती है। यह शरीर के तापक्रम

यथाक्रम रखती है। शरीर के लिये वह रक्षा करने वाला आवरण है। प्रतिदिन चर्म की ओर कुछ ध्यान देना उचित है।

यह अपना काम तभी कर सकती है जब बराबर उसकी सफाई की जाय। अन्यथा मैल, मिट्टी, पसीना, चिकनाई और मरीखाल उस पर जम जाती है। यदि इन्हे धोकर दूर न किया जाय तो चर्म के कामों में बाधा पहुँचती है और चर्म रोग हो जाते हैं।

चर्म को साफ न रखने से निम्न लिखित परिणाम होते हैं:—

(१) चमड़ी के छिद्र बन्द हो जाते हैं। चमड़ी शरीर के अवांछित पदार्थों का उत्सर्ग करने में असमर्थ हो जाती है। गुर्दों तथा फेफड़ों को अतिरिक्त कार्य करना पड़ता है।

(२) चर्म पर एकत्र हुये मैल में रोग के कीटाणु या पराश्रयी जीव बढ़ने लगते हैं। इस तरह से चर्मरोग एव दूसरी बीमारियाँ हो जाती है।

(३) चमड़ी से अरुचिकर तथा घिनौनी दुर्गंध आने लगती है। चर्म के संपर्क में आने वाले कपड़ो से भी दुर्गन्ध आने लगती है।

(४) चमड़ी को ठीक स्पर्श ज्ञान नही होता।

(५) पसीने के न निकल सकने के कारण यह शरीर के तापक्रम को यथाक्रम नहीं रख सकती।

(६) चिकनाई का बाहर निकलना बन्द हो जाता है। इससे चमड़ी पर छोटे छोटे काले धब्बे पड़ जाते हैं।

चमड़ी के साफ न रहने से साधारण स्वास्थ्य पर भी असर पड़ता है। आदमी अपने को अशान्त, ढीला ढाला तथा अयोग्य अनुभव करता है।

इसलिये यह जरूरी है कि चमड़ी को धोकर सदा साफ रक्खा जाय। चिकने तैल को संभवतः पानी न हटा सके इसलिए साबुन का उपयोग करना चाहिये। यदि शरीर को प्रतिदिन गर्मियों में उससे अधिक बार न धोया जाय और चमड़ी को अच्छी तरह रगड़ा जाय ताकि उसकी सतह पर कुछ न जमने पाये तो केवल पानी से भी उसे साफ किया जा सकता है।

गर्म पानी से चिकनाई आसानी से दूर हो जाती है। जाड़े के दिनों में गर्म पानी का प्रयोग किया जा सकता है। उसके बाद शरीर को साफ खुरदरे तौलिये से पोंछना चाहिये।

२. बाल और नाखून की रक्षा—बाल चर्म से बढ़कर निकले हुए हैं। इन्हें साफ रखना चाहिये तथा इनमें ठीक तरह तैल डालते रहना चाहिये। बालों को केवल पानी या साबुन तथा पानी से जैसी जरूरत हो धोना चाहिये। बालों में तैल डालने के लिए किसी अच्छे वनस्पति केश तैल का व्यवहार करना चाहिये। तैल का बहुत ज्यादा उपयोग अच्छा नहीं है।

बालों में नियमित रूप से कंघी करनी चाहिये और ब्रुश फेरना चाहिये इससे वे और अधिक अच्छे ही दिखाई देंगे। इससे चमड़ी भी उत्तेजित होती है जिससे रक्त का बहाव बढ़ जाता है और तैल ग्रंथियों के काम की गति में तेजी आ जाती है और बाल चमकीले हो जाते हैं।

मैल से बालों को बचाना चाहिये। बाल बहुत लंबे न बढ़ाने चाहिए। छोटे बालों को धोना और उनको ठीक रखना आसान होता है। छोटे बाल निश्चय रूपसे स्वास्थ्य के लिये लाभप्रद हैं। ये स्वास्थ्यप्रद सूर्य के प्रकाश को गर्दन, कान और सिरकी चमड़ी पर पड़ने देते हैं। सिर की चमड़ी साफ रहती है और दाद और दूसरे रोगों की छूत लगने की सम्भावना बहुत कुछ कम हो जाती है।

यदि बाल साफ न रखे जायें तो दाद खुर्री (dandruff) और कई दूसरे रोग हो जाते हैं। उनमें पराश्रयी कीट-जूएँ-पड़ जाते हैं।

बच्चों के बाल बराबर धोने और कंघी ब्रुश से संवारे जाने चाहिये।

नाखून—चमड़ी से उंगलियों तथा अंगूठों के चैतन्य सिरों की रक्षा करने के लिये बढ़ते हैं। वे लम्बे बढ़ जाते हैं और उनमें मैल भर जाता है। हाथों से बहुत काम लिया जाता है और वे जल्दी गंदे हो जाते हैं। इसलिये नाखूनों को हमेशा छोटे रखना चाहिये। इससे उँगलियाँ साफ रहेंगी।

हाथों को बहुधा साबुन से धो लेना चाहिये।

नाखूनों को दाँतों से कुतरना एक बड़ी गन्दी आदत है।

उँगलियों को मुँह, नाक या कान में नहीं डालना चाहिये।

४. *मुँह, दांत तथा आँतों की स्वच्छता*—मुँह को सावधानी पूर्वक पानी से धोना चाहिये जिससे भोजन का कोई कण मुँह में न रहने पावे।

यदि भोजन के कण दाँतों में या और कहीं रह जाते हैं तो रोग के कीटाणुओं को पलनेके लिए एक आदर्श जगह मिल जाती है। उनकी बढ़ती के लिये भोजन, गीलापन तथा उचित तापक्रम मिल जाता है। जब आदमी सोरहा हो तो उनको बढ़ने के लिये आसान वक्त मिल जाता है और वे दुर्गन्धमय श्वास, दाँत का सड़ना और अपच पैदा करते हैं।

कुछ भी खाने तथा धूल में रहने के बाद मुँह को साफ करना चाहिये।

प्रातःकाल पूरी तरह मुँह और दाँतों को साफ किए बिना कुछ न खाना चाहिए।

बहुत गर्म चाय या दूध न पीना चाहिए। दूसरे खाद्य भी बहुत गर्म नहीं खाने चाहिए। ऐसा करने से मसूढ़ों और मुँह की नाजुक झिल्लियों को चोट लगने की संभावना रहती है।

खाने में खराबियाँ मुँह की गन्दगी के लिए जिम्मेवार हैं। उचित परिमाण में केवल स्वास्थ्यप्रद भोजन ही करना चाहिए।

दाँतो को नियमित रूप से साफ करना चाहिए। उन पर थूक से कड़े पीले रंग के पदार्थ टारटर (मैल) को इकट्ठा न होने देना चाहिये। इससे दाँत खराब हो जाते है। इसे प्रति दिन दो बार दूर करना चाहिये। दाँतो के बीच में रहा हुआ भोजन खाना खाने के बाद तुरन्त ही दूर कर दिया जाना चाहिये। अगर उसे वहाँ रहने दिया जायगा तो कीटाणु उसे विखंडित कर देंगे। इससे एक अम्ल बनता है जो दाँतो को नष्ट करता तथा मसूढों को फुला देता है। श्वास भी बड़ी खराब हो जाती है। छूत आमाशय में पहुँच कर पाचन संस्थान में बहुत गड़बड़ी पैदा कर देती है।

एक कड़े ब्रश का उपयोग करना चाहिये। ताजे हरे नीम या बबूल की दतुवन अच्छी होती है। बबूल की दतुवन से अच्छा ब्रश बनता है। नीम प्रतिविष होता है।

दाँतो के दोनो तरफ मसूढ़ो को दाँतो की ओर ब्रश से साफ करना चाहिए। दाँतो में एक बाहरी, एक भीतरी, एक काटने और पीसने वाली सतह और पार्श्व पास के दाँतो के निकट होते है। इन सब सतहो को साफ करना चाहिए। ऐसा धोकर और ब्रश फेर कर किया जा सकता है। दाँतो के बीच की जगह उसमें एक रेशमी धागा डाल कर साफ की जा सकती है। पिनो और दूसरी नुकीली चीजो का उपयोग नही करना चाहिए। इससे मसूढ़ों को चोट पहुँच सकती है।

दाँत के लिए भोजन—दाँतों का संगठन आनुवंशिकता (heredity) और पोषण पर निर्भर है। गर्भवती औरत को खूब केलसियम (और सी एवं डी विटैमिन) मिलना चाहिये जिससे शिशु को हड्डियों तथा दाँतों के निर्माण के लिए उचित पोषण प्राप्त हो सके। बच्चे को अच्छा खाना मिलना चाहिए ताकि दाँत का यथोचित विकास हो सके।

कुछ बच्चे चूना वगैरह खाने की इच्छा और प्रयत्न करके कैलसियम क्षुधा प्रगट करते हैं। ऐसी हालत में योग्य चिकित्सक से सलाह लेकर चूने के पानी या किसी दूसरे रूप में अतिरिक्त कैलसियम देना जरूरी हो जाता है। दूध में कैलसियम होता है और उसे अनिवार्यतः यथेष्ट परिमाणमें बच्चों को देना चाहिए।

प्रतिदिन एक या दो बार टट्टी जाकर आँतों की सफाई करनी चाहिये। आँतें (१) नियमित व्यायाम करने (२) सुबह जल्दी तथा शाम यदि आवश्यक हो तो नियत वक्त हमेशा टट्टी जाने की आदत डालने और (३) कुछ मोटे अपाच्य पदार्थ सहित संतुलित भोजन करने से ठीक काम करने लगेंगी। खुल कर दस्त लगने के लिए डी विटैमिन बहुत सहायक तथा अनिवार्य है। यह ताजा तरकारियों तथा फलों में पाया जाता है जिन्हे यथेष्ट परिमाण में खाना चाहिये।

५ *कान, आँख और नाक की रक्षा*—आँख एक महत्वपूर्ण तथा सुकुमार अवयव हैं। जाग्रत अवस्था में यह निरतर काम करती रहती हैं। इन्हें मैल, चोट और थकान से बचाना आवश्यक है।

आँख में कष्ट पैदा होने के साधारण कारण ये हैं :—

(१) गंदे हाथों, रूमालों, तौलियों, मक्खियों आदि से प्राप्त छूत।

(२) ऐसे कमरों में पढना जहाँ रोशनी का प्रबन्ध ठीक न हो।

(३) बिना आराम किए बहुत समय तक पढ़ना या लिखना।

(४) बहुत छोटे टाइप में छपी पुस्तकों का पढ़ना।

(५) आँखों को चौंधियाने वाले प्रकाश, धूल, धुएँ और उत्तेजक भाप में खुला रखना।

आँखों को स्वस्थ बनाये रखने के लिए निम्नलिखित नियमों का पालन करना चाहिए:—

(१) जब आप घर जाये तो आँखों की धूल और कीटाणुओं को दूर करने के लिए स्वच्छ पानी से धोकर साफ कीजिए।

(२) रूमाल की अदला बदली करना तथा सीधा संपर्क न रखकर मित्रों से प्राप्त छूत से बचिए।

(३) मक्खियों से अपनी रक्षा कीजिए।

(४) अँधेरे और ऐसे कमरों में जो हवादार न हों मत पढ़िए। प्रकाश बायें कंधे के ऊपर से आना चाहिये। सामने या दाईं तरफ से नहीं।

(५) आँखों को धूल, मैल, धुएँ और चमक से बचाइये।

(६) बिछौने में लेटे-लेटे मत पढ़िये। पुस्तक पर झुकिये भी नहीं। पढ़ते वक्त आँख से पुस्तक बारह इंच की दूरी पर रहनी चाहिए।

(७) यदि आप ऐसे काम में लगे हो जहाँ दृष्टि को हानि पहुँच सकती है तो आँखों को चोट लगने से बचाइए।

(८) आँखों तथा उनकी दृष्टि की समय समय पर जाँच करवा लीजिए। यदि कोई कसर मालूम दे तो उसे चश्मे द्वारा ठीक करवा लें। दृष्टि में खराबी होने का पता साधारणतः सिरदर्द होने और पदार्थों के रङ्गीन प्रतिबिम्ब दीखने से लग सकता है।

कान—कानों को सूखा रखने से उन्हे बहुत से रोगों से बचाया जा सकता है। स्नान करने के बाद तौलिये से कानों को पोंछ कर सुखा लेना चाहिए और यदि उनके भीतर पानी चला गया है तो उस तरफ सर को झुका कर पानी को निकाल देना चाहिये तब कान के भीतरी भाग को साफ कपड़े से सुखा लेना चाहिये। तथा कथित 'कान का मोम' साधारणतः कानों में चले जाने वाले पानी के कारण होता है।

किसी भी मतलब के लिए किसी चीज को कान में नहीं डालना चाहिए। यदि कान बहता हो तो चिकित्सक की सम्मति लीजिए।

यदि कोई कीड़ा कान में घुस गया है तो तैल की दो चार गर्म बूंदे उसमें टपकाइये और तब चिकित्सक द्वारा पिचकारी से कान को साफ कराइये।

सर में ठंड लगने और गले बैठने से अक्सर मध्यकर्ण तथा गले के बीच का रास्ता (कंठ कर्णनली) रुक जाता है और मध्यकर्ण में सूजन भी आ सकती है। ठंड और कॅपकॅपी से बचिए।

नाक—नाक को साफ रखना चाहिए। तापक्रम के एकाएक होने वाले परिवर्त्तनों से इसे बचाइये। नाक पर तथा गर्दन से पीछे ठंडे पानी में भिगोये हुए स्पंज को रखने से नकसीर बंद की जा सकती है मगर कभी कभी इसे रोकना कठिन हो जाता है और सुयोग्य चिकित्सक को बुलाना आवश्यक हो जाता है।

(६) व्यायाम, आराम और नींद का वर्णन अगले अध्याय (२३ वें अध्याय) में किया जायगा।

(७) २१ वें अध्याय में कपड़ों का वर्णन किया जा चुका है वस्त्रों को साफ रखना चाहिये।

पसीने के कारण हुए गीले कपड़ों को बदल देना चाहिये।

बिछौने को भी साफ रखना चाहिए और कभी कभी उसे धूप में डालना चाहिये।

बच्चों में छोटी उम्र में अच्छी आदतों का विकास होना चाहिये। उन्हें धीरे धीरे खाना चाहिये, खाने को खूब अच्छी तरह चबाना चाहिए, भोजन नियमित समय पर करना चाहिए, खूब व्यायाम करना चाहिए व यथेष्ट आराम करना एवं नींद लेनी चाहिये और दाँत, मुँह, केश, नाखून की सफाई करनी और ठीक समय पर टट्टी जाना चाहिए।

शरीर के सारे भागों की उचित देख भाल करनी चाहिए। उन्हें चोट से बचाना चाहिए और उन्हें खूब विकसित होने देना चाहिए। शरीर के कुछ भागोंका विकास तबतक पूरा नहीं जबतक निश्चित आयु नहीं आजाती। लड़कों का विवाह बीस वर्ष से पहले और लड़कियोंका सोलह वर्ष से पहले न करने देना चाहिये।

बाल विवाह—से शरीर के उचित विकास तथा वृद्धि में बाधा पहुँचती है। यह लड़के की शिक्षा तथा जीवन में विघ्न डालता है। इससे लड़कियों की शिक्षा तथा ट्रेनिंग रुक जाती है। बाल विवाह से सम्बन्धित अनन्त चिंताओं से व्यक्ति को बहुत भारी परिश्रम होता है।

सारांश

स्वास्थ्य के लिये स्वच्छता जरूरी है। शरीर को स्वस्थ व ठीक रखने के लिये स्वच्छता तथा दूसरे नियमों का प्रचार करना चाहिये। यह नियम बचपन से ही हमारे दैनिक जीवन के अंग बन जाने चाहिये। व्यक्तिगत स्वच्छता, नियमित समय पर स्नान, चमड़ी, नाखून, मुँह, दाँत तथा आँतों की रक्षा व स्वच्छता हमें स्वस्थ बनाती है और .खुश रखती है। आँख, नाक और कान की रक्षा की ओर भी पूरा ध्यान देना चाहिये। लड़कों का विवाह २० वर्ष से पहले और लड़कियों का विवाह १६ वर्ष से पहले न करने देना चाहिये।

प्रश्न

१—वैयक्तिक स्वास्थ्य वृत्त क्या है ? इसका विस्तार कितना है ?

२—साधारण स्वच्छता का महत्व समझाइये।

३—गंदे चमड़े के खतरे क्या हैं ? उन्हें कैसे मिटाया जा सकता है ?

४—बाल और नाखून की रक्षा के संबंध में महत्वपूर्ण बातें क्या हैं ?

५—दाँतों को साफ़ रखना क्यों जरूरी है ? दाँतों को साफ तथा मजबूत बनाये रखने के लिये पहले क्या सावधानी रखनी चाहिये ?

६—आँतों के ठीक काम करने के लिये हमें क्या करना चाहिये ?

७—आँखों की रक्षा पर एक छोटी टिप्पणी लिखिये।

८—नाक और कान को साफ व स्वस्थ रखने के लिये पहले से क्या क्या सावधानी रखनी चाहिये ?

९—बालविवाह से क्या हानियाँ हैं ?

अध्याय २३

व्यायाम, मनोरंजन, थकावट, आराम और निद्रा

व्यायाम, आराम और नींद का बुद्धिमत्तापूर्ण सम्मिलन अच्छे वैयक्तिक स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है। बड़े शहरों में रहने वालों में अधिकांश इतना ज्यादा पाया जाने वाला बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य अपने काम के अक्षमता और सुस्ती में पड़े रहना व्यायाम की कमी के ही कारण है।

शरीर के काम करने की क्षमता को ठीक करने, माँस पेशियों को विकसित करने और गतिशील संधियों को पूरी तरह से चंचलता पूर्वक हिलने में समर्थ बनाने के लिए नियमित रूप से व्यायाम करना चाहिए। मगर व्यायाम के साथ साथ उचित परिमाण में आराम भी करना चाहिए। काम के बाद मनोरंजन,

आराम करना एवं नींद लेना चाहिए। स्वाभाविक पथ से कुछ भी हटना यथा कसरत बिल्कुल न करना या बहुत ज्यादा करना, नींद न लेना या निरन्तर सुस्ती एवं आलस्य में पड़े रहना गंभीर दुःखद परिणामों से खाली नहीं है।

व्यायाम—शरीर के लिए आवश्यक है क्योंकि यह शरीर को स्वस्थ बनाये रखता है और उसे कार्यशील बनाता है। व्यायाम तमाम जिंदगी भर पर विशेषतः बाल्यावस्था एवं युवावस्था में जरूरी है।

जीवन के प्रारम्भिक काल में नियमित रूप से कसरत करने से मांस पेशियाँ विकसित होती हैं। रक्त बहाव ठीक तरह से होने लगता है और भोज्य पदार्थों का ठीक तरह से एकीकरण (Assimilation) होता है। यह मॉस पेशियों और संधियों को स्वतन्त्र एवं पूर्ण गति प्रदान करती है।

शरीर का कोई भाग जब तक उससे ठीक तरह से काम नहीं लिया जाता, पूर्णतः विकसित नहीं हो पाता। स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिये यह आवश्यक है कि खून निर्बाध गति से भ्रमण करे और वह शरीर के सारे अंगों में पहुँचे। व्यायाम से यह अपने आप हो जाता है। मस्तिष्क का भी व्यायाम होना चाहिए ताकि वह शरीर के साथ साथ विकसित हो जाय।

माता पिताओं तथा अध्यापकों का यह कर्त्तव्य है कि बच्चों से मानसिक तथा शारीरिक व्यायाम कराया जाय और उन्हें जहाँ तक सम्भव हो खुली हवा में रहने दिया जाय।

प्रौढ़ अवस्था में नियमित व्यायाम का करना जारी रहना चाहिए जिससे शरीर के विभिन्न संस्थान स्वस्थ अवस्था में रहें। एक स्थान पर बैठे रहकर काम करने वाले लोगों को यथेष्ट शारीरिक व्यायाम करना चाहिये। जो लोग खुली हवा में सारे दिन शारीरिक काम करते हैं उन्हें मानसिक व्यायाम तथा

मनोरंजन की जरूरत पड़ती है। वृद्धावस्था में भी घूमना और हाथों की कसरत करना, गहरा श्वास लेना आदि हलका व्यायाम करते रहना चाहिए।

व्यायाम का महत्व

(१) व्यायाम से हम अधिक बार तथा गहरी सांस लेते हैं। साधारणतः प्राप्त होने वाले ओषजन से रक्त को अधिक ओषजन मिलता है।

(२) इससे कार्बन द्विओषिद तथा पानी के बाहर निकलने की गति बढ़ जाती है।

(३) रक्त का बहाव वेग से होने लगता है। (क) शरीर के सब भागों को ताजा रक्त अधिक बार मिलता है। (ख) मल मूत्रो का उत्सर्ग जल्दी होता है। (ग) खाद्य पदार्थ रक्त धारा में ले जाये जाकर तन्तुओ को दिये जाते हैं।

(४) सारा मलमूत्र संस्थान अधिक अच्छी तरह और तीव्र-गति से तन्तुओं से फालतू चीजों—मलमूत्र—को हटाने का काम करता है। शरीर से अधिक पसीना निकलता है। गुर्दों से मूत्र को निकालने के लिए उत्तेजना मिलती है। फेफड़ो में गैसो की अदला बदली अधिक वेग से होने लगती है।

(५) आमाशय, आंते और दूसरे अवयव अधिक अच्छी तरह काम करते हैं। व्यायाम से प्यास और भूख पैदा होती है। पाचन और एकीकरण में सुधार होता है। आंतें ठीक तरह से काम करती हैं। कब्ज रुक जाता या दूर हो जाता है। व्यायाम से शरीर के सारे कामों के नियमित रूप से होते रहने में मदद मिलती है।

(६) माँस पेशियों का विकास होता है और उनको और ज्यादा काम करने में समर्थ बनाया जाता है। वे शरीर को सुन्दरता प्रदान करती हैं। संधियाँ अधिक स्वतंत्र और पूर्ण रीति से घूमने में समर्थ हो जाती हैं।

(७) खेल और व्यायाम हमारे मन को प्रसन्नता प्रदान करती हैं और हमें सुखी बनाती हैं। वे हमारे वात संस्थान को प्रभावित करती हैं और हमारी कार्य शक्ति को बढ़ा देती है। व्यवस्थित खेलों का सामाजिक महत्व है। वे हमें सामाजिक गुणों की शिक्षा प्रदान करते हैं।

(८) फेफड़ों का समावेश (capacity) स्थाई तौर पर बढ़ जाता है।

इससे हमारा स्वास्थ्य सुधरता है और हमारी प्रतिरोध-शक्ति विशेषतः फेफड़ों के रोगों के प्रति बढ़ जाती है।

व्यायाम के सम्बन्ध में कुछ नियम—

(१) व्यायाम प्रतिदिन नियमित रूप से करना चाहिये।

(२) व्यायाम खुली हवा में करना चाहिए।

(३) उद्देश्य साधारण शक्ति और क्रियाशीलता को बढ़ाना चाहिये, न कि ताकत के जौहर में प्रवीण होना। शरीर की हरेक माँस पेशी का उचित व्यायाम होना चाहिए।

(४) अत्यधिक व्यायाम न करना चाहिये।

(५) कसरत करते समय कोई तंग वस्त्र पहना हुआ न होना चाहिये। ठंड या कँपकँपी से बचने के लिये व्यायाम के बाद तत्काल ही ऊनी बनियाइन पहन लेनी चाहिये।

(६) व्यायाम करते समय या उसके बाद तुरन्त ही खूब

पानी नहीं पीना चाहिये इस कार्य के लिये लेमन जूस अच्छा व ताजगी लाने वाला है। मुँह और गले में कुल्ले करने के लिये पानी का प्रयोग किया जा सकता है।

(७) अवस्था एवं विशेष हालतों के अनुसार व्यायाम को घटाया बढ़ाया जा सकता है।

व्यायाम के प्रकार

व्यायाम असंख्य प्रकार का है। अवस्था तथा व्यक्ति को ठीक पड़ने वाला व्यायाम चुन लेना चाहिये। व्यायाम विभिन्न प्रकार का होना चाहिये जिससे शरीर के सारे भागों को काम मिल सके।

स्कूल के विद्यार्थियों के लिये फुटबाल, क्रिकेट और हाकी सर्वोत्तम व्यायाम हैं। टेनिस से शरीर में फुर्तीलापन आता है, गति दुरुस्त होती है और निर्णय में सुधार होता है। यह एक अच्छी मानसिक एवं शारीरिक कसरत है।

रिंग टेनिस भी व्यायाम का एक बलशाली रूप है। अच्छे परिणाम प्राप्त करने के लिए वालीवाल खेल खूब जोरों से खेलना चाहिए। तैरने में शरीर की बहुतसी माँस पेशियों को काम करना पड़ता है और इससे श्वासोच्छ्वास और रक्त के बहाव की गति तेज हो जाती है।

गहरा साँस लेने के व्यायाम से छाती की माँस पेशियाँ विकसित होती हैं और फेफड़ों का समावेशन बढ़ता है। वह सुषुम्णा को सीधा रखने में सहायक होती है।

शरीर के फुर्तीलेपन को बढ़ाने के लिए दौड़ने, कूदने, उछलने, फलांग मारने की कसरतें की जाती हैं। शरीर के सब भागों की माँस पेशियों के लिए कसरतें हैं और उन्हें विशेषज्ञ की देख-रेख और आदेश में करना चाहिए। व्यायाम का सबसे सुगम

रूप घूमना है। तेज घूमते समय साधारण साँस लेते समय की अपेक्षा श्वासोच्छ्वास की गति पंचगुनी बढ़ जाती है। घूमने के साथ ताजी हवा में गहरी साँस लेने की कसरत भी करनी चाहिए। घूमते समय कुछ हाथ और धड़ का व्यायाम भी करते रहना चाहिए।

जिमनेस्टिक और व्यायाम के दूसरे विषय रूपों को उपयुक्त शिक्षा प्राप्त अध्यापक की देख रेख में ही करना चाहिए। साइकिल चलाना, घोड़े की सवारी करना, नाव खेना, कुश्ती लड़ना तथा व्यायाम के दूसरे प्रकार काफी अच्छे हैं। छुट्टियों में घूमने तथा पैदल यात्रा करने के साथ दृश्य निरीक्षण एवं दूसरे मनोरंजक काम तथा व्यायाम का सम्मिलन किया जा सकता है।

मनोरंजन—मानसिक काम के बाद मन को प्रसन्न करने वाले काम तथा कठिन परिश्रम के पश्चात आराम, खेलकूद तथा मनोविनोद के कार्य मनोरंजन में शामिल हैं। मनोरंजन का मुख्य उद्देश्य शरीर और मन को स्वस्थ अवस्था में बनाये रखना है। मानसिक या शारीरिक कार्य के पश्चात् आराम या मनोरंजन की जरूरत पड़ती है। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए लोग अपने के मन को भाने वाले विभिन्न कामों में लगाते हैं।

मानसिक काम करने वालों के लिए बागबानी बहुत स्वस्थ कार्य हैं। बागबानी के विभिन्न काम व्यायाम के बहुत अच्छे रूप हैं। पौधों को उगाने, नई शाखाओं के निकलने तथा कलियों के खुलने एवं फूलों के खिलने से काफी आनन्द मिल सकता है। स्कूल के बाग का प्रबन्ध विद्यार्थियों द्वारा किया जाना चाहिए।

घर के बाहर के खेलों से यथा मछली पकड़ना, शिकार करना, फोटो लेना, मधुमक्खियों को एकत्र करना, रंगना आदि से व्यायाम और खुली हवा में जीवन से साथ साथ आनन्द-

प्राप्त होता है। बाग में या झील के चारों ओर या नदी के किनारे तेजी से घूमना बहुत स्फूर्तिदायक होता है।

आदमी को सप्ताह के अन्त में एक बार या उससे अधिक दफे जीवन के कोलाहल से दूर निकलना चाहिये और प्रकृति के सौंदर्य का उपयोग करना चाहिए।

थकावट

थकान—कार्य करने की घटी हुई सामर्थ्य है। यह मैटाबौलिज्म से बने हुए पदार्थों के एकत्र होने से होती है। यह फालतू पदार्थ रक्त हटा ले जाता है पर यदि कठोर शारीरिक परिश्रम किया जाय या मस्तिष्क को निरंतर कार्य में लगा रखा जाय तो यह पदार्थ रक्त द्वारा तत्काल नहीं हटाया जाता। खून उसे धीरे धीरे ले जायगा और मलोत्सर्गीय अवयवों द्वारा इसे शरीर से बाहर निकाल दिया जायगा। ऐसा हो जाने पर थकान दूर हो जाती है।

इसलिये कठोर शारीरिक और मानसिक परिश्रम के पश्चात् आराम करना सर्वोत्तम है। यदि बहुत देर तक काम करना हो तो बीच बीच में आराम कर लेना चाहिए।

थकान काम करने की शक्ति के कम हो जाने और हाथ में लिए काम पर ध्यान को केन्द्रित करने की असमर्थता से प्रकट होती है।

काम में गलतियाँ होनी शुरू हो जाती हैं। भौंहे चढ़ाने तथा क्रोधित होने की प्रवृति बढ़ जाती है।

थकान की अनुभूति के साथ जँभाइयाँ आने लगती हैं, आदमी ऊँघने लगता तथा उत्साह कम हो जाता है।

आरम्भिक अवस्थाओं में अधिक रोचक कार्य ले लेना ठीक होता है। नाड़ियों और माँसपेशियों को पूर्ववत् ठीक करने का सर्वोत्तम उपाय आराम करना तथा सो जाना है।

आराम और निद्रा

स्वास्थ्य के लिए शरीर और दिमाग को आराम देना आवश्यक है। थकी हुई मॉसपेशियों और नाड़ियों में स्फूर्ति आ जाती है। ततुओं की मरम्मत हो जाती है और फालतू हानिकारक पदार्थ हटा लिए जाते हैं। पूर्ण आराम नींद लेने से मिलता है। निद्रा को 'प्रकृति की मधुर प्राण संचारक' 'श्रम कर स्नान' और 'जीवन के भोजन का मुख्य पोषक' कहा गया है।

नीरव, अन्धेरी, हवादार और ठंडी जगह अच्छी नींद के लिये उपयुक्त है, ऊँचे उठे हुए पलंग का उपयोग करना चाहिए। इससे शरीर के चारो ओर हवा का बे रोकटोक आना जाना होता है। फर्श पर सोना स्वास्थ्य के लिए खराब है।

बिछौना साफ होना चाहिए। वह बहुत कोमल न हो। दिन के समय धूप और खुली हवा सोने के कमरों में आने देनी चाहिए।

सोते समय चेहरे को ढक न लेना चाहिए। इससे फेफड़ों से साँस के साथ निकली हुई दूषित हवा में सांस लेना पड़ता है।

अनुचित भोजन से नींद या तो कम या फिर बहुत ज्यादा आती है।

कितनी नींद लेनी चाहिए—व्यक्ति की आयु पर निर्भर है। शरीर को बहुत नींद की जरूरत होती है। ज्यों ज्यो यह बढ़ता है सोना कम होता जाता है। बुड्ढे आदमी बहुत कम नींद लेते हैं।

नीचे की तालिका में विभिन्न आयु मे अपेक्षित नींद का परिमाण बताया गया है :—

शिशु को			लगभग १६ घंटे सोना चाहिए।			
२	साल के बच्चो को		,,	१४ ,,	,,	,,
४–८	,,	,, ,,	,,	१२ ,,	,,	,,

८-१२ साल के बच्चों को	११ घण्टे सोना चाहिये।	
१२-१४ ,, ,, ,,	१० ,, ,, ,,	
१४-२० ,, ,, ,,	६ ,, ,, ,,	

बालिग व्यक्तियों को ७-८ घण्टे तक सोना चाहिए।

बुड्ढे आदमी के लिए ७ घण्टे नींद की जरूरत है। इसमें दुपहर का सोना भी शामिल है।

नीद न आना—एक गभीर अवस्था है और उसे ठीक करना कठिन है। सबसे अच्छा उपाय साधारण अच्छे स्वास्थ्य का होता है जिसे (क) उत्तम पर हलके पोषण, (ख) यथेष्ट आराम और मनोरंजन, (ग) ताजी हवा में खूब हलके व्यायाम घूमना काफी अच्छा है, (घ) चिंताओं से मुक्ति द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। उनिन्द्र रोग के लिए दवा का प्रयोग न करना चाहिए। दवाइयाँ अक्सी नशीली होती हैं और स्वास्थ्य पर बुरा असर डालती हैं। इसके अलावा इनकी आदत पड़ जाती है। सबसे अच्छा उपाय साधारण स्वास्थ्य को सुधारना और वात संस्थान को स्फूर्ति देना है।

साराश

व्यायाम शरीर को स्वस्थ रखता है और उसको चुस्त बनाता है। व्यायाम नियमित समय पर ताजी हवा में करना चाहिए। विश्राम से थकान दूर होती है। निद्रा से शरीर ताजा होता है।

प्रश्न

१—व्यायाम का क्या महत्व है ? व्यायाम के सम्बन्ध में कौन से नियम ध्यान में रखने चाहिये ?

२—थकान क्या है ?

३—मनोरंजन, आराम और निद्रा क्यों आवश्यक है ?

४—विभिन्न आयु के व्यक्तियों को कितनी नींद की जरूरत होती
५—उन्द्रिय रोग किस तरह ठीक किया जा सकता है !

अध्याय २४

स्वास्थ्य और संक्रमण

संक्रामक या छूत वाले रोग—वे बीमारियाँ हैं जो एक आदमी से दूसरे आदमी को हो जाती हैं। इनमें संसर्गज रोग भी शामिल हैं।

ये रोग पराश्रयी जीवो (Parasites) या कीटाणुओं से होते हैं।

पराश्रयी जीव या कीटाणु एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के पास चले जाते है। इन संक्रामक रोगो में कुछ रोग उन जानवरोंके काटने से खून में कीटाणुओं के प्रविष्ट होनेसे होते हैं। ये जानवर रोग से पीड़ित आदमी के सक्रमति रक्त का पान किए होते हैं। दूसरे रोग कीड़ो या उनके अंडों से होते हैं जो भोजन या पेय के साथ शरीर में घुस जाते हैं। इनमें बहुत से रोग कीटाणुओं के कारण होते हैं।

कीटाणु सूक्ष्म जीव हैं और उन्हे बैक्टीरिया कहते हैं। बैक्टीरिया एक कोषीय (unicellular) जीव होते हैं। वे जीवन के निम्नतम रूप हैं। बैक्टीरिया बिना हरे रंग वाले पौधे हैं और इसलिए निर्वाह के लिए उन्हे जीवित पदार्थों पर रहना होता है। वे बहुतही सूक्ष्म होते हैं और इसी कारण शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शक यंत्र (Microscope) के आविष्कार होने तक वे मालूम नहीं किए जा सके थे। एक बैक्टीरिया मोटाई में लगभग १/२५००० इंच होता है। इसमें कोषभित्तका (cell wall) होती है और यह टूट कर

विभाजित होता है। एक बैक्टीरिया जल्दी ही दो, चार, आठ और इसी तरह बहुत तीव्र वेगसे होता जाता है जब तक वे लाखों की संख्या में पैदा होकर 'प्रदेश' (colonies) नहीं बना लेते। ये प्रदेश आँखों से देखे जा सकते हैं। हवा, पानी, मिट्टी, भोजन, पेय पदार्थों शरीर और गंधक के झरनों में भी बैक्टीरिया रहते हैं। वे संसार भर में लगभग सब कहीं मौजूद हैं और उनकी सैकड़ों किस्में ज्ञात हैं।

कई बैक्टीरिया उपयोगी होते है क्योंकि उनसे लाभदायक परिवर्तन होते हैं। खास तरह के बैक्टीरिया दूध को दही और दही को चीज में बदलते हैं। वे कई निर्माण विधियों यथा मद्य एवं सिरके निर्माण में सहायता करते हैं। उनसे विभिन्न पदार्थों का नाश व विच्छेदन होता है और इस तरह वे इस संसार को जीवनी कचरे और शवों को साफ रखने में सहायक होता है।

कई बैक्टीरिया हमारे शरीर में प्रविष्ट होते हैं, वहाँ रहते और बढ़कर रोग फैलाते हैं। ये रोग हवा, पानी, भोजन द्वारा जानवरों आदि द्वारा बैक्टीरियों के स्थान परिवर्तन से एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को होजाते हैं। ऐसे रोग संक्रामक या छूत वाले रोग (infectious diseases) कहलाते हैं। ऐसे रोग बहुत जल्दी एक स्थान से दूसरे स्थान को इस तरह जगह जगह फैल जाते हैं और महामारी कहलाती हैं।

महामारी रोग में चेचक, मोतीझरा, खसरा, हैजा, पेचिश, डिफ्थीरिया, मलेरिया, प्लेग, कालाजार आदि शामिल हैं।

प्रतिरोध एवं रोगक्षमता

समाज में कुछ लोग रोगी हो जाते हैं जबकि दूसरे जो उनके बराबर ही छूत के संपर्क में रहे हैं रोगी नहीं होते और रोगी होने वाले व्यक्तियोंमें से कुछ रोग का प्रतिरोध करके उससे छुटकारा पा जाते हैं अर्थात् ठीक हो जाते हैं और दूसरे रोग के

कारण मर जाते हैं। कीटाणुओं द्वारा होने वाले रोग से मनुष्य के पीड़ित होने का अवसर निम्न लिखित बातों पर अवलंबित है:—

(१) आक्रमण करने वाले बैक्टीरियो की संख्या।

(२) आक्रमण करने वाले बैक्टीरिय की प्रचण्डता।

(३) शरीर की प्रतिरोधक शक्ति।

शरीर श्वेत रक्ताणुओं द्वारा कीटाणुओंका प्रतिरोध करता है। ज्योंही बैक्टीरिया रक्त में प्रविष्ट होते हैं श्वेत रक्ताणुओं (White blood corpuscles) और इन कीटाणुओंकी लड़ाई ठन जाती है।

यदि कीटाणु कम और दुर्बल हुए तो शरीर आक्रमण का सामना कर सकता है। कीटाणु नष्ट कर दिये जायँगे। यदि शरीर की प्रतिरोधक शक्ति कम है और कीटाणु अधिक तथा प्रचण्ड हैं तो रोग के कीटाणुओ को रक्त मे उपयुक्त स्थान मिल जाता है और वे बढ़ने लगते हैं। कई जहरीले पदार्थ पैदा होते हैं और वे रक्त में भ्रमण करते तथा रोग पैदा करते है।

बच्चों में प्रतिरोधक शक्ति कम होती है और वे विशेषतः कीटाणुओं द्वारा होने वाले रोगों की पकड़ में आसकते हैं। ज्यों ज्यों बच्चे बढते हैं उनमें रोगों के प्रतिरोध करने की शक्ति बढ़ती जाती है। जब हम थके होते है, अच्छा खाना नही मिलता है या किसी कारण से अस्वस्थ होते हैं उस वक्त की अपेक्षा जब हमारा शरीर स्वस्थ होता है उसमें रोगों के रोकने की अधिक शक्ति होती है।

हमारे शरीर की रोग के प्रतिरोध करने की शक्ति को रोगक्षमता (Immunity) कहते हैं, रोगक्षमता स्वाभाविक या अर्जित (Acquired) हो सकती है।

स्वाभाविक या जन्मगत रोग के विरुद्ध प्रतिरोधक शक्ति स्वाभाविक रोगक्षमता (Natural Immunity) कहलाती है। प्रत्येक व्यक्ति में रोग से लड़ने की कुछ शक्ति होती है। यह

विभिन्न व्यक्तियों और जातियों में काफी कम या अधिक होती है। हब्शियों में पीत ज्वर (yellow fever) के लिये स्वाभाविक रोग क्षमता होती है।

रोग क्षमता उत्पन्न भी की जा सकती है। चेचक के एक आक्रमण से शरीर उसी रोग के दूसरे आक्रमण को रोकने के लिये काफी मजबूत हो जाता है। यह प्रतिरोधक शक्ति अर्जित की हुई रोगक्षमता (Acquired immunity) कहलाती है।

शरीर में कुछ पदार्थों को सूई द्वारा प्रविष्ट करके अर्जित-रोगक्षमता उत्पन्न की जा सकती है। इस तरह टीके से शरीर में चेचक के लिये रोग क्षमता उत्पन्न हो जाती है। टीके लगवाने से प्लेग, मोतीझरे, हैजे के लिये व्यक्ति को थोड़े या अधिक काल के लिये रोगक्षमता प्राप्त हो जाती है।

रोग के कीटाणुओं का संवहन

सक्रामक रोगों के कीटाणुओं का निम्न लिखित किन्हीं भी तरीकों से एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के शरीर में प्रवेश हो सकता है।

(१) व्यक्तियों या उनके कपड़ों के सीधे संपर्क से, जैसे ट्रेकोमा से, इंफ्लुएंजा, राजयक्ष्मा, हैजा आदि रोगों में होता है।

(२) वायु से रोग के कीटाणु हवा में सांस निकालने, छींकने, खाँसने या रोगी के मल मूत्र से चले जाते हैं और साँस के साथ दूसरे व्यक्ति के शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं।

उदाहरण—राजयक्ष्मा, चेचक, जुकाम, इन्फ्लुएंजा इत्यादि।

(३) पेय पदार्थ और भोजन (खराब बर्तनों, हाथों आदि) से. उदाहरण-हैजा, राजयक्ष्मा, मोतीझरा, पेचिश इत्यादि।

(४) जानवरों तथा मच्छर, पिस्सू, खटमल के काटने से।

उदाहरण-मलेरिया, प्लेग, पीतज्वर (yellow fever) इत्यादि।

(५) मक्खियों से। मक्खियाँ धूल पर बैठती हैं और मल खाती हैं तथा अपनी टाँगों, पंखों और मुँह में कीटाणुओं को वहन कर भोजन, पेय पदार्थ, बर्तन, घाव वगैरह तक पहुँचा देती हैं।

रोग के साधारण अरसे को निम्न लिखित चार भागों में बाँटा गया है:—

१. *संप्राप्तिकाल* (Incubation period)—रोग के लक्षण साधारणतः आक्रमण के प्राथमिक भाग में नहीं प्रकट होते।

कीटाणु शरीर में प्रविष्ट होते हैं तथा उनकी रक्त के श्वेताणुओं से लड़ाई शुरू हो जाती है। रोग के लक्षण तभी प्रकट होते हैं यदि कीटाणु श्वेताणुओं पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। कीटाणु बढ़ते हैं और विषाक्त पदार्थ (टोक्सिन) बनते हैं। जो रक्त के साथ घूमते हैं और रोग के लक्षणों के कारण बनते हैं। ज्योंही रोग के प्रथम लक्षण दिखाई दे रोगी को तुरन्त अलग कर देना चाहिये। विभिन्न रोगों का सम्प्राप्ति काल अलग अलग होता है।

२. *आक्रमण काल* (Period of onset)—में लक्षण प्रकट होते हैं और रोग पराकाष्ठा को पहुँच जाता है। यह चढ़ाव तेज या धीमा, प्रचंड या कमज़ोर होता है।

३. यदि कीटाणुओं पर विजय प्राप्त कर ली गई और विषों का निराकरण करके उन्हे निकाल बाहर किया गया तो उतार (decline) शुरू हो जाता है। रोग शांत होने लगता है और लक्षण धीरे धीरे मिटने लगते हैं।

४. *स्वास्थ्य प्राप्तिकाल* (Convalescence)—वह समय है जिसमें शरीर पूर्ववत् होता है।

संक्रामक रोगों के कुछ सामान्य लक्षण

(१) तापक्रम का बढ़ना शरीर यन्त्र के कार्य में गड़बड़ी होने का निर्देशक है। तुरन्त रोगी के पृथक्करण और चिकित्सा के लिए सावधानी बरती जानी चाहिए।

(२) बीमारी, कै आना, सर दर्द, गले में पीड़ा आदि दूसरे लक्षण हो सकते हैं।

(३) कँपकँपी चढ़ना दूसरा सामान्य लक्षण है।

(४) कभी कभी त्वचा पर दाने उठ आते हैं।

संक्रमण (Infection) को रोकने के लिए नीचे लिखी सावधानी बरती जानी चाहिए:—

(१) टीका लगाकर रोगक्षमता प्राप्त करना:—

(Immunisation) सब लोगो को शीतला व अन्य रोगो का टीका लगवा लेना चाहिए और इस तरह महामारी के छूत से बचाव कर लेना चाहिए। संक्रमण से बचने के लिए स्वास्थ्य विभाग द्वारा जारी किये गये आदेशो का पूर्णतः पालन करना चाहिए।

(२) पृथकरण (Isolation)—ज्यो ही किसी व्यक्ति के छूत लग जाने का संदेह हो उसे तुरन्त स्वस्थ लोगो से पृथक कर देना चाहिए।

(३) कारंटीन (Quarantine)—यह संक्रमण में रहे हुए पुरुषों का पृथकरण ऐसे लोगों को रोग के संप्राप्तिकाल के बराबर समय तक के लिए अलग करना जरूरी है। इस काल के भीतर या इसके बाद उसमें या तो रोग के लक्षण प्रकट हो जायेंगे या वह छूत से बच जायगा। पहली अवस्था में उसे पृथकरण चिकित्सालय में भेज देना चाहिए और उसे तब तक वहाँ

रखा जाय जब तक रोग उतर न जाय और रोगी अच्छा न हो जाय। पिछली अवस्था में उसे स्वस्थ लोगो के साथ संप्राप्ति-काल के बाद रहने दिया जा सकता है क्योकि तब वह संक्रमण से मुक्त हो जायगा।

(४) *निःसंक्रमण* (Disinfection) या कीटाणुओं का नाश जो रोगी द्वारा प्रयुक्त चीजों में मौजूद हो। उसके कपड़ों और कमरे का तुरन्त निःसक्रामक होना चाहिए। इसके लिए कुछ रासायनिक पदार्थों का उपयोग किया जाता है जो कीटाणुओ को मार डालते है। और निःसंक्रामक कहलाते हैं।

(५) *विज्ञप्ति*—या किसी व्यक्ति से सक्रामक रोग से बीमार पड़ जाने की सूचना तत्काल सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग (Public Health Department) को भेज देनी चाहिए जिससे उस विभाग द्वारा रोग के फैलने से रोकने के आवश्यक उपाय काम में लाये जा सके।

निःसंक्रामक (Disinfectants)

निःसंक्रामक पदार्थ कीटाणुओ को नष्ट करते हैं। विभिन्न रोगो के जीवाणुओं (germs) को मारने के लिए आग या तेज गर्मी का उपयोग किया जाता है। संक्रामक रोगों से पीड़ित रोगियो के शरीर से निकले हुए मवाद से खराब हुई सारी चीजों को जला देना चाहिये।

कपड़े, बिछौने उबाले हुए पानीमें डालकर निःसंक्रमित किये जाते हैं। सार्वजनिक संस्थाओ द्वारा कपड़ो, तकियों, गद्दों और भारी भरकम वस्त्रों का गर्म हवा और भाप से निःसंक्रमण किया जाता है। बर्तनो को आग पर रखना चाहिये या गर्म राख से साफ करना चाहिये।

धूप से जीवाणु मर जाते है इसलिये कपड़े बिछौने आदिको जब उनका प्रयोग न किया जाता हो तो धूप में डालना चाहिए।

साधारणतः नीचे दिये गये रासायनिक पदार्थों का उपयोग किया जाता है—

कार्बोलिक अम्ल (Corbolic acid) का प्रयोग मोतीझरा, हैजा, पेचिश और अतिसार रोग के रोगियो के मवाद व मल के निःसंक्रमण के लिए किया जाता है। घोल का अवधारण (Strength) बीस में १ के बराबर होना चाहिए और मवाद या मल के साथ बराबर परिमाण में मिलाया जाना चाहिए। कपड़ो के निःसंक्रमण के लिए भी यह उपयुक्त है।

कार्बोलिक अम्ल का हलका घोल (सौ में एक) कीटाणुओं की वृद्धि को रोकने या घावों को धोने आदि के काम में आता है।

फार्मैल्डीहाइड (Formaldehyde) एक तेज निःसंक्रमक है। यह गैस होती है।

फार्मैलीन (फार्मैल्डीहाइड का पानी में घोल) भी एक तेज निःसंक्रामक है और कमरों के निःसंक्रमणक में इसका उपयोग किया जाता है।

क्लोरीन (Chlorine) को पानी में घोलकर कमरो को धोने आदि के काम में लिया जाता है। जैसा हम एक पूर्व अध्याय में जान चुके हैं इसका उपयोग पानी को साफ जीवाणु-रहित करने में किया जाता है। यह एक गैस होती है तथा एक तेज निःसंक्रामक है।

गंधक द्विओषिद (Sulphur dioxide) यह एक बिना रंग की तेज गंध वाली गैस है और इसका उपयोग कमरों के निःसं-क्रमण में किया जाता है। यह गंधक को जलाने से बनती है।

चूने को निःसंक्रमण के लिए तथा दीवारों को पोतने के लिए काम में लाते हैं।

लाल बुकनी (Potassium Permanganate) पीने के

पानी में हैजे के कीटाणुओं के नष्ट करने के लिए प्रयुक्त होती है। कौंडी का द्रव (Condy's fluid) एक सामान्य निःसंक्रामक है।

फैलने वाले रोग

फैलने वाले रोगों को उनके संवहन (Transmission) के अनुसार निम्नलिखित चार विभागों में बाँटा गया है :—

(१) सीधे सम्पर्क द्वारा होने वाले रोग।

(२) हवा से फैलने वाले रोग।

(३) भोजन और जल से होने वाले रोग।

(४) जानवरों के द्वारा फैलने वाले रोग।

१. सीधे सम्पर्क से होने वाले रोग

१. ट्रेकोमा या नेत्रों के पलकों में रोहें होने का रोग—

यह रोग बच्चों में बहुत पाया जाता है। इस रोग में पलकों के नीचे जलन होती है, आँखों से पानी बहने लगता है और वे लाल हो जाती हैं। यह रोग उँगलियाँ, पेन्सिल, रूमाल, तौलिये वगैरह से सीधे सम्पर्क से फैलता है। एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक इस रोग के संवहन के लिये मक्खियाँ उत्तरदायी हैं।

नेत्रों के रोहे के रोग की चिकित्सा प्रारम्भ में जल्दी ही करनी चाहिये। इसमें असावधानी करने पर बहुत से रोगी अन्धे हो जाते हैं। आँखों को साफ रखना चाहिये। हाथों और उँगलियों को छूत फैलाने का साधन नहीं रहने देना चाहिए। मक्खियों को दूर रखना चाहिये।

२. दाद—एक चर्म रोग है जो एक फंगस पौधे से होता है। इससे त्वचा के उस भाग पर जहाँ इसका आक्रमण होता है गोल-गोल चकत्ते बन जाते हैं। यह केन्द्र से बाहर की तरफ फैलता जाता है। केन्द्र ठीक हो जाता है और बाहर की तरफ

फैल जाता है। यदि खोपड़ी की त्वचा पर यह रोग होता है तो चकत्ते से बाल गिर जाते हैं।

यह सीधे सम्पर्क या कंघी, टोपी, तौलिये और ब्रुश के उपयोग से फैलता है। फगस को मार डालने के लिये गन्धक या सफेद प्रेसिपिटेट मलहम का बराबर प्रयोग करना काफी असर करने वाला है। चिकित्सक की सलाह लेना सर्वोत्तम है।

२. हवा से फैलने वाले रोग

चेचक—यह रोग एक बहुत ही खतरनाक और अत्यन्त संक्रामक रोग है। इससे शहरों और गाँवों में बड़ी बर्बादी हो जाती है। यह रोग अनेक व्यक्तियों के शरीर की आकृति को बिगाड़ देता है और इससे लोग अन्धे हो जाते हैं तथा बहुत से मर जाते हैं। छोटे बच्चे विशेषतः इस रोग की पकड़ में आजाते हैं, यद्यपि यह रोग सब उम्र के आदमियों को होजाता है।

एक बार यह रोग हो जाने से रोगी का दूसरे आक्रमण से बचाव होजाता है। टीके द्वारा भी ऐसी रोग क्षमता अर्जित की जा सकती है। टीका लगाने से लगभग सात साल के लिये पूर्ण और जीवनभर के लिये कुछ रोगक्षमता प्राप्त होजाती है। सब लोगो के लिए अपने बच्चों के यथा सम्भव शीघ्र टीका लगवा लेना तथा प्रति सात साल बाद फिर टीका लगवाना आवश्यक है।

टीके से निश्चय ही रोग द्वारा बहुत से लोगों को होने वाला कष्ट, आकृति की खराबी, दृष्टि का चला जाना और मृत्यु को रोका जा सकता है।

लक्षण—इस रोग के ज्वर, सरदर्द और कमर में दर्द विशिष्ट लक्षण हैं। पहले चेहरे और सिर के पीछे दाने निकलते हैं और बाद में सारे शरीर में फैल जाते हैं।

सम्प्राप्ति काल—१० से १४ दिनों का होता है।

चिकित्सा—बच्चे की कम से कम छः सप्ताह तक अच्छी तरह देख भाल करनी चाहिये। बीमारी में उसे दूसरे बच्चो से अलग रखना चाहिये।

४. गलसुए (Mumps)-इस रोगमें लाल ग्रन्थियों (salivery glands) कीटाणुओं द्वारा संक्रमित होने से सूज जाती हैं। ज्वर भी चढ़ सकता है। मुँहको कठिनता से खोला जा सकता है।

पाँच साल से अधिक उम्र के बच्चों को यह रोग अधिकतर हो जाता है।

संप्राप्तिकाल—१४-२१ दिन तक का है और संक्रमण छः सप्ताह तक रहता है।

संक्रमण—थूक और साँस से होता है और हवा तथा सीधे संपर्क द्वारा इसका सवहन होता है।

रोगी को पृथक् कर देना चाहिए और बिछौने में गर्म रखना चाहिये।

५. *जुकाम*—आज कल यह बहुत सामान्य रोग हो गया है। जिन लोगो का स्वास्थ्य खराब है या जिनके टांसिल और एडिनोयड बढ़ गये हैं उन लोगों को यह रोग अधिकतर हो जाता है। यह नाक और गलेके अन्दर की झिल्लीमें सूजन आने से होता है।

तापक्रम के एकाएक परिवर्तन में शरीर को रहने देने (यथा लोगो से भरे हुए कमरो में ठंडे झोके लगने, खेलने के बाद ठंड लग जाने) आदि से संक्रमण को मदद मिलती है।

एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को छूत हवा या रोगी के या उसके वस्त्रो के संपर्क से लगती है।

सभाओं में जाना बंद कर दो और शरीर को तापक्रम के अचानक परिवर्तन में न रखो।

चिकित्सा—एक बार जुकाम होजाने से उसे ठीक करने के लिए हर तरह से सावधानी बरतनी चाहिए। हल्का खाना खाना और खूब जल पीना चाहिये। खुली हवामें हलका व्यायाम करना चाहिये। आंतो को नियमित रूप से साफ करना चाहिए। किसी भी तरह के कठिन काम से बचना चाहिये और जिन स्थानों में भीड़ होती हो वहाँ न जाना चाहिये।

६. *इन्फ्लुएंजा* के लक्षण ज्वर, सरदर्द, कमर में दर्द और कँपकँपी चढ़ना है। यह फेफड़ों तक फैलकर न्यूमोनिया रोग का कारण बन सकता है। यह रोगी की जीवनी शक्ति को घटा देता है और उसे ब्रोंकाइटिस, दिल का रोग आदि हो सकते है।

जब यह रोग महामारी के रूप में फैलता है तो इससे लाखों आदमी मरते हैं।

संक्रमण का शरीर में नाक द्वारा प्रवेश होता है। यह एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को लगता है। और हवा द्वारा फैलता है। रोगियों के नाक और मुँह से निकलने वाले पानी में संक्रमण होता है।

संप्राप्ति काल लगभग तीन दिन का होता है। रोग तेजी से फैलता है और १०–२० दिनों तक रहता है। पहले लक्षण प्रकट होते ही तुरंत डाक्टर की सलाह ली जानी चाहिये। महामारी में ठंड न लगने देना, नियमित रूप से मुँह को धोना, लाल बुकनी के हलके घोल के कुल्ले करने से रोग से बचाव होता है। थकावट न होने देनी चाहिये और भीड़ से बचना चाहिये।

निम्नलिखित पूर्व सावधानी से छूत का खतरा कम हो जाता है :—

(१) खूब हवादार कमरो में सोइये और काम कीजिये।
(२) खुली हवामें रहिये और धूल भरे वायुमंडलसे बचिये।

(३) थकावट व भीड़ से बचिये।

७. *गर्दन तोड़ बुखार* (Cerebro-spinal fever or Meningites)—यह रोग एक छोटे कीटाणु से होता है। मस्तिष्क और सुषुम्ना को आवृत करने वाली झिल्ली पर इसका असर पड़ता है।

लक्षण ये हैं:—जोर का बुखार, भारी सरदर्द, वमन, पहले गर्दन का और बाद में सारे शरीर का कड़ा पड़ जाना।

यह रोग बड़ा भयंकर है, मृत्यु संख्या बहुत अधिक हो जाती है, रोगी को तुरन्त अस्पताल भेज देना चाहिए या उसे डाक्टर की निगरानी में रखना चाहिये। यह एक तरह के कीटाणु से होता है। संक्रमण नाक और मुँह से निकलने वाले पानी में मौजूद रहता है। कीटाणु नाक में से प्रवेश करते हैं।

बहुत सी हालतों में रोग वाहक व्यक्तियों द्वारा फैलता है। वाहक वे व्यक्ति हैं जो बिना स्वयं बीमार पड़े रोग के कीटाणुओं का वहन करते हैं।

संप्राप्ति काल—थोड़े दिनों का होता है।

रोगी को अस्पताल में या घर पर पृथक् कर देना चाहिए।

खुला जीवन बिताने, थकान, अधिक कार्य न होने देने तथा सभाओं में जाना बंद कर देने से रोग से बचा जा सकता है।

८. *राजयक्ष्मा*—यह रोग एक कीटाणु से होता है जिसे क्षयरोगाणु (Tubercle bacillus) कहते हैं। इस की खोज सन् १८८२ में राबर्ट कोख (Robert Koch) ने की थी।

संप्राप्ति काल—संक्रमण की प्रचंडता अर्थात् क्षयरोगाणुओं की संख्या पर निर्भर है।

लक्षण—ज्वर, वजन में कमी और स्थान विशेष जिस पर

रोग का आक्रमण होता है का नाश एवं दूसरे खास लक्षण हैं।

इस रोग का आक्रमण शरीर के किसी भी भाग पर हो सकता है। सबसे अधिक पाया जाने वाला यक्ष्मा फेफड़ों का होता है जिसे तपेदिक कहते हैं। रोग के दूसरे रूप ये हैं :—

१—हड्डियों तथा संधियों का क्षय।

२—नाक की लसीका ग्रन्थियों (Lymphatio Glands) का क्षय।

३—अन्नमार्ग का क्षय।

४—मस्तिष्क का क्षय।

रोग फैलने के तरीके

हवा या भोजन से छूत लगती है। संक्रमण रोगी की सांस या थूक और दूसरे बाहर निकलने वाले द्रवों में मौजूद होता है। रोगी द्वारा प्रयुक्त बर्तन भी खराब हो जाते है।

भोजन द्वारा राजयक्ष्मा फैलता है जो सीधे सम्पर्क से या मक्खियों और धूल से संक्रमित हो चुका है। तपेदिक रोग वाली गाय का दूध इस रोग के फैलने का अक्सर कारण होता है।

राजयक्ष्मा की छूत हर कहीं मौजूद है क्योंकि इस रोग से पीड़ित बहुत से व्यक्ति अपनी आदतों के सम्बन्ध में असावधान होते हैं। अधिकांश लोगों को कभी न कभी छूत लग जाती है पर उनमें से केवल थोड़े ही लोग रोगाक्रांत होते हैं। स्वस्थ व्यक्ति पूर्णत. या अंशतः रोगक्षय होते हैं और रोग की अज्ञात अवस्था में अच्छे हो जाते हैं। दुर्बल, अधभूखे, काम से दबे और अस्वास्थ्यकर वातावरण में रहने वाले लोग इस रोग की पकड़ में बहुत आसानी से आ जाते हैं।

रोग के फैलने के लिये निम्नलिखित अवस्थाएं उपयुक्त हैं:—

(क) ताजी हवा, प्रकाश और धूप की कमी, और (ख) गरीबी, कम भोजन मिलने, बहुत ज्यादा काम करने, पर्दा, चिन्ता, गन्दे अंधेरे और अपवित्र घरों में रहने तथा शराब पीने व दवाइयाँ खाने से कमजोर स्वास्थ्य।

तपेदिक के कुछ लक्षणों में हलका ज्वर, वजन में कमी और दुर्बलता, खांसी, तेज साँस लेना और पसीना आना है।

यदि चिकित्सा जल्दी शुरू करदी जाय और लम्बे अरसे तक जारी रखी जाय तो तपेदिक ऐसा रोग है जो ठीक हो सकता है। रोग को मिटाने के लिये मुख्य बातें—खूब ताजी हवा, प्रकाश, पुष्टिकारक भोजन, सीधा धूप सेवन और शांत स्वास्थ्यकर जीवन बिताना है।

स्वास्थ्यकर स्थानों में जहाँ उपरोक्त बातें रोगी के जीवन में गुंथ जाती हैं विशेषज्ञ चिकित्सज्ञ चिकित्सक की पूर्ण निगरानी में क्षयरोग के बीमारों के लिए बहुत सी संस्थाएँ चालू की गई हैं।

अल्मोड़ा की पहाड़ियों में भुवाली में एक अच्छा स्वास्थ्यगृह (Sanatorium) है। राजयक्ष्मा से पीड़ित रोगियों के लिए बहुत से अस्पतालों में विशिष्ट क्षयवार्डों में बड़ा उत्तम प्रबन्ध होता है। राजयक्ष्मा का रोगी अपने परिवार और जाति के लिए संक्रमण और खतरे का कारण है। अपने परिवार और जाति को छूत लगने से बचाने का उसका कर्तव्य है। रोग से पीड़ित सब व्यक्तियों को निम्न लिखित उपायों द्वारा सावधानी रखनी चाहिए:—

(१) रोगी को विशिष्ट पीकदानों में जिसमें निःसंक्रामक पड़े होते हैं, या कागज के बने रूमालों में थूकना चाहिए। ये रूमाल जलाये जा सकते हैं।

(२) खाँसी करते समय रोगी को अपने मुँह के आगे रूमाल रखना चाहिए।

(३) तपेदिक के रोगी से सीधा संपर्क न होना चाहिए।

चिकित्सा से बचाव अधिक अच्छा होता है इसलिए छूत से बचने के लिए स्वस्थ जीवन बिताने के साधारण नियमों के अतिरिक्त निम्नलिखित उपायों को काम में लाना जरूरी है:—

१—दूध को हमेशा पीने से पहले उबालना चाहिए।

२—ताजी हवा में स्वास्थ्यकर जीवन व्यतीत कीजिये।

३—अच्छा पुष्टिकारक भोजन कीजिये।

४—धूल से बचिये, अँधेरी गंदी गलियों या घरों में मत रहिये।

५—इस रोग से पीड़ित व्यक्ति के संक्रमण से बचिये।

६—कठिन उद्योग, ज्यादा काम और चिंता से दूर रहिये।

३. भोजन तथा जल से होने वाले रोग

१. हैजा—यह एक संक्रामक रोग है जो बहुधा महामारी रूप में फैलता है और भारतवर्ष में प्रतिवर्ष इससे लाखों जानें नष्ट होती हैं। यह अधिकतर बड़े मेलों और जन समूहों में फैल जाता है। अब पिछले तीस साल से मक्के की यात्रा हैजे से मुक्त है।

यह रोग एक किस्म के कीटाणुओं के कारण होता है जिन्हें कोलेरा बाइब्रियो (Cholera vibrio) कहते हैं। ये कीटाणु रोगी के वमन और दस्त में पाये जाते हैं।

लोग इन्हें जलाशय, कुएँ या नदी के पास धोते हैं और इस तरह पानी खराब हो जाता है। मक्खियाँ कीटाणुओं को वमन और पाखाने से भोज्य पदार्थों तक ले आती हैं।

<u>रोग के लक्षण ये हैं</u>—बड़े जोर की कै और पानी जैसे पतले दस्त, मूत्र का रुकना, टांग की माँस पेशियों में ऐंठन और बहुत जोर की प्यास।

संप्राप्तकाल बहुत थोड़ा (१ से ५ दिन तक का) होता है और रोग तेजी से फैलता है। रोग से बचने के लिए रोगी के पाखाने का ठीक तरह से विनाश बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

रोगी को बर्तन में पाखाना फिरवाना चाहिए और पाखाने को चूने या कार्बोलिक अम्ल से निःसंक्रमण कर उसे या तो जला देना चाहिए और पानी के साधनों से बहुत दूर गड़वा देना चाहिए। पाखाने पर किसी भी मक्खी को न बैठने देना चाहिए।

रोगी के संपर्क में आने वाली अंगुलियों तथा किसी भी वस्तु को कार्बोलिक लोशन से धो लेना चाहिए।

रोगी के कपड़ों को भी उबाल कर या कार्बोलिक लोशन डाल कर उनका भी निःसंक्रमण कर लेना चाहिए। उन्हें किसी कुएं या पानी के प्राप्ति स्थान के नजदीक नहीं धोना चाहिए।

स्वास्थ्य विभाग के अधिकारियों ने बहुत सारे अवसरों पर प्रदर्शन करके बतलाया है कि इस भयंकर रोग से कुछ सावधानी बरतने से आसानी से बचाव हो सकता है। बड़े भारी मेलों में जहाँ हमेशा यह रोग हुआ करता था अब वे हैजे के रोग से मुक्त है। रोग को फैलने से रोकने के लिए निम्न लिखित उपायों को काम में लाना जरूरी है:—

१—हैजे का टीका लगवाने से छः महीने के लिए रोगक्षमता प्राप्त हो जाती है। प्रत्येक व्यक्ति को यदि हैजे की महामारी फैल रही हो या वह ऐसे स्थानों में आना चाहता हो जहाँ हैजा फैलने की संभावना हो, तो टीका लगवा लेना चाहिए।

२—पीने के लिए मिलने वाला पानी शुद्ध हो। सब कुओं में लाल बुकनी डाली जानी चाहिए। यदि जरूरत हो तो पीने से पहले पानी को उबाल लेना चाहिए। जल के

आदि स्थानों को छूत लगने के तमाम संभव साधनों से बचाना चाहिए।

३—भोज्य पदार्थों तथा भोजन के वर्तनों को साफ रखना चाहिए। पीने से पहिले दूध को उबाल लेना चाहिए। अपने भोजन को मक्खियों से बचाकर रखिये।

४—कच्चे तथा सड़े गले फलों को न खाइये।

५—पाखाना तथा कै का उचित रीति से निःसंक्रमण करके उन्हें विनाश कर देना चाहिए।

६—हैजे के रोगी के सम्पर्क में आने वाले सारे वस्त्रों और दूसरी चीजों का सावधानी से निःसंक्रमण हो जाना चाहिए।

मोतीझरा या आंतरिक ज्वर के लक्षण—लगभग तीन सप्ताह तक ज्वर रहना, सरदर्द, कब्ज, और सीहा तथा यकृत का बढ़ना है।

संक्रमण—पाख़ाने, मूत्र, थूक और बलगम में होता है। छूत जल या दूध से लगती है।

सम्प्राप्ति काल—७ से १४ दिनों का होता है।

रोग से बचाव नीचे दी गई बातों से हो सकता है:—

१—मोतीझरे का टीका लगवाना जिससे दो साल के लिए रोग क्षमता प्राप्त हो जाती है।

२—स्वच्छ पानी, दूध और खाना। कुओं का निःसंक्रमण होना चाहिए।

३—मक्खियों न आने पायें।

४—रोगी के मलमूत्र, आदि का सावधानी पूर्वक निःसंक्रमण तथा अन्तिम विनाश।

३—*पेचिश के लक्षण*—श्लेष्मा और खून के साथ बार-बार दस्त आता है। पेट में दर्द होता है। यह रोग दो तरह का होता है—एक अमीबा के और दूसरा कीटाणु के कारण होता है।

कीटाणु से होने वाली पेचिश के संक्रमण के साधन वह भोजन और जल हैं जो इस रोग से पीड़ित व्यक्ति के मल से कीटाणुओं द्वारा दूषित हो चुके हैं।

रोगी के सम्पर्क में आने वाली उँगलियाँ तथा किसी भी वस्तु को कार्बोलिक लोशन से धो लेना चाहिए।

समाप्तिकाल साधारणतः दो दिन का होता है।

रोग के फैलने और उसे रोकने के तरीके हैजे और मोतीझरा के फैलने और रोकने के तरीको के सामान ही हैं।

कमजोर स्वास्थ्य वाले व्यक्ति इस रोग के आक्रमण के विशेषतः शिकार बनते हैं।

४—*अतिसार*—यह भी एक ऐसी ही बीमारी है जो दूषित जल और भोजन के उपयोग से होती है। इसमें बहुत बार पानी के समान दस्त आते हैं। यह रोग बहुत होता है और यदि इसे रोका न जाय तो यह खतरनाक हो जाता है। ग्रीष्मऋतु में होने वाला अतिसार रोग बच्चों को बहुत होता है और यह सामान्यतः खराब दूध या जल के पीने से होता है।

इस रोग के फैलने और रोकने के तरीके हैजे और मोतीझरा रोग के फैलने और रोकने की विधियो के समान ही हैं।

४. जानवरों के द्वारा फैलने वाले रोग

भारतवर्ष में मलेरिया बहुत ही सामान्य रोग है। यह लोगों के स्वास्थ्य को बिगाड़ देता है और उनके लिए बहुत कष्टदायक होता है। मलेरिया से या इस रोग से कमजोर होने पर अन्य रोगों का आसानी से शिकार बन जाने के कारण

अप्रत्यक्ष रूप से इन रोगों से बहुत सी मौतें होती हैं। यद्यपि मलेरिया के १०० रोगियो में से अन्दाजन ८क रोगी मरता है। केवल भारतवर्ष में इस रोग से लगभग दस लाख व्यक्ति मरते हैं, और १० करोड़ लोग रोगी होते हैं।

मलेरिया रोग का परिणाम वेतन की हानि तथा काम में अव्यवस्था का आजाना होता है। व्यक्ति की यह हानि और उसकी डाक्टरी चिकित्सा का खर्च जाति के लिए एक बड़ी हानि है। सन् १९२१ में डाक्टर कोवेल ने हिसाब लगाया था कि केवल बबई में मलेरिया के कारण जाति की होने वाली औसत वार्षिक हानि कम से कम पचास लाख रुपये तक पहुँचती है।

लक्षण—पहले ठण्ड लगती है, कँपकँपी और सर दर्द। इसके पश्चात् जाड़ा देकर तेज बुखार। उसके बाद पसीना निकलने लगता है और तापक्रम गिर जाता है। यह लक्षण ७२ घण्टे ४८ घन्टे या उससे कम नियमित समय रहने के बाद बुखार प्रकट होता है। पीड़ा बढ़ जाती है, कमजोरी आजाती है और एनीमिया हो जाता है।

यह रोग एक छोटे जीवित पराश्रयी जीव के कारण होता है जो खून के लाल अणुओं में पहुँचता और वहीं रहता है। ये पराश्रयी जीव खून में बढ़कर बहुत सारे हो जाते हैं और तब वे रक्त के अणुओं को नष्ट कर डालते हैं और रोगी को कमजोर तथा रक्तहीन बना देते हैं।

ये जीवाणु ऐनोफलीज जाति के मादा मच्छर द्वारा खून के साथ चूस लिये जाते हैं।

ये पराश्रयी जीवाणु मच्छर के शरीर में बढ़ते है और वे मच्छर की लाला ग्रंथियों तक किसी न किसी तरह पहुँच जाते हैं। जब इस तरह का मच्छर एक स्वस्थ आदमी को काटता है तो उसके थूक में मौजूद पराश्रयी जीवाणु उस आदमी के शरीर में

चले जाते हैं। वहाँ वे तेजी से बढ़ते हैं और मलेरिया रोग उत्पन्न करते हैं।

यह रोग आदमी को संक्रमण मच्छर के काटने से ही लगता है, दूसरे किसी तरीके से नहीं। एक संक्रमित मच्छर बहुत सारे आदमियों के शरीर में इन पराश्रयी जीवाणु को पहुँचा सकता है।

संप्राप्ति काल २ से ३ दिन का होता है। आक्रमण के प्राथमिक भाग में रोगी के जगह २ पीड़ा होती है। आक्रमण के ६ से १२ दिन बाद रोग के असली लक्षण प्रकट होते हैं।

मच्छर का जीवन-वृत्तान्त

मच्छर पानी में अंडे देता है। मच्छर जीवन की आरम्भिक अवस्थाएँ पानी में बीतती है। अंडो से छोटे छोटे लार्वे (Larvae) निकल आते हैं। वे तेजी से बढ़ते हैं और लगभग एक सप्ताह के समय में वे प्यूपा (Pupae) बन जाते हैं। लार्वा और प्यूपा अवस्थाएँ पानी में व्यतीत होती हैं।
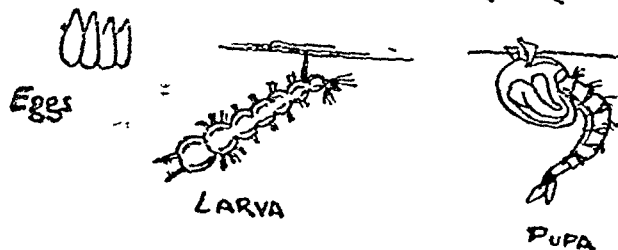
चित्र संख्या ८४—मच्छर का जीवन वृत्त।

दो तीन दिन के बाद प्यूपा जो पानी की सतह पर तैरता अपना आवरण फाड़ डालता है और पूर्ण मच्छर होकर उड़

जाता है। मादा मच्छर आदमियों को काटती है, बढ़ती है और पानी में अंडे देती है। इस स्वभाव के कारण इसे Nose diving Lady कहते हैं।

मच्छरों की वंशवृद्धि को रोकने के लिए—निम्नलिखित सुझाव रक्खे गये हैं। चूँकि मलेरिया रोग का संवहन केवल मच्छरों से ही होता है, उन्हे नष्ट करने के लिये कार्यक्रम उपायों को काम में लाना चाहिए।

(१) मच्छरों को गंधक या क्रिजोल जलाकर या फ्लिट छिड़क कर और दूसरे इसी तरह के पदार्थों से मार डालना चाहिए।

(२) घर, चहारदीवारी, बाग़ या गली में कहीं भी पानी को अधिक या कम परिमाण में इकट्ठा न होने देना चाहिए। टीन के खाली बर्त्तन, मिट्टी के टूटे बर्तन और कोई दूसरे इसी तरह के साधन को पूरी तरह से हटा देना चाहिए जिससे उनमें वर्षा का पानी न इकट्ठा हो सके। पानी के हौजों और दूसरी जगहों की सावधानी पूर्वक निगरानी की जानी चाहिए। नालियाँ ठीक तरह से बनाई जायँ और उन्हे साफ रखा जाय।

पानी को कहीं पड़े न रहने देना चाहिए। अगर कहीं पानी रुका हुआ नहीं है तो अंडे नहीं दिये जा सकेंगे और फलतः मच्छर नहीं होंगे।

(३) तालाबों तथा दूसरे जलाशयों पर जिनका पानी बहाया नहीं जा सकता, मिट्टी का तेल छिड़किये। इससे उन के लिए साँस लेना असम्भव हो जायगा।

(४) मच्छर के लार्वे और प्यूपे तालाबों और नालों के किनारों पर के घास और नकुलों में रह सकते हैं।

उनको हटाकर तालावों, बावड़ियों, नालों आदि को यथासंभव शीघ्र साफ कर देना चाहिए।

(५) लार्वों को नष्ट करने के लिये एक तरह की मछलियाँ बड़ी उपयोगी होती हैं। उन्हें तालाबों, जलाशयों आदि में रखना चाहिये।

उपरिलिखित विधियाँ आक्रामक तरीके हैं। निम्नलिखित बचाव के तरीकों को मच्छरों के काटने से त्राण पाने के लिए काम में लाना चाहिए। यदि मच्छर को काटने को कोई व्यक्ति न मिले तो वह मर जायगा।

क—प्रत्येक व्यक्ति को मच्छरों द्वारा काटे जाने से बचने के लिए एक अच्छी मसहरी का प्रयोग करना चाहिए।

ख—सब दरवाजों और खिड़कियों में जाली के कपाट लगे होने चाहिए ताकि कमरे में कोई मच्छर न घुस सके।

ग—कभी कभी मच्छर भगाने वाले तैल शरीर पर मल लेना ठीक होता है। चूंकि उनका असर बहुत देर तक नहीं रहता वे इतने अधिक काम के नहीं हैं।

घ—मलेरिया के हरेक बीमार को लगातार पूरी खुराक कुनैन देते रहना चाहिए ताकि यदि रोगी को मच्छर काटे तो उसे खून में मलेरिया का कीटाणु न मिल सके।

कुनैन—मलेरिया के पराश्रयी जीवाणुओं को मारने के लिये कुनैन बड़ी प्रभावोत्पादक वस्तु है। इसलिए जब रोगी मलेरिया ज्वर से पीड़ित हो तो उसे लगातार पूरी खुराक कुनैन देते रहना चाहिए। मलेरिया को रोकने के लिए अन्य औषधियाँ भी है।

मलेरिया रोग ने इञ्जिनियरों के कामों में बड़ी रुकावट डाली है। कुछ समय तक यह सोचा गया था कि पनामा नहर में काम करना असम्भव है, पर मुश्किलों से विजय प्राप्त हुई। एक

दल वाली बहुत सी जमीन का पानी बहाया गया तब मलेरिया से छुटकारा मिला और काम आगे बढ़ पाया।

भारतवर्ष में भी बंगाल नागपुर रेलवे के रामपुर-विजय-नगरम् विभाग की पैमाइश और निर्माण का काम चालीस साल तक रुका रहा। भारतवर्ष में अन्य इंजिनियरी के काम, उदाहरणार्थ बंबई के ऐलेक्जैंडिया डाक और युक्तप्रान्त की शारदा नहर के हेडवर्क्स मलेरिया के कारण बहुत अटके रहे।

जब मलेरिया को रोकने तथा अच्छा करने के तरीके खोज निकाले गए और उनको काम में लाया गया तब ये काम पूरे हुए। मेरठ छावनी में मलेरिया इतने जोर का था कि उसे सन् १८७० में छोड़ दिया गया। पर अब जल के गड्ढों को नष्ट करके तथा पानी के बहाव के अच्छे उपाय काम में लाने से वहाँ मलेरिया का अस्तित्व करीब-करीब मिट गया है। इस बुराई को दूर करने के लिए इस पुस्तक के प्रत्येक पाठक को इसमें बतलाये गए आवश्यक उपायों का प्रयोग करना चाहिए। इन उपायों को काम में लाने के लिये उन्हे सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग को सहयोग देना चाहिए।

प्लेग का संवहन—चूहे के पिस्सू के काटने से होता है। यह साधारणतः महामारी के रूप में प्रकट होता है।

प्लेग कई किस्म का होता है। गिल्टी वाला प्लेग (Bubonic plague) एक सूक्ष्म जीवाणु द्वारा होता है। इसे प्लेग का कीटाणु कहते हैं और यह रोगाक्रांत चूहे के रक्त में पाया जाता है। इस का संवहन एक चूहे से दूसरे चूहे
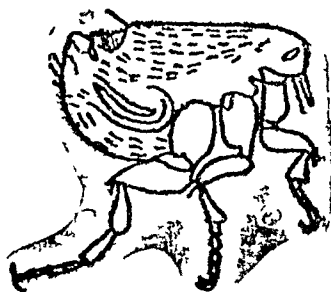
चित्र संख्या ८५—चूहे का पिस्सू (परिवर्द्धित)

में और चूहे से पिस्सू द्वारा जो चूहे के खून पर जीता है, आदमी के शरीर में होता है।

लक्षण—इसमें ज़ोर से बुखार आता है और गर्दन, काँख या जाँघ के पास गिल्टी निकलती है।

रोग चूहे के पिस्सू से फैलता है। यह वास्तव में चूहों की बीमारी है। जब प्लेग रोग से आक्रान्त चूहा मर जाता है तो पिस्सू उसे छोड़ देते हैं और दूसरे चूहे या आदमियों पर आक्रमण करते हैं और ये दूसरे चूहे या आदमियों में इस रोग का संवहन करते हैं।

संप्राप्ति काल—२ से ८ दिन तक का है।

प्लेग को रोकने का सबसे अच्छा उपाय चूहों से बचना है। चूहों को मारने के लिये निम्नलिखित उपाय काम में लाये जाने चाहिये :—

१—गोदाम और भण्डारघर इस प्रकार के बनाये जायें कि चूहे उनमें प्रवेश न कर सके। यदि चूहों को खाने को कुछ न होगा तथा रहने के लिए जगह नही मिलेगी तो वे घरो या गोदामो में नही बढ़ सकते।

२—चूहों को मारने के लिए बिल्ली पालिये।

३—चूहेदानी से चूहो को पकड़िए, उन्हे विष देकर या चूहे के बिलो को गंधक या सायेनो गैस रज के धूँए से मारिये।

महामारी में यह अच्छा होगा यदि लोग संक्रामित घरों को छोड़ कर खेतो में तम्बू तान कर उनमें रहने लगे और घरो में तब तक न जायें जब तक फ़ोजोल भाप की धूनी देकर उनका निःसंक्रमण (चूहो के पिस्सुओं को मारने के लिए) न कर लिया जाय।

रोगी का पृथक् करण आवश्यक है।

प्लेग का टीका लगवा कर अपने तथा परिवार के

दूसरे सारे सदस्यों की रक्षा कीजिए। प्लेग के कीटाणुओं से बचने का यह अच्छा उपाय है और ६ से ६ महीने तक सुरक्षा होती है। टीका लगवाने वाले व्यक्तियों को साधारणतः यह रोग नहीं होता और यदि होता भी है तो मामूली सा।

कीड़ों द्वारा संवाहित कुछ दूसरे रोग ये है :—

१—मरुमक्षिका ज्वर (Sandfy fever)—यह मरुमक्षिका के काटने से होता है।

२—डेंगू ज्वर—यह मादा क्यूलेक्स मच्छर के काटने से होता है।

३—अफ्रीका का निद्रालु रोग-यह सीसी मक्खी (Tse tse fly) के काटने से होता है

४—काला-ज्वर-यह खटमल के काटने से होता है।

५—पुनराक्रमक ज्वर-यह जू के काटने से होता है।

हरेक हालत में कीड़े को मारने और उसको न काटने देने से बचाव होता है।

रोग संवहक मक्खी—मक्खियाँ बहुत से रोग फैलाती हैं। वे मैले तथा आदमियों के खाने के लिए भोजन पर भी बैठती हैं और जीवाणु का एक जगह से दूसरी जगह तथा व्यक्तियों तक संवहन होता है। हैजे, पेचिश, अतिसार और आंतरिक ज्वर के जीवाणु मल के साथ बाहर निकलते हैं और उनका मल से भोजन तक संवहन मक्खियों द्वारा होता है। मक्खी आंखो के रोग, क्षय, तथा चेचक को फैलाने के लिये उत्तरदायी है।

मक्खी मानव प्राणियों का महान् शत्रु है। मक्खियों की वंश वृद्धि बड़ी जल्दी होती है। एक अकेली मक्खी एक साथ १५-५०० अण्डे देती है जो दूसरे दिन लार्वों में बदल जाते हैं। यह मल को खाकर तेजी से बढ़ते हैं और कुछ दिनों के बाद वे

प्यूपा बन जाते हैं तथा पाँच या छः दिनों में प्यूपा से पूर्ण मक्खी बन जाती है। गर्मी के मौसम में एक अकेली मक्खी से हजारों मक्खियां हो जाती हैं।

हमें घर, बाजार तथा पड़ोस की सारी जगहों को साफ रखना चाहिए। मक्खियों की वंश वृद्धि को रोकने के लिए निःसंक्रमकों का उपयोग करना चाहिए। भोजन को ढक कर तथा मक्खियों से बचा कर रखिए। बिना ढकी मिठाइयों को न खरीदना चाहिए।

सारांश

कीटाणुओं द्वारा फैलने वाले रोग छूत वाले रोग हैं। जो एक आदमी से दूसरे आदमी को हो जाते हैं और शरीर में मन्द वस्तुएं या विष पैदा करते हैं। रोग के विरुद्ध प्रतिरोध करने की शक्ति को रोग-क्षमता कहते हैं। यह स्वाभाविक होती है। या टीके द्वारा अर्जित की हुई रोग के कीटाणुओं का संवहन सीधे सम्पर्क से, वायु से पेय पदार्थ व भोजन से या मच्छर, पिस्सू के काटने तथा मक्खियों द्वारा होता है। संक्रमण के रोकने के लिए रोग क्षमता प्राप्त करना, पृथक्करण, कुरण्टीन, निःसंक्रामण तथा स्वास्थ्य विभाग को सूचना भेज देनी चाहिए। कीटाणु नष्ट करने के लिये कई निःसंक्रमक पदार्थ काममें लाये जाते हैं। दाद व ट्रकोमा सीधे सम्पर्क से होते हैं। चेचक, खसरा, कुकर खाँसी, गलसुये, जुकाम, इन्फलुएंजा, गर्दन तोड़ बुखार, राजयक्ष्मा, वायु द्वारा फैलते हैं। हैजा, मोतीझरा, पेचिश, अतिसार भोजन तथा जल से होने वाले रोग हैं। मलेरिया, प्लेग व दूसरे ज्वर मच्छर पिस्सू द्वारा होते हैं। मक्खियाँ बहुत खतरनाक हैं। रोगों के कारण व उनसे बचने के साधनों का वर्णन ऊपर किया गया है।

प्रश्न

१—फैलने वाले रोग क्या हैं ? वे किस तरह हो जाते हैं ?

२—बैक्टीरिया—उनकी बनावट, बढ़ती, वंशवृद्धि, उपयोग तथा बुराइयों पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

३—इन्हें समझाइये—रोगक्षमता, स्वाभाविक रोगक्षमता, अर्जित रोगक्षमता, टीका, वाहक व्यक्ति।

४—संक्रामक रोगों के एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक संवहन के विभिन्न तरीके क्या हैं ?

५—संक्रामक रोग में क्या क्या विभिन्न अवस्थायें होती हैं ?

६—फैलने वाले रोगों के सामान्य लक्षण क्या हैं ?

७—संक्रामक रोगों से बचने के लिए पहले से कौन से उपाय काम में लेने चाहिए।

८—निःसंक्रामक क्या है ? सामान्यतः प्रयोग में आने वाले कुछ निःसंक्रामकों का उल्लेख कीजिए।

९—निम्न लिखित रोगों के लक्षण, फैलने और बचाव के तरीकों का वर्णन कीजिए:—पलकों के रोहे, दाद, खसरा, कुकर खासी, गलसुआ, जुकाम एवं इन्फ्लुएंजा, गर्दन तोड़ बुखार, मोतीझरा, पेचिश, अतिसार और प्लेग।

१०—निम्न लिखित रोग किस तरह फैलते हैं इसका वर्णन कीजिए। उनसे बचने के लिये पहले कौनसे उपाय काम में लाये जाने चाहिए :—

(१) चेचक

(२) राजयक्ष्मा।

(३) हैजा।

(४) मलेरिया।

११—मक्खी खतरनाक क्यों होती है ?

अध्याय २५

सार्वजनिक स्वास्थ्यवृत्त

स्वास्थ्य विज्ञान के अध्ययन का उद्देश्य अपने को स्वस्थ रखना और रोगों से बचना है। म्यूनिसिपैलिटी, जिला बोर्ड सरकार या रियासत के स्वास्थ्य विभाग का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति को स्वास्थ्य की अच्छी हालत में रखना है। स्वास्थ्य विभाग के मिनिस्टर और स्वास्थ्य चिकित्सक अफसर अपने शासन के क्षेत्र में न केवल रोगों के रोकने का ही प्रयत्न करते हैं प्रत्युत उस क्षेत्र में रहने वाले नागरिकों का स्वास्थ्य सुधारने का भी प्रयत्न करते हैं। नागरिक के स्वास्थ्य पर वातावरण के प्रभाव पर विशेष विचार किया जाता है। इसलिये उनके खाने, पहनने, गंदे पानी को बहाने, प्रकाश और संक्रामक रोगों के फैलने के प्रबन्ध पर पूरा ध्यान दिया जाता है। शिशु के जन्म से पहले और बाद में शिशु तथा माँ की निगरानी के लिये उचित सुविधायें प्रदान की जाती हैं।

स्वास्थ्य सम्बन्धी सुधरी हुई अवस्थाओं के कुछ *परिणाम*—यह बतलाया जा चुका है कि सामान्य संक्रामक बीमारियों में से बहुतसी बीमारियों का नियन्त्रण किया जा सकता है और इन्हें महामारी (Epidemic) के रूप में फैलने से रोका जा सकता है। सभ्य देशों से कुछ रोग पूर्णत: निर्वासित कर दिये गये हैं। इंगलैंड में अब ग्रीष्म ऋतु में बच्चों को होने वाला अतिसार रोग अज्ञात है। कुछ देशों से गठिया, क्लोरोसिस (Chlorosis) जैसे रोग पूर्णत: अदृश्य हो गये हैं।

स्वास्थ्य सम्बन्धी हालतों के सुधर जाने के फल स्वरूप विभिन्न

संक्रामक रोगों से होने वाली मृत्यु सख्या घट गई है। इस तालिका में इंगलेंड में प्राप्त कुछ परिणाम दिखलाये गये हैं:—

संख्या	रोग का नाम	सन् १८८० में बीमारों की संख्या	सन् १९३४ में बीमारों संख्या
१	कुकुरखांसी	प्रति लाख ४१	प्रतिलाख ५·१
२	खसरा	„ ३८	„ ९·३
३	मोतीझरा	„ ३२	„ ०·४

टीके की आकृति बिगाड़ने वाले और मारनेवाले रोग चेचक का लोप हो गया है। शिशुओं की मृत्यु संख्या घट गई है और अब पहले की अपेक्षा अधिक बच्चे ज़िन्दा रहते हैं। इग्लैंड में शिशुओं की मृत्युसंख्या घटकर छः में एक सन (१९०९) से १८ में एक (सन् १९३४) हो गई है। बहुत सारे लोगो का जीवन सुधरी हुई स्वास्थ्य सम्मन्धी अवस्थाओं के कारण है। औसत आयु कम से कम १५ वर्ष और बढ़ गई है। सन् १८६० में इंगलेंड में मृत्युसंख्या प्रति हजार निवासी २१·४ थी। सन् १९३० में मृत्यु संख्या प्रति हजार निवासी ११·४ ही थी। प्रति हजार निवासियों में दस लोगो का जीवन बच गया है। सन् १९३० में इंगलेंड की आबादी ४ करोड़ थी। अतः प्रतिवर्ष बचाये गये लोगो की संख्या कुल मिलाकर चार लाख होती है। पिछले पच्चीस वर्षों में भारत में भी मृत्यु संख्या घट गई है और सब तरफ और स्थिर उन्नति की आशा की जाती है।

स्वास्थ्य तथा जनता का सहयोग

जहाँ यह बतलाया गया है कि बहुतसी सामान्य मारक छूत एक या दूसरे तरीके से रोकी जा सकती है वहाँ भी भारतवर्ष में प्राप्त परिणाम इतने अच्छे नहीं है जितने अन्यत्र हैं। सङ्गठनकी कमी या द्रव्य के अभाव का दोष हो सकता है पर मुख्यतः इसका

कारण जनता के सहयोग की कमी है। टीका लगाना चेचक रोग को रोकने का बड़ा प्रभावोत्पादक उपाय है पर बहुतसे माता-पिता अपने उत्तरदायित्व से गिर जाते हैं। टीके के कानून ने नवजात शिशुओं के टीका लगवाना अनिवार्य कर दिया है फिर भी बहुत से नवजात शिशुओ के टीका नहीं लग पाता। उन पर रोग का आक्रमण होता है और परिणाम रोग, कष्ट, कुरूपता और मृत्यु होती है।

बड़ी भारी सफलताओं के बावजूद जिन पर हर्ष प्रकट करने के यथेष्ट कारण हैं अभाग्यवश लोगों का पीड़ा सहना और मरना जारी है। स्वास्थ्य विभाग के अधिकारी मेलो में जहाँ करोड़ो आदमी इकट्ठे होते हैं तथा हरद्वार में कुंभ मेले में हैजे और दूसरी महामारियाँ होने और फैलने को रोकने के लिए सफलीभूत हुए है, फिर भी लोग घर जाते हैं, कष्ट भुगतते हैं और मर जाते हैं।

यदि उचित सुविधाएँ प्राप्त हों तो हम उस दिन की आशा कर सकते हैं जब ऐसे जीवों पर—यथा मक्खियो, मच्छरो, चूहे के पिस्सुओ, जुओ पर पूर्णतः अधिकार प्राप्त हो जायगा और उनसे संवाहित रोगो को रोका जा सकेगा।

स्वास्थ्य सम्बन्धी सुधरी हुई अवस्थाओं से प्राप्त सुधारों से पूरा फायदा उठाने के लिए हमें पिछले अध्यायो में वर्णित नियमो का पालन करना चाहिए और सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग को हमें स्वस्थ बनाये रखने के काम को पूरा करने में अपना पूर्ण सहयोग देना चाहिए।

नागरिक आरोग्यशास्त्र

रियासत या प्रांत का स्वास्थ्य विभाग एक मिनिस्टर के चार्ज में होता है। स्वास्थ्य तथा सफाई के सम्बन्धी कार्यों में सार्वजनिक विभाग के डाइरेक्टर, उनको सम्मति देते हैं। इस

विभाग में असिस्टेन्ट, डिप्टी डाईरेक्टर, स्वास्थ्य चिकित्सक अफसर, दारोगा सफाई, वेक्सीनेटर तथा अन्य अधिकारी होते हैं।

सब बड़े शहरों में म्यूनिसिपैलिटी, रियासत या गवर्नमेंट का स्वास्थ्य विभाग शहर की स्वास्थ्य सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं पर विचार करता है। सार्वजनिक स्वास्थ्य के तीन मुख्य उद्देश्य ये हैं:—

(१) रोग को रोकना।

(२) स्वास्थ्य को बनाये रखना।

(३) स्वास्थ्य-सुधार।

ये उद्देश्य निम्नलिखित समस्याओं की तरफ ध्यान देने से पूर्ण होते हैं:—

(१) घरों का निर्माण करना और जमघट को रोकना। जो घर बनाये जायँ उनके नक्शे पहले स्वास्थ्यविभाग के अधिकारियों द्वारा स्वीकृत होने चाहिये। इससे घर में पूरा स्वास्थ्य सम्बन्धी उचित प्रबन्ध यथा व्यजन, गंदे पानी के निकास आदि का निश्चय हो जाता है। गली की चौड़ाई को देखते हुए बनाये जानेवाले घर की ऊँचाई का निश्चय किया जा सकता है। वर्तमान वर्षों में कलकत्ता, दिल्ली, बम्बई जैसे शहरों और दूसरे अनेक कस्बों के बहुत से भागों में पुराने और अस्वास्थ्यकर घरों के हटाने के सम्बन्ध में बहुत कुछ काम किया जा चुका है। उनके स्थान पर स्वास्थ्यकर घर बनाये गये हैं। गलियाँ भी चौड़ी करदी गई हैं।

(२) बहुत से शहरों में पानी के निकास का यथेष्ट प्रबन्ध किया गया है। शहर पचीस साल पहले की अपेक्षा अब अधिक स्वच्छ हैं। गलियों और नालियों के साफ करने का उचित प्रबंध

किया गया है। सड़कों को पानी से छिड़का जाता है और उन पर रोशनी लगाने का प्रबन्ध किया गया है।

(३) मल के उचित प्रकार से विनाश के लिए बहुत बड़ी रक़म खर्च की जाती है। शहरों में स्वास्थ्य विभाग का मल को हटाना और उसका अन्तिम विनाश करना और सार्वजनिक पाखानों को बनाना और उन्हे साफ रखना अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है।

(४) शहरों में रहने वाले लोगों को स्वच्छ पानी काफ़ी परिमाण में मिलने की सुविधा रहती है। बड़े शहरों में जल वितरण प्रबन्ध जारी किया गया है और इस तरह से बहुत से रोगों का फैलना रोक दिया गया है।

(५) स्वास्थ्य विभाग खाद्य पदार्थों का निरीक्षण करता है और सड़े गले फलों तथा दूषित भोजन की बिक्री को रोक देता है। भोजन में मिलावट के सम्बन्ध में कानून बने हुए हैं।

(६) यह संक्रामक रोगों को फैलनेसे रोकनेके लिए विभिन्न उपाय सोच निकालता है। बचाव के विभिन्न साधनों का प्रयोग किया जाता है। काम की निपुणता के लिये जनता का सहयोग आवश्यक है। जनता को जाति के फायदे के लिए स्वास्थ्य विभाग के अधिकारियों द्वारा जारी किये गये कानूनों तथा आदेशों का पालन करना चाहिए।

(७) विभिन्न व्यवसायों द्वारा उत्पन्न धूल, धूएँ और दुर्गन्ध से हवा को दूषित होने से रोकना। सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा की गई बहुत ही प्रशंसनीय तथा उपयोगी वस्तुओं में एक ठीक तरह से बनाये गए सार्वजनिक पार्क और खुले स्थान हैं। ये ठीक ही 'शहरों के फेफड़े' कहे

गये हैं। बाग़ बगीचे हवा को ताज़ी रखते और धूप को आने देते हैं। वे पड़ोस की हवा को ठीक करते हैं अर्थात् पड़ोस के लिये व्यजनक के कार्य करते हैं। बहुत से स्थानों में बाग का कुछ भाग पर्दानशीन औरतों के एक मात्र उपयोग के लिए सुरक्षित रखा जाता है जहाँ वे जा सकती हैं और वहाँ उन्हें ताज़ा हवा मिल सकती है तथा वे अपना मनोरंजन कर सकती हैं।

(८) जीवनी आँकड़ों को व जन्म और मृत्यु का लेखा रखना।

(९) शवो का अन्तिम विनाश।

(१०) बीमारो के लिए चिकित्सालयो, शिशुओ और माताओ की निगरानी, मातृकेन्द्रो आदि का प्रबन्ध सरीखी दूसरी अनेक योजनायें।

इनमें से बहुत सारी योजनाओ में बड़ा खर्च पड़ता है पर इनसे प्राप्त लाभ को देखते हुए खर्च पूर्णतः उचित है। खर्चा साधारणतः चुँगी तथा दूसरे करों से प्राप्त किया जाता है।

सर्वोत्तम परिणाम प्राप्त करने के लिये हमें स्वास्थ्य विभाग के आदेशो का पालन करना चाहिये और इस तरह अपना तथा जनता का स्वास्थ्य बनाये रखने में हमें मदद करनी चाहिये।

सारांश

सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग, रोग के रोकने, तथा संक्रामक रोगों के फैलने से रोकने को उपाय करते हैं। और जनता के स्वास्थ्य को सुधारने तथा प्रत्येक व्यक्ति के स्वास्थ्य को अच्छी हालत में रखने के साधन करता है। अन्य देशो में स्वास्थ्य सम्बन्धी सुधार से बहुत अच्छे परिणाम निकले हैं। अच्छी शिक्षा, प्रचार तथा प्रबन्ध से ऐसे अच्छे परिणाम यहाँ भी

हो सकते हैं। स्वास्थ्य विभाग कई समस्याओं की ओर ध्यान देता है। जैसेः—गृह निर्माण, स्वच्छ पानी का प्रबन्ध, भोज्य पदार्थों का वितरण, पानी के निकास का यथेष्ट प्रवन्ध, मल का उचित प्रकार से विनाश, रोशनी, संक्रामक रोगों के रोकने के उचित उपाय आदि। यह शिशु और माताओं की निगरानी, जन्म व मृत्यु का लेखा रखने तथा शवों का अन्तिम विनाश आदि का प्रबन्ध भी करता है।

अध्याय २८

सार्वजनिक स्वास्थ्य वृत्त (समाप्त)

ग्राम्य आरोग्यशास्त्र—भारत की ८०% से अधिक आबादी गाँवों में रहती है पर वहाँ कोई उचित स्वास्थ्य संबंधी प्रबंध नहीं है। भारतवर्ष में रोग फैलने का मुख्य कारण गाँवों की स्वास्थ्य संबंधी अवस्था है। गाँवों में रहने वाले लोगों को कुछ प्राकृतिक लाभ प्राप्त हो जाते हैं। वहाँ यथेष्ट ताजी हवा मिलती है और सक्रिय बाह्य जीवन बिताने की दूसरी सुविधाएँ भी वहाँ प्राप्त हैं। उनको मिलने वाले खाद्य पदार्थ शुद्ध, ताजे और विना किसी मिलावट के होते हैं। पर गाँवों में महामारी रोग बार बार फैलते है। गाँवों में शिशुओं की मृत्युसंख्या बहुत ज्यादा होती है।

गाँवों में खराब स्वास्थ्य और रोगों के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं:—

१-खराब व्यजन वाले घर।

२-पीने के लिये दूषित पानी मिलना।

३-गंदे पानी के निकास के प्रबन्ध का अभाव।

४-घरों के पास कचरा, मल और गोबर आदि के ढेर का इकट्ठा होना।

५–मच्छर, पिस्सू, मक्खियाँ, चूहे और दूसरे रोग वाहक जानवर।

६–शिक्षा की कमी तथा अज्ञान और फलतः स्वास्थ्य के नियमो के प्रति अनादर।

वर्तमान अस्वास्थ्य की हालत इन्ही की सृष्टि है। उसको दूर किया जा सकता है। घरो में व्यजन का प्रबन्ध किया जा सकता है। गंदे पानी के निकास के लिये नालियाँ बनाई जा सकती हैं। कचरे, मल, गोबर आदि के ढेर हटाये जा सकते हैं और भविष्य में खेतो में खाद तैयार किया जा सकता है। मुख्य कारण स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रारम्भिक नियमो के प्रति उनका अज्ञान है। गाँवो में गरीब भाइयो तक स्वास्थ्य संदेश ले जाने का कर्त्तव्य विद्यार्थियों का है। यदि गाँव वाले को ताजी हवा, साफ पानी, सफाई, स्वच्छ वातावरण, चेचक के टीके और रोगो से बचने के दूसरे तरीको का मूल्य मालूम कराया जा सके तो बहुत से सुधार किये जा सकते हैं। मच्छरो की बढ़ती को रोकने, सबके लिए जल वितरण का एक सा प्रबंध करने आदि के लिये संगठित प्रयत्न की आवश्यकता होगी।

लोगो का स्वास्थ्य सुधर सकता है और रोगो का निवारण किया जा सकता है यदि वे स्वास्थ्यमय जीवन के प्रारंभिक सिद्धांतो के अनुसार चले। उन तक इस सदेश को पहुँचाने का काम विद्यार्थियो तथा अध्यापको का है। व्यक्तिगत उदाहरण से, गाँवों में रहने से, चित्र दिखाकर भाषण देने, फिल्म दिखाकर तथा वार्ता को तथा अपने आसपास के वातावरण को स्वच्छ रखने से होने वाले फायदों को इन लोगो के दिल में बिठा सकते हैं।

निम्नलिखित सुझावो को बहुत सुगमता से व्यवहार में लाया जा सकता है और यदि उनके अनुसार आचरण किया जाय तो गाँवों की स्वास्थ्य सम्बन्धी अवस्था सुधर सकती है।

१—सुचारुरूप से व्यजनयुत और अच्छी तरह प्रकाशित घर। हरेक कमरे में दूषित वायु की बाहरी हवा के साथ अदला बदली के लिए उचित प्रबन्ध होना चाहिए। उचित व्यजन के लिए प्रवेश तथा निकास द्वार होने चाहिये। कमरे में पूरी तरह प्रकाश आने के लिए यथेष्ट खिड़कियाँ आदि होनी चाहिए।

२—जानवरो को दूर रखना चाहिये और उन्हे घरेलू कामों के लिए व्यवहृत कमरो में नहीं रहने देना चाहिए।

पशुओ के कमरो में खूब प्रकाश तथा हवा आनी चाहिए और उनमें पक्के फर्श होने चाहिये जो धोये जा सकें, जिससे वे मूत्र सोख कर दुर्गन्ध पैदा न करें। ये कमरे घरों से कुछ दूर होने चाहिए।

३—घरो के मल और पशुशालाओं तथा अस्तबल के गोबर, लीद व कचरे को गाँव के बाहर खाद तैयार करने के लिये बनाये गये गड्ढो में डाल देना चाहिए। गोबर को खाद के काम में लाना चाहिए और खाद के गड्ढो में डालना चाहिए। ये गड्ढे ६ फ़ुट गहरे और १० फुट चौड़े और यथावश्यक लम्बे होने चाहिए। सारा मल, कचरा और गोबर इनमें डाल दिये जाने चाहिए और उन्हे थोड़ी मिट्टी से ढक देना चाहिए। इन गड्ढो से बड़ा बढ़िया खाद प्राप्त होता है। गोबर से ईंधन का काम न लेना चाहिए। इसका खेतो में खाद देने के लिए प्रयोग करना चाहिए जिससे अच्छी फसल प्राप्त हो। ब्रेन का कहना है कि गाँव में यह पदार्थ जहर है, खेतों में यह सोना और चाँदी है। इन्हे गाँव में क्यो रखा जाय ?

४—अनाज ग्रामीणों का खजाना है। सधारणतः यह सबसे अच्छे कमरों में इकट्ठा किया जाता है। सोने तथा रहने के कमरों में अनाज न रखा जाना चाहिए इसके लिए अलग भण्डारगृह होने चाहिए जिनमें चूहे प्रवेश न कर सकें।

५—पीने के लिए साफ पानी होना चाहिए। यदि पानी के लिए कुँओं का प्रयोग किया जाता है तो वे कुँए गहरे होने चाहिए और उन्हें दूषित न होने देना चाहिए। यदि पानी के लिए तालाबों का उपयोग किया जाता है तो किसी भी तरह खराब होने से बचाये जाने चाहिए और उन्हें जहाँ तक सम्भव हो साफ रखना चाहिए। पीने से पहले पानी को विशेषतः जब उसकी शुद्धता के सम्बन्ध में कुछ संदेह हो तथा जब महामारी रोग फैल रहा हो उबाल लेना चाहिए।

६—गन्दे पानी के यथोचित निकास के लिये घरों तथा गलियों में प्रबन्ध होना चाहिए जिससे पानी कहीं इकट्ठा न होने पाये। गन्दे पानी के तालाब, जलाशय और ढोल या तो दूर कर दिये जायँ या उन पर मिट्टी का तैल छिड़क दिया जाय ताकि उनमें मच्छर न पैदा हो।

७—वैयक्तिक स्वास्थ्य के नियमों का सावधानी से पालन करना चाहिए। त्वचा, बाल, नाखून साफ रखे जायँ। दाँतों, मुँह तथा आँतों की उचित रक्षा की जानी चाहिए। काम, व्यायाम और आराम का सम्मिलन उचित रीति से किया जाना चाहिए। आँख, कान और नाक की रक्षा आवश्यक है। शरीर को गर्मी या ठंड से बचाना चाहिए।

आधुनिक स्वास्थ्य सम्बन्धी आन्दोलन

भारतीय सामाजिक जीवन की सब से बड़ी बुराई बाल-विवाह है। यह जातीय स्वास्थ्य पर असर डालती है। प्रसिद्ध चिकित्सा विज्ञान के अधिकारियों ने बतलाया है कि २५% हिंदू महिलाएँ बाल विवाह के कारण असमय में ही मर जाती हैं और उनमें अधिकांश को इसी कारण से रोग हो जाता है और बहुत सी महिलाओं का इससे स्वास्थ्य खराब हो जाता है।

इसके अलावा सब वर्गों के व्यक्तियों के बच्चों को बहुत बड़ी

संख्या में कम या खराब खाना मिलता है। और जन्म लेने वाले शिशुओं का लगभग एक तिहाई भाग अपने जीवन के प्रथम वर्ष के भीतर भीतर दूसरे लोक को प्रयाण करता है।

भारतवर्ष में शिशुओ और माताओं की मृत्युसंख्या बहुत अधिक होने के कारण बदनाम है। बेंटले ने हिसाब लगा कर देखा है कि कलकत्ते में प्रति १००० जिंदा जन्म लेने वाले शिशुओ में से ३४० शिशु मर जाते हैं।

भारत के दूसरे भागो में शिशुओ की मृत्यु संख्या प्रति १००० जीवित जन्म लेने वाले शिशुओ में २०० से ३६० के बीच में है। सन् १६०३ में लखनऊ में प्रति १००० शिशुओ में से ३२८ मरे थे। भारत में एक करोड़ बच्चे प्रतिवर्ष जन्म लेते हैं उनमें से तीस लाख बच्चे प्रतिवर्ष मर जाते हैं अर्थात् १००० में ३०० मृत्यु का हिसाब पड़ता है।

इङ्गलैंड और वेल्स में सन् १६१८ में शिशुओ की मृत्यु-संख्या ६५ प्रति हजार थी। नार्वे, हालैंड, स्वीडन, अमरीका और न्यूजीलैंड के आँकड़े क्रमशः ४८, ५८, ६६, ७१, और ३८ प्रति हजार थे।

इसका मतलब यह है कि भारतवर्ष में पैदा होने वाले प्रति १० बच्चो में ३ से ५ तक मर जाते हैं जब कि इङ्गलैंड में प्रति १० बच्चों में १ या उस से भी कम मरता है। १६३८ में भी भारतवर्ष में शिशुओ की मृत्यु संख्या इंगलैंड और वेल्स की संख्या से तिगुनी और जापान की संख्या से डेढ़ गुनी थी।

भारतवर्ष में होने वाली बहुतसी मौते उन रोगो के कारण हैं जो असावधानी एवं स्वास्थ्य के नियमो का पालन न करने से होते हैं। इंगलैंड में और घरो की अच्छी अवस्थाओ, निरीक्षण तथा शिशु और माँ की जन्म समय व उसके पश्चात् निगरानी के कारण शिशुओं की तथा स्वाभाविक मृत्यु संख्या में बहुत कमी हो गई है।

मातृ तथा शिशु संरक्षण आंदोलन (Maternity & infant welfare movement)—अतः कुछ वर्गों की महिलाओं तथा बच्चों जिनकी अवस्था ऐसी नहीं है कि अपनी तरफ से खर्च लगा कर आवश्यक प्रसव सम्बन्धी सुविधा प्राप्त कर सके और जो इसलिए पुरानी गंदी और अशिक्षित दाइयों पर निर्भर होती है, बढ़िया चिकित्सा सम्बन्धी सहायता प्रदान करने के लिए चालू किया गया है।

एक अखिल भारतीय मातृ तथा शिशु संरक्षण संघ (All India League for Maternity & Child welfare) का संगठन किया गया है और वह कई स्थानोंमें सफलता पूर्वक कार्य कर रहा है। यह लगभग २० वर्ष पहले श्रीमती चेम्सफोर्ड के प्रयत्नों से स्थापित हुआ था। देश के प्रत्येक प्रान्त में दूर की जगहों में इसकी शाखायें खोली जा रही हैं। इस संघ का काम पूरा समय देने वाले स्वास्थ्य निरीक्षकों और शिक्षित दाइयों के जिम्मे सौंपा गया है। प्रान्तो तथा रियासतो के सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग की देख रेख में इन केद्रो के काम होते हैं और बहुत अच्छे परिणाम निकले हैं।

सन् १९२४ ई० में श्रीमती रीडिंग ने जनता को स्वास्थ्य के नियमो में तथा बच्चो की निगरानी के लिए शिक्षा प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय शिशु सप्ताह की स्थापना की। यह आन्दोलन बड़ा सर्वप्रिय हुआ और इससे राष्ट्र के स्वास्थ्य में सुधार हुआ तथा शिशुओं की मृत्युसंख्या में कमी हुई।

शिशुओं तथा माताओं की रक्षा कीजिये—इंगलैंड में कई कारखानों में सार्वजनिक शिशुगृह होते हैं तथा माँ जब काम कर रही हो बच्चो की देखभाल के लिए नर्सें नियुक्त रहती हैं। माताओ को बच्चो को दूध पिलाने के लिए कुछ अवकाश दिया जाता है। इस तरह का आंदोलन भारत के औद्योगिक केन्द्रों

तथा कारखानों में भी फैलना चाहिए।

इंडियन रेडक्रास सोसाइटी

शिशुओं के संरक्षण संबंधी आंदोलन प्रारम्भ होने से पहले ही रेडक्रास सोसाइटी ने अपने शांतिकाल के कार्य में शिशु-संरक्षण की तरफ अपना ध्यान दिया। सोसाइटी की तरफ से बड़ी भारी रकम इस काम के लिए लगाई गई। श्रीमती चेम्स-फोर्ड संघ (Lady Chelmford League) तथा रेड क्रास सोसाइटी ने मिलकर प्रथम शिशु सप्ताह का आयोजन किया।

अपने शिशु संरक्षण कार्यों में रेड क्रास सोसाइटी अब मातृ और शिशु संरक्षण संघ के साथ सहयोग करती है।

इसके मुख्य काम यह हैं—

१—वृद्ध, आहत और बीमार व्यक्तियों की देखभाल।

२—तपेदिक के रोगियों की देख भाल।

३—शिशु संरक्षण।

४—अस्पतालों तथा दूसरी संस्थाओं के लिए आवश्यक वस्त्र आदि तैयार करने के लिए कार्यकर्त्ताओं के दल।

५—यह जनता को स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों की शिक्षा देने का प्रयत्न करती है।

६—सुश्रूषा, स्वास्थ्य और संरक्षण कार्य तथा एंबूलेंस काम में सहायता प्रदान करना जूनियर रेडक्रास आंदोलन स्कूली विद्यार्थियों तक रेडक्रास आन्दोलन का विस्तार है। वैयक्तिक स्वच्छता और सार्वजनिक स्वास्थ्य के लाभ के लिये छोटे बच्चे तथा लड़कियें स्वास्थ्य के नियम से परिचित होती और स्वास्थ्य-कर आदतें सीखती हैं। इस उद्देश्य के लिये जूनियर रेडक्रास सोसाइटियां स्कूलों में बनाई गई है। पंजाब में ये सोसाइटियां सब से अधिक संख्या में हैं और स्कूल के बहुत से विद्यार्थी इसके

सदस्य बनते हैं। क्या आप भी इसके एक सदस्य हैं?

सेंटजोन एंबुलेंस संघ—प्रति वर्ष बहुत बड़ी संख्या में व्यक्तियों के आहतों की प्राथमिक चिकित्सा, घरेलू स्वास्थ्य-विज्ञान, घरेलू सुश्रूषा आदि की शिक्षा प्रदान करना और उनकी इन विषयों में परीक्षा लेना है तथा उत्तीर्ण परीक्षार्थियों को प्रमाण पत्र प्रदान करता है। यह एम्बुलेंस पदार्थों को बनाता तथा उनकी बिक्री या भेंट द्वारा वितरण करता है और एंबुलेंस सवारी और सुश्रूषा कार्य के लिये डिपो और दल का संगठन करता है।

भारतीय राजयक्ष्मा संघ (Tuberculosis Association of India)—खतरनाक बीमारी तपेदिक के फैलने को रोकने तथा उसका नियन्त्रण करने के लिये और क्षयरोग के बीमारों की चिकित्सा करने व उन्हें आराम पहुँचाने के लिये बनाया गया है। यह संघ भारत की सब से प्रचण्ड रोगों में से एक रोग से विधिवत् प्रभावोत्पादक निरन्तर लड़ाई ठानने के लिये है। क्षय क्लिनिकों और पश्चात् निगरानी से तपेदिक को नियन्त्रित करने की विधि पर जोर दिया जाता है।

बड़े अस्पतालों में तपेदिक वार्ड में प्राप्त बहुत सी सुविधाओं का खर्चा इस संघ से किया जाता है और यह जनता को पट पर प्रदर्शनों (फिल्मो) तथा चार्टों, पोस्टरो तथा पत्रकाओं एवं पुस्तिकाओं द्वारा इस रोग की छूत से अपने को किस तरह बचाया जा सकता है, इस सम्बन्ध में शिक्षा देने का उपयोगी प्रचार कार्य कर रहा है। यह रोग भीड़भड़क्के में रहने, मन्द पोषण तथा अस्वास्थ्यकर घरों में निवास करने से होता है। भारतवर्ष में प्रतिवर्ष ५ लाख व्यक्ति क्षय रोग से मरते और ७५ लाख इस बीमारी को भुगतते हैं।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि भारतवर्ष में सार्वजनिक

स्वास्थ्य विभाग और विभिन्न स्वास्थ्य आन्दोलन अधिकाधिक रूप में भारत की सार्वजनिक स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं के सुलझाने का प्रयत्न कर रहे हैं और उनसे सन्तोषप्रद परिणाम प्राप्त हुए हैं।

सारांश

ग्रामीण आरोग्यशास्त्र का सुधार करना चाहिये। क्योंकि भारत के लोग गाँवों में रहते हैं। व्यञ्जनयुक्त तथा प्रकाशित घर बनाने चाहिए। पशु के कमरे तथा अनाज के भंडार गृह अलग होने चाहिये। स्वच्छ पानी, और घरों के मल को हटाने तथा संक्रामक रोगों से बचने के प्रबन्ध होने चाहिए। ग्रामीणों को स्वास्थ्य के नियम सिखाने चाहिये।

आधुनिक स्वास्थ्य सम्बन्धी आंदोलनों से जनता के स्वास्थ्य सुधार के कार्य बहुत प्रशंसनीय हैं। ऐसे काम और वेग से होने चाहिये।

प्रश्न

१—सार्वजनिक स्वास्थ्य के उद्देश्य क्या हैं? सुधरी हुई स्वास्थ्य संबंधी अवस्थाओं से प्राप्त कुछ परिणामों का उल्लेख कीजिए।

२—स्वास्थ्य की रक्षा तथा रोग से बचाव के लिये जनता का सहयोग क्यों आवश्यक है? समाज के स्वास्थ्य के लिये एक व्यक्ति किस तरह खतरे का साधन हो सकता है, इसे बतलाइये।

३—शहरों के स्वास्थ्य संबंधी प्रबंधमें हालमें क्या सुधार किये गये हैं?

४—ग्रामीण आरोग्य शास्त्र की समस्याएं क्या हैं? गांवों के स्वास्थ्य को सुधारने के सम्बन्ध में आप क्या सुझाव रखेंगे?

५—कुछ आधुनिक स्वास्थ्य सम्बन्धी आंदोलनों तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिये किये गए उनके कामों का उल्लेख कीजिए।

RAJPUTANA H.S. EXAMINATION PAPER—1943

Anatomy and Physiology of the Human Body and Hygiene

Time—Three hours. Full Marks—50

N. B.—*Only* **FIVE** *Questions should be attempted. Answer should be illustrated with simple diagrams.*

1. Name the bones which enter into the formation of the cranium (skull). What are sutures ?

2. Describe the organs of digestion.

Or

Describe the structure of the liver, and mention the functions of bile.

3. Describe the composition and functions of blood.

4 Write a short essay on the continuance of race.

5. Describe the structure and functions of kidney.

6. Describe the various sources of water supply, and discuss the quality of water in each case.

7. Mention the general rules for physical exercise, and discuss the effects of exercise on the body.

8. Name four infectious diseases, and write a short note on one of them.

9. write short notes on *any five* of the following:—

Reflex action; Optical illusions, Heredity, Artificial respiration; Ventilation; Functions of clothes, Lactometer; Beverages

———

RAJPUTANA H. S. EXAMINATION PAPER 1944

Anatomy and Physiology of the human body and Hygiene

Time—Three hours. Maximum Marks—50

N. B.—Only five questions should be attempted. Answers should be illustrated with simple diagrams.

1. Name the various types of vertebrae which form the backbone.

Or

Describe the various kinds of teeth found in the adult

2. Describe the structure of the pancreas and mention the ferments which the pancreatic juice contains.

3. Name the cranial nerves and describe them.

4. Give a brief account of the process of respiration.

5. Describe the structure and functions of the skin.

6 Name the various ductless glands and briefly mention their functions.

7 What is hygiene ? Name the various problems it deals with.

8 Describe the composition and properties of air. How is air purified in nature ?

9. Write short notes on any *four* of the following:-

Contamination of water, vitamins; clothing for children's, skin diseases; eye; heredity; domestic filters.

RAJPUTANA H 'S EXAMINATION PAPER—1945.

Anatomy and Physiology of the Human Body and Hygiene.

Time—Three hours. Maximum Marks—50

N.B. Only Five questions should be attempted. Answers should be illustrated with simple diagrams

1. Describe the organs of digestion.

2. Give an account of the composition of blood and describe its functions

3. Describe the structure of the kidney.

4. Why do we need food ? Classify the various kinds of foods

5. Give an account of the shoulder-blade and the hip-girdle.

6. Write a note on artificial ventilation.

7 Describe and discuss the various sources of water-supply.

8. Give an account of the sympathetic nervous system.

9 Write short notes on *any four* of the following :—

(*a*) Optic illusion.,

(*b*) Mechanical methods of Purification of water.,

(*c*) Milk derivatives.,

(*d*) Storage of food.,

(*e*) Functions of clothes.,

(*f*) Effects of dental decay ,

(*g*) Infectious diseases.,

———

RAJPUTANA H. S. EXAMINATION PAPER—1946.

1. Describe the bones of the brain case (Cranium).
2. Describe the structure and the action of the Heart.
3. Describe the structure of the brain.
4. Describe either the male or the female reproductive organs
5. Write a note on personal hygiene and sanitation.
6. Write a note on natural ventilation.
7. Describe the various physical methods of purification of water.
8. Describe the various methods for the prevention of infection.
9. Write short notes on *any four* of the following :—

   (*a*) The Coccyx,
   (*b*) The functions of bile.,
   (*c*) Vitamins,
   (*d*) Artificial respiration.,
   (*e*) Contamination of water.,
   (*f*) Cooking.,
   (*g*) Condiments.,
   (*h*) Clothing for children,
   (*i*) The effects of Exercise.,

HIGH SCHOOL EXAMINATION—1947.

1. Give an account of the bones of the vertebral column (backbone)
2. Describe the structure of liver, and give an account of the functions of bile.
3. Describe the structure of heart.
4. Give an account of the process of respiration.
5. Describe the composition of air, and discuss its properties
6. Write a note on the sources of water supply.
7. Give an account of milk derivatives

8. Write a short essay on infectious diseases.

9. Write short notes on *any four* of the following :—

(*a*) Alcoholic beverages.
(*b*) Care of teeth.
(*c*) Prevention of fatigue.
(*d*) Pancreas.
(*e*) Larynx
(*f*) Functions of skin.
(*g*) Optical illusions.

HIGH SCHOOL EXAMINATION—1948.

1. Describe the various kinds of teeth found in the adult

2. Give an account of the shoulder-blade and the hip-girdle

3. Describe the structure of the pancreas, and name the ferments which the pancreatic juice contains.

4. Name the various ductless glands, and describe their functions.

5 Write short notes on *any four* of the following :—

(*a*) Reflex action.,
(*b*) Vitamins ,
(*c*) Skin diseases.,
(*d*) Functions of clothes.,
(*e*) Domestic filters.,
(*f*) Radio-ulna.,
(*g*) Storage of food

6. Define 'Hygiene'. Mention the various problems it deals with

7. Write a note on artificial ventilation.

8. Discuss the different methods for the prevention of infection.

9. Why do we need food ? Classify the various kinds of food